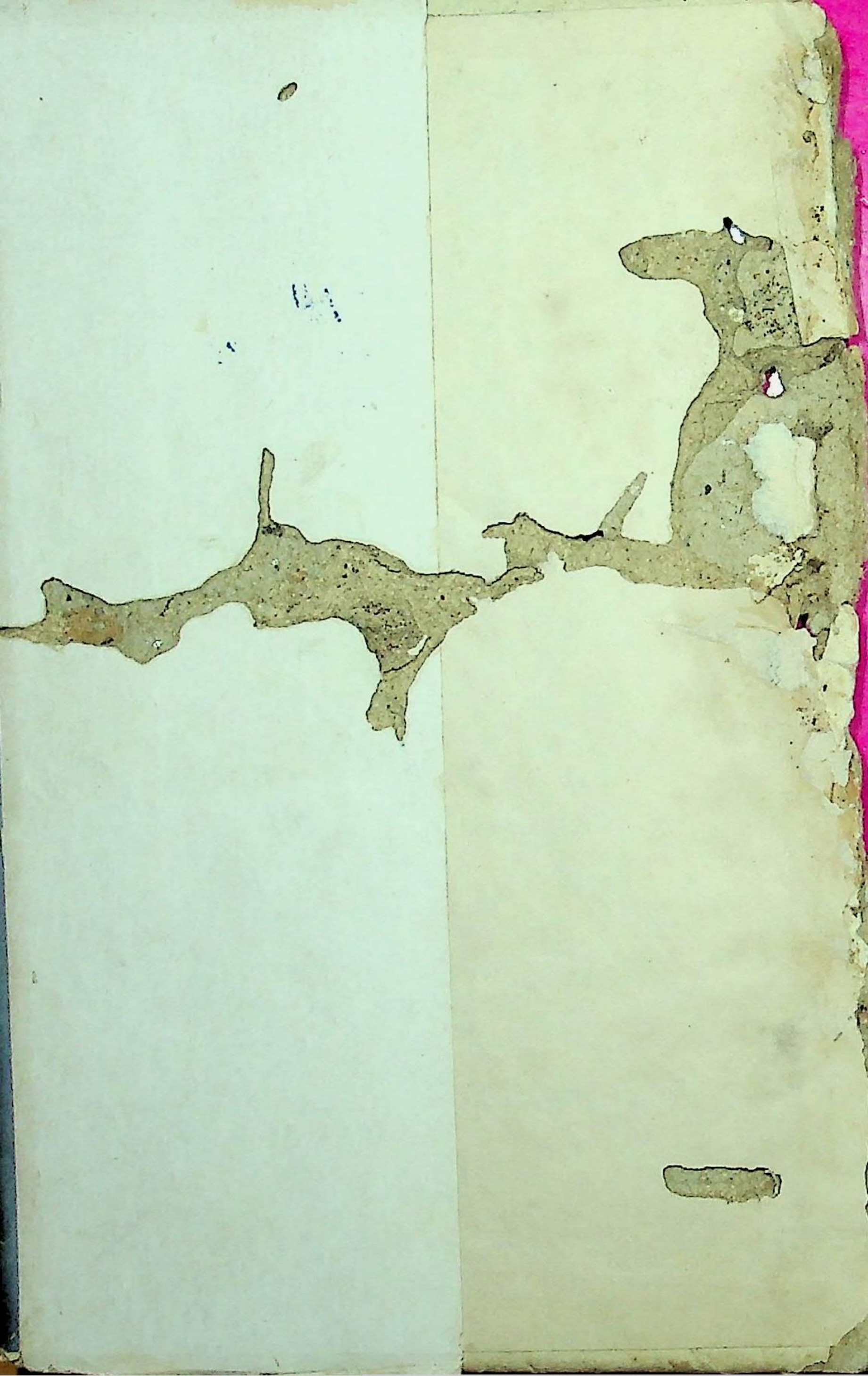
वायु

प्रथ

(सरल ि

ायुपुराण

१

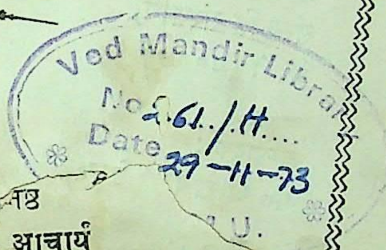


विषय-सूची

वायु-पुराण

(प्रथम खण्ड)

(सरल भाषानुवाद सहित)



वेदमूर्ति [illegible]ष्ठ

पं० श्रीराम श[illegible] आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन, २० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार ।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान, बरेली

(उत्तर-प्रदेश)

संस्थ

बरेली (उ० प्र०)

205/H
22-11-73

भूमिका

पुराण-साहित्य अपने ढङ्ग की अनोखी रचना है। संसार के
—जैसे यूनान, ईरान आदि में भी कुछ ग्रन्थ ऐसे पाये जाते
का पुराण कहा जाता है, पर वे प्रायः वीर लोगों के अद्भुत
र संकटों का सामना करके कोई महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध करने
। पर भारतीय पुराणों का मुख्य उद्देश्य साधारण जन-
भा[illegible]र का संचार करना है। यद्यपि [illegible] में भी सत्य, अर्द्ध
[illegible], रूपक, अलंका[illegible] किया। [illegible] का भी
[illegible] के [illegible] निर्माण तथा
[illegible]का का लक्ष्य लोगों को [illegible] स्थानों पर सीमा का [illegible]
ठीक है कि उनकी अतिशयोक्तियाँ [illegible] स्थानों पर सीमा का
हैं, उन्होंने असम्भव कल्पनायें भी की हैं, अनेक जगह परस्पर
तें भी लिख दी हैं, पर इस सबका उद्देश्य यही है कि मनुष्यों के
र्म के प्रति रुचि उत्पन्न हो और चाहे सांसारिक सुखों के लालच से
वे धर्माचरण को अपनावें। उनका सिद्धान्त है कि जो धर्म का पालन
सकी रक्षा भी धर्म करेगा। संसार में जितनी उन्नति, उत्कर्ष, कल्याण
व धर्म पर ही आधारित है। इसलिए लोगों को किसी भी प्रकार से
प्रेरणा देना शुभ कर्म ही माना जायगा।

धारण को धर्म-प्रेरणा—

पुराणों के मुख्य विषय सर्ग (सृष्टि रचना) प्रलय, मन्वन्तर और युगों
न, देव, ऋषि तथा राजाओं के वंशों का वर्णन कहा गया है। पर
विस्तार करते हुए मोक्ष-निरूपण, भगवत भजन, देवोपासना को भी
सम्मिलित किया और प्रत्येक कथा, आख्यान, उपाख्यान, गाथामें एक यही
बिन्दु रक्खा है कि लोगों को धर्म के प्रति आकर्षण हो और वे अपनी
शक्ति, रुचि के अनुसार न्यूनाधिक अंशों में धार्मिकता की तरफ अग्रसर
हो सकता है कि जिन लोगों ने अपने धर्म-विषयक विचार बहुत ऊँचे
तर्क और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरे उतरने वाले बना रक्खे हैं,

उनको पुराणों के धर्म-सम्बन्धी विवेचन से निराशा हो,
आवें, पर जो लोग समाज के विभिन्न स्तर के व्यक्तियों के
धर्माचरण की आवश्यकता को व्यवहारिक समझते हैं,
ठीक ही बतलावेंगे, एक धर्मशास्त्र में कहा गया है—

"अप्सु देवता बालानाम, दिव देवता मनीषिणाम् ।"

"बालकों का अथवा बाल-बुद्धि वाली अशिक्षित जनत
यमुना आदि तीर्थ-स्थान हैं। विद्वानों के देवता, भगवान
जैसे—सूर्य, इन्द्र, रुद्र, विष्णु आदि हैं और जो सच्चे ज्ञानी
केवल 'आत्मा' ही होता है।"

समाज ... श्रेणियों के व्यक्ति ...
... समझने वाले आत्मज्ञ। ...
... और अन्य कर्म... संलग्न पण्डितजन भी
जीवन निर्वाह के कार्यों में ही लगे रहने वाले व्यापारी, किस
भी होते हैं। यद्यपि पहली दो श्रेणियाँ समाज में अधिक
प्रतिष्ठित मानी जाती है, पर अधिकता सदैव तीसरी श्रेणी
तो अब प्रश्न होता है कि इन अर्द्धशिक्षित अथवा अशिक्षित जन
धार्मिक नैतिक, चारित्रिक नियमों की जानकारी कराने और
कराने की क्या व्यवस्था की जाय ? पुराण ऐसे ही लोगों को
देने के साधन हैं। इन लोगों को यदि उपनिषदों के निराकार
करने का उपदेश दिया जाय अथवा किसी बड़े कर्मकाण्ड की शि
वे उसे क्या समझ सकते हैं और कहाँ तक उस पर आचरण कर
पुराणों की सरल कथाओं और रोचक दृष्टान्तों को वे भी कौ
रहते हैं और अन्त में इतना निष्कर्ष निकाल ही लेते हैं कि धर्म
करने से मनुष्य को इहलोक और परलोक में सुख मिलता है, इस
बन पड़े मनुष्य को वैसा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पुराणों का प्रक्षिप्त भाग—

यह ठीक है कि मध्यकाल में पुराणों की कथा बाँचने
और 'व्यासों' ने उनमें बहुत मिलावट की है। इसके कई कारण

…और परिवर्द्धन देश-काल के प्रभाव से हुये हैं। राज्यों में, जैसे-जैसे परिवर्तन होते गए उसके प्रभाव से लोगों के रहन-… …भविष्यों परिवर्तन हुये और कथा वाचकों ने उनके अनुकूल बातें …भिन्न प्रदेशों की परिस्थितियों के प्रभाव से जिन पुराणों का …चार था उनमें वहाँ की बातों को विशेष स्थान दे दिया गया। …के बढ़ने पर उनके आचार्यों और विद्वानों ने अपने सिद्धान्तों की …ले उपाख्यान और विवरण पुराणों में सम्मिलित कर दिये। …ण कथावाचकों की स्वार्थपरता का भी हुआ जिससे …, दान के प्रकरणों को खूब बढ़ाया और अधिक से …नुसार …मा का प्रतिपादन किया। … की मिलावट … के … गई और विभिन्न … माण तथा … ल को इतना बढ़ा-चढ़ा कर … कि श्रोताओं … लगी। पुराणों में जिन ब्रह्मांडदान, मेरु-दान, धरा-दान, सप्त-रत्नमयी धेनुदान आदि का जो …र्णन किया गया उनकी सामग्री …लाख रुपये तक पहुँचती है। हर दान में सोने की मूर्तियों और …ान बतलाया गया है। एक लेखक के कथनानुसार "इन दानों के …कर कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई आधुनिक काल विज्ञापनदाता अपनी किसी वस्तु की तारीफों का पुल बाँध

मिलावट तथा हीन मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान …धकांश शिक्षित व्यक्तियों ने पुराण-साहित्य को कोरी गप्पों का …लिया है और वे बिना देखे सुने ही एक सिरे से समस्त पुराणों की तमाम बातों को निरर्थक और बेकार घोषित कर देते हैं। यह …ज तथा धर्म के लिये अवांछनीय ही कही जायगी। इसके फल-…उस लाभकारी और जन-कल्याणकारी साहित्य वंचित रह जायेंगे पर्याप्त परिमाण में सन्निहित है। इस समस्या के समस्त पह-…चार करके एक पुराणों के ज्ञाता विद्वान ने निम्न उद्गार …हैं—

"पुराणों में इन अनेक गुणों के होते हुये भी अनेक
जिन्हें वास्तव में देश और जाति के कल्याण करने की सच्ची
को सर्वथा त्याज्य माना है, उनकी भरपेट निन्दा की है,
तर्क के चाकू से चीरफाड़ कर जनता के सामने खोलकर
मानते हैं कि उन्होंने यह कार्य किसी द्वेषवश नहीं किया,
दुष्टः प्रियोऽप्यासीदंगुली वोरगदक्षता' (अर्थात् साँप की काटी
तरह दोषपूर्ण वस्तु अत्यन्त प्रिय होने पर भी त्याज्य है)

इस सूक्ति के अनुसार पुराणों को सर्वथा वहिष्कृत
धारणा थी कि ये पुराण सार्वजनिक उपयोग के
सामान्य जनता [illegible] आदशों पर चलकर [illegible] न दे
[illegible] नकी धारणा कुछ अ [illegible]
[illegible] करने से सर्वथा [illegible] जाय तो अँगुली को
समीचीन नहीं लगता। सभी औषधियों के अभाव और एक
में अँगुली का काट देना भी [illegible] अन्तिम कर्तव्य है, पर जिस
जीवन तक अनेक दुःखों एवं सुखों में साथ दिया है यथासं
करनी ही चाहिये। पुराणों ने चिरकाल से हिन्दू समाज का
किया है। हमारी वंश परम्परागत पवित्र भावनायें उनके सा
इन सब बातों को देखते हुये उनको एक दम वहिष्कृत कर देना
चित है, जब कि थोड़ी-सी सावधानी ही उन्हें पूर्ववत् पवित्र
नितान्त अनर्गल कथाओं तथा स्वार्थपूर्ण उपदेशों को पुराणों
आप उनकी उपादेयता से इनकार नहीं कर सकते। सुनारों
मिट्टी को बटोरकर धोने वालों को भी जीवन-यापन के लिये
चाँदी मिल जाता है, फिर पुराण तो अनेक रत्नों के भण्डार हैं,
विवेक के जल से उन मृत्तिका मिश्रित अनपेक्षित प्रसङ्गों को,
कुत्सा आदि के सिवा दूसरी चीज नहीं है स्वच्छ कीजिये,
विश्वास का सम्बल रखिये, उनसे आपको अनमोल रत्न मिलेंगे।

हमने इसी नीति का अनुसरण करके पुराणों की बहुमूल

करण के रूप में प्रकाशित करना आरम्भ किया है। उपर्युक्त
अतिरिक्त पुराणों के अनावश्यक रूप से बड़े हो जाने का एक
कि कितने ही विषयों की उनमें पुनरुक्ति की गई है। जो
विषय है जैसे श्राद्ध, नर्क, चारों वर्णों और चारों आश्रमों के
पुराण सुनने का फल आदि अनेक विषय सब में एक से ही
हीं-कहीं तो उनकी शब्दावली भी एक ही है और अध्याय के
तरे मिलते हुये हैं। बार-बार एक ही विषय को मिलते-जुलते
[illegible] को सन्देह होने लगता है कि यह विषय तो पहले भी
[illegible] यों कैसे आ गया ? ऐसे विषयों को एक जगह पूरे रूप
[illegible] [illegible] दोष कम खटकने वाला हो सकता है। निस्सन्देह
नेअनुसार [illegible] दोष कम [illegible] विषयों की
[illegible] के [illegible]नोपयोगी और [illegible] की [illegible]
हैं, पर इस मिलावट और [illegible] दृष्टि उन पर नहीं पड़ती है [illegible]
सामान्य पाठक या श्रोता की दृष्टि उन पर नहीं पड़ती है। पक्षपात या
उद्धरण में संकेत किया गया है यदि पुराणों में पक्षपात या
अनुचित मिलावट कर दी गई है उसे पृथक करके और अनाव-
बढ़ाये गये अंशों को सूक्ष्म करके पुराणों को प्रकाशित और प्रचा-
जाय तो यह हिन्दू धर्म तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति की बहुत
ोगी।

ाण' सम्बन्धी विवाद—

ाणिक-साहित्य की दृष्टि से 'वायु पुराण' में वर्णित पाठ्य-सामग्री
करने से पूर्व, हमको अनेक विद्वानों द्वारा उठाई इस शंका पर
ना आवश्यक प्रतीत होता है कि 'वायु-पुराण' की गणना '१८ महा-
है या नहीं ? इस सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों में भी मतभेद पाया
। कुछ आलोचकों ने इसे 'शिव महापुराण' में 'वायवीय संहिता'
खण्ड होने से इसे उक्त पुराण का एक अंश बतलाया है, जब कि
नों ने दोनों पुराणों की विषय-सूची तथा पाठ्य-सामग्री के महान्
आधार इसको स्वतन्त्र 'महापुराण' ही स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध

में हमने विविध पुराणों के अन्तर्गत पाई जाने वाली १८ पुरा
का जब मिलान किया तो उनसे हमको यही प्रतीत हुआ कि
अधिकांश ने १८ पुराणों में ही माना है। पाठकों की ज
उन सूचियों को नीचे देते हैं—

(१) नारद पुराण की पुराण सूची सबसे बड़ी है। उसमे
के लिए एक दो पृष्ठ का स्वतन्त्र अध्याय दिया है और प्रत्येक पु
मुख्य विषयों की सूची के साथ उनकी दान करने की विधि
उसमें दिये गये अठारह पुराणों की नामावली इस प्रकार है—

(१) ब्रह्मपुराण १०००० श्लोक, (२) पद्मपुराण
पुराण २३००० (४) वायु पुराण २४००० (५)
(६) ... २५००० ... मार्कण्डेय पुराण ९०००, ...
... (९) भविष्यपुराण १४०००, (१०) ब्रह्मवैवर्त पु
(११) लिङ्गपुराण ११०००, (१२) बाराह पुराण २४०००,
पुराण ८१०००, (१४) वामन पुराण १००००, (१५) कूर्म पुर
(१६) मत्स्य पुराण १४०००, (१७) गरुड़ पुराण १९०००, (
पुराण १२०००।

(२) मत्स्य पुराण में भी पुराण सूची काफी विस्तार से
उसमें विभिन्न पुराणों के श्लोकों की जो संख्या दी गई है वह क
नारद पुराण की अपेक्षा कम या ज्यादा है। इसमें भी पुराणों के व
संक्षेप में दी गई है—

(१) ब्रह्म पुराण १३०००, (२) पद्मपुराण ५५०००,
[विष्णु] पुराण २३०००, (४) वायवीय पुराण २४००० (५) भ
१८०००, (६) नारद पुराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९
अग्निपुराण १२०००, (९) भविष्य पुराण, १४५०००, (१०) ब्रह
१८०००, (११) लिङ्ग पुराण ११०००, (१२) वाराह पुराण
(१३) स्कन्द पुराण ८१०००, (१४) वामन पुराण १००००,
पुराण १८००० (१६) मत्स्य पुराण १४०००, (१७) गरुड़ पुराण
(१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२२००।

वयं वायु पुराण के अध्याय १०४ में पुराण-सूची दी गई है। पर
राणों का उल्लेख करने पर भी वास्तव में १६ पुराणों के ही
विष्‍सलिये यह अनुमान किया जाता है कि एक श्लोक किसी
रह गया है। इसकी क्रम संख्या भी अन्य पुराणों से बहुत

मत्स्य पुराण १४०००,(२)भविष्य पुराण १४५००, (३)मार्कण्डेय
(६) ब्रह्मवैवर्त पुराण १२०००, (७) ब्रह्म पुराण १००००,
ण [illegible]००, (६) आदि पुराण १०६००, (१०) वायु पुराण
[illegible]रदीय पुराण २३०००, (१२) गरुड़ पुराण १६०००,
नुसार [illegible]००, (१४) कूर्म पुराण १७०००, (१५) सौकर
के [illegible] २००००, (१६) स्कन्द पुराण [illegible]०००। [illegible]
सूची में बिष्णु, अग्नि और लिङ्ग पुराणों के नाम नहीं हैं [illegible]
कर हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि एक श्लोक के छूट जाने से
का नाम रह गया है। तो भी इस सूची में आदि पुराण को शामिल
है, इससे यह स्पष्ट है, वायु-पुराण के रचयिता ने प्रचलित १८
किसी एक को अवश्य ही हटा दिया है।
) अग्नि-पुराण की सूची की क्रम-संख्या अन्य पुराणों से मिलती है,
जो श्लोक संख्या दी है उसमें अन्य पुराणों से बहुत अधिक अन्तर
स्वयं मिलान करके देखें—
१) ब्रह्म पुराण २५०००, (२) पद्मपुराण १२०००, (३) विष्णु-
०००, (४) वायु पुराण १४०००, (५) भागवत पुराण १८०००
पराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९०००, (८) अग्नि पुराण
(९) भविष्य पुराण १४००० (१०) ब्रह्मवैवर्त १८०००, (११) लिंग
०००, (१२) वाराह पुराण २४०००, (१३) स्कन्द पुराण ८४०००,
मनपुराण १००००, (१५) कूर्म पुराण १८००० (१६) मत्स्य पुराण
(१७) गरुड़ पुराण १८०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२०००।
(५) वामन पुराण में पुराण-सूची केवल एक श्लोक में दे दी है और

वह भी बड़े अद्भुत ढ़ंग से, अन्यथा अठारह पुराणों का नाम एक श्लोक में किसी प्रकार आना संभव न था—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्ठयं ।
अनापलिगकूस्कानि पुराणानि पृथक पृथक ।।

"अर्थात् १८ पुराणों में से दो के नाम 'म' से आरम्भ होते हैं (मत्स्य और मार्कण्डेय), दो 'भ' से आरम्भ होते है (भागवत और भविष्य), तीन 'ब्र' से हैं (ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्त), चार 'व' से हैं (वाराह, वायु, वामन और विष्णु)' शेष सात पुराणों के प्रथम अक्षर इस प्रकार हैं— अ=अग्नि, ना= नारद, प=पद्म लि=लिङ्ग, ग=गरुड़, कू=कूर्म, स्क=स्कन्द

(६) विष्णु पुराण में यह सूची संक्षेप में दी गई है ... उसने क्रम— संख्या का निर्देश बहुत स्पष्ट रूप से किया है—

ब्राह्म पाद्म, वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।
तथा न्यन्नारदीयं च मार्कण्डेय च सप्तमम् ।।
आग्नेय मष्टमं चव भविष्यन्नवमं स्मृतम् ।
दशमं चैव ब्रह्मवैवर्त लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ।।
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम् ।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पंचदशं तथा ।।
मात्स्यंच गारुड़ं चैव ब्रह्माडं च ततः परम ।
महापुराण न्येतानि ह्यष्टादश महामुने ।।

(वि०पु० ३—६—२१से२४)

कुछ विद्वानों का मत है कि विष्णु पुराण में जो क्रम संख्या दी गई है वह प्राचीनता की दृष्टि से है। इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर ब्रह्म पुराण सबसे प्राचीन और ब्रह्माण्ड सब से अंतिम समय का रचित कहा जायगा ।

(७) मार्कण्डेय पुराण के १४४ वें अध्याय में ८ से ११ तक विष्णु पुराण के ये चारों श्लोक ज्यों के त्यों उद्धृत करके पुराण-सूची दे दी गई है और मार्कण्डेय पुराण का सातवां स्थान स्वयं स्वीकृत किया है ।

(८) स्कन्द पुराण के केदार खण्ड में १८ पुराणों की उपर्युक्त सूची

ो देकर साम्प्रदायिक दृष्टि से उनका वर्गीकरण भी किया गया है। उसमें
हा गया है कि "१८ पुराणों में से दस शैव, चार वैष्णव, दो ब्राह्म और दो
अन्यों ... भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म,
ामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण शैव हैं। वैष्णव, भागवत, नारद और
गरुड़—ये चार वैष्णव हैं, ब्राह्म और पद्म—ये दो ब्रह्मा के हैं। अग्नि पुराण
...न की तथा ब्रह्मवैवर्त सूर्य की महिमा से पूर्ण हैं।"

पुराणों की इन विभिन्न सूचियों में 'वायु-पुराण' को स्पष्टतः १८
पुराणों में माना गया है और उसकी श्लोक संख्या २३ या २४ हजार बतलाई
गई है जो कि इस समय लगभग ११ हजार श्लोकों का ही मिलता है।
'मत्स्य पुराण' के म...नुसार इस पुराण में 'वायु देव ने श्वेत कल्प के प्रसंग
... अनेकाने... ... के साथ रुद्र महात्म्य भी विस्तार से सुनाया है।'
... सभा ... को ... शिवपुराण

सबसे मुख्य ध्यान देने का विषय तो वायुपुराण ... मूल ... ये निम्न
अन्त में दी गई 'वायवीय संहिता' की विषय सूचियाँ हैं। जब ...
...य संहिता के अधिकांश में वही दक्ष, सती, पार्वती की कथा अथवा शिव-
...ा, पाशुपत व्रत, भस्म महिमा, शिव लिंग पूजा से महापापों का नाश,
...ावरण पूजा, योग मार्ग आदि फुटकर विषय ही अधिक पाये जाते हैं,
...ुपुराण में पुराणों के लक्षणों के उपयुक्त सृष्टि रचना, कल्प और युग
...ान, मन्वन्तरों का वर्णन सृष्टि का भूगोल, देवता, सृष्टि, राजाओं के वंशों
आदि विषयों का विद्वतापूर्वक वर्णन किया गया है। हमें यह कहने
कुछ भी संकोच नहीं कि वायुपुराण के रचयिता ने सृष्टि रचना और
...सके क्रम-विकास का जो वर्णन किया है वह अन्य कई पुराणों के तत्स-
...न्धी वर्णन की अपेक्षा अधिक बुद्धिसंगत है और यदि उसकी रूपक
...था अलंकारयुक्त शैली की जाँच वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक दृष्टिकोण से
की जाय तो उसमें कितने ही वैदिक सृष्टि-विज्ञान के तत्वों का पता लग
सकता है। पुराणों की सबसे बड़ी विशेषता और उपयोगिता यही मानी गई
है कि वे वेदों के गूढ़ तत्वों और रहस्यवादी वर्णनों को विशद व्याख्या के
साथ रोचक कथाशैली में उपस्थित करते हैं जिससे सामान्य स्तर के पाठक
भी उनको समझ सकते हैं। 'वायु पुराण' इस दृष्टि से निस्सन्देह अन्य कितने

ही पुराणों की अपेक्षा उच्च—श्रेणी में रखे जाने योग्य है।

वायुपुराण की तर्क संगतता-—

यद्यपि परम्परागत शैली का अनुसरण करते हुए ... आरम्भ में उसे भी ब्रह्माजी, वायुदेव, व्यास जी, सूत जी, आदि का र... हुआ कहा है, पर आगे चलकर जब वास्तविक विवेचन आरम्भ हुआ है रचयिता ने जगह-जगह ऐसे भाव प्रकट किये हैं जिनसे प्रकट होता है यह पुराण अन्य ग्रंथों की तरह किसी विशेष व्यक्ति की रचना है। सृ... रचना का विषय आरम्भ करते ही तीसरे अध्याय के अंतिम श्लोक में उन्हो... स्पष्ट रूप से कह दिया है—

प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्याच ... ः ...वृत्तिः ॥
तच्छास्त्र ... या स्वमतिप्रयुक्तात् समस्तमविष्कृत ... ॥
... ऋषिभ्यः समुदाहृतम् ...यथातथं तच्छृणुतोच्यमानम् ॥

अर्थात् "प्रकृति की मूल अवस्था में कारणों की कैसी स्थिति रहती ... तथा फिर कैसे रचना की प्रवृत्ति होती है ये सब बातें हर शास्त्र के मत... सार और अपनी बुद्धि के अनुसार बुद्धिमानों के लिये प्रकाशित कर रहे है... हे विप्रो! पूर्वकाल में ऋषियों ने जैसे कहा है मैं भी उसी प्रकार कह ... हूं, आप लोग ध्यान से सुनिये ॥"

जगत के निर्माण और इतिहास की घटनाओं के सम्बन्ध में कोई लेख... यह तो कह नहीं सकता कि मैं इनको अपने मन या बुद्धि से विचार कर ... गढ़ कर कह रहा हूँ। उनका तो कोई न कोई आधार ढूँढ़ना और बतलान... पड़ेगा। लेखक का काम तो यह है कि वह उन तथ्यों को अपनी विशेष शैली... में अपने दृष्टिकोण के अनुसार विवेचना करता हुआ पाठकों या श्रोताओं ... सम्मुख उपस्थित करे। इस लिये वायुपुराणकार का यह कथन सर्वथा स्वाभाविक और आवश्यक है कि मैंने जो कुछ लिखा है वह अपनी कल्पना से नहीं लिख दिया है वरन् उसकी सामग्री विभिन्न माननीय शास्त्रों और प्राचीन विद्वानों द्वारा रची गाथाओं आदि से एकत्रित की गई है। इस बात को प्रकट करके तथ्यों की जिम्मेदारी प्राचीन शास्त्रों पर और वर्णनशैली तथा विवेचन-प्रणाली की अपने ऊपर ले ली है।

आगे जहाँ राजवंशों का वर्णन आया है वहाँ भी लेखक ने इस पुराण की रचना का समय साफ तौर पर दे दिया है। 'अनुषङ्गपाद समाप्ति' शीर्षक अध्याय में पाण्डवों की आगामी पीढ़ियों का जिक्र करते हुये वे कहते हैं—

"राजा जनमेजय का पुत्र शतानीक था, जो परम बलशाली, सत्यवादी तथा विक्रमशील था। शतानीक का पुत्र परम बलशाली अश्वमेधदत्त हुआ। अश्वमेधदत्त से शत्रुओं के किलों को जीतने वाले अधिसामकृष्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। ऋषिवृन्द ! यही परम धर्मात्मा राजा इस समय राज्य कर रहा है। उसी के राज्य काल में आपने इस परम दुर्लभ तीन वर्ष चलने वाले दीर्घ-सत्र (यज्ञ) का अनुष्ठान प्रारम्भ किया है, इसके अतिरिक्त दृषद्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र में भी दो वर्ष व्यापी एक दीर्घसत्र चल रहा है।"

यों तो ... धार्मिक मान्यता तथा श्रद्धा को सुदृढ़ रखने के उद्देश्य से सभी धार्मिक ग्रन्थों को किसी देवता या दैवी व्यक्ति के मुख से निकला हुआ बतलाया गया है, पर 'वायु-पुराणकार' ने उस परम्परा का पालन करते हुये भी अपनी रचना को अन्य ग्रन्थों की तरह मानवीय घोषित कर दिया है, यह उनका एक प्रशंसनीय गुण ही माना जायगा।

विकास-सिद्धान्त का प्रतिपादन—

प्राचीन ग्रन्थों में से अधिकांश का यह मत प्रकट होता है कि 'सतयुग' अर्थात् सृष्टि का आदिम-काल सभ्यता, संस्कृति, विद्या-बुद्धि, आचार-विचार आदि की दृष्टि से सर्वोत्तम समय था और उसके पश्चात् सब विषयों में हीनता आती चली गई। पर 'वायु-पुराण' का सतयुग वर्णन पढ़ने से ऐसा भाव उत्पन्न नहीं होता। प्रकट में उन्होंने भी उसे श्रेष्ठ बतलाया है, पर उस समय के प्राणियों का जो कुछ चित्रण किया है, उसे एक विचारशील पाठक इसी नतीजे पर पहुँचेगा कि उस समय के प्राणी एक वनमानुष से भी कम विकसित अवस्था में थे और उस समय वे मनुष्य न होकर किसी और ही जाति के प्राणी हों तो भी आश्चर्य नहीं। प्रकर्ण ८ (मानव सभ्यता का आरम्भ) के ४५वें श्लोक से आगे कहा गया है—

"उस समय कृतयुग के आरम्भ काल में वे प्राणी नदी, सरोवर, समुद्र और पर्वतों के समीप रहते थे। उनको अधिक शीत और गर्मी से पीड़ा नहीं

होती थी। वे इच्छानुसार इधर-उधर घूमते रहते थे। पृथ्वी से स्वयमेव उत्पन्न होने वाले पदार्थों को खाते थे। उस समय मूल, फल, पुष्प का अभाव था, पर उनको पृथ्वी के रसमय पदार्थ मिल जाते थे। उनको धर्म-अध[illegible] विचार न था, कोई भेदभाव भी न था। वे सब आयु, रूप और अनुभूति में समान थे। उनमें किसी प्रकार का संघर्ष, प्रतिद्वन्दिता और क्रम का प्रश्न नहीं था। वे समुद्रों और पर्वतों के निकट रहा करते थे। उनका कोई स्थायी घर नहीं था। उस समय अधर्म करने वाले कोई नारकीय जीव न थे न कोई उद्‌भिज पदार्थ था। यद्यपि वे अपने शरीर का संस्कार (स्नान आदि) नहीं करते थे तो भी स्थिर-यौवन थे। वे जन्म और आकृति में समान थे, मृत्यु भी साथ ही होती थी। उनके सब व्यवहार स्वाभाविक होते थे, बुद्धि-पूर्वक नहीं। उनकी प्रवृत्ति शुभ और अशुभ कर्मों में नहीं होती थी, क्योंकि उस समय [illegible] और अशुभ का विभाजन था ही नहीं। उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था न थी, न सङ्कर-दोष ही था। वे परस्पर अकाम और अनिच्छापूर्वक व्यवहार करते थे। उनमें लाभ-अलाभ, मित्र-अमित्र, प्रिय-अप्रिय न थे, वे निरीह थे और मन की प्राकृतिक प्रेरणा से ही विषयों में प्रवृत्त होते थे। एक दूसरे के प्रति किसी की कोई इच्छा या स्वार्थ न था, न तो परस्पर के अनुग्रह की आवश्यकता थी।"

यों कल्पना और भावुकता का संयोग करके इन प्राणियों को देवता और योगियों के समान बतलाया जा सकता है, पर यदि प्रकृति के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से विचार किया जाय तो बुद्धि-तत्व का, जिसके द्वारा मनुष्य वास्तव में मनुष्य बन सका है, उनमें सर्वथा अभाव था और वे उसी अवस्था में रहते थे जिसमें इस समय छोटे पशुओं या कीड़े-मकोड़ों को रहते देखते हैं। जीव-सृष्टि के आरम्भ में इससे अधिक की आशा भी नहीं की जा सकती।

त्रेतायुग का वर्णन करते हुये पुराणकार ने लिखा है कि "उसमें स्थूल जल-वृष्टि के आरम्भ हो जाने से वृक्ष उत्पन्न हो गये और उन्हीं से प्राणी अपना निर्वाह करने लगे। उन पेड़ों से एक प्रकार का रस या मधु निकलता था उसी को खाकर वे जीवित रहते थे। अब उनमें राग-द्वेष, लोभ के भाव भी उत्पन्न होने लगे और उन्होंने जबर्दस्ती उन वृक्षों पर अधिकार जमाना आरम्भ किया। इससे अनेक स्थानों पर वे वृक्ष नष्ट हो गये और लोग भूख-प्यास का कष्ट पाने

लगे। अब उनको शीत और गर्मी से भी कष्ट होने लगा, इससे उन्होंने घर बनाने आरम्भ किये। वृक्ष की शाखायें जिस प्रकार आगे-पीछे, ऊपर-नीचे और इधर-उधर फैली रहती हैं उसी प्रकार काठ फैलाकर उन लोगों ने घर बनाये। वृक्ष-शाखाओं की तरह बनाये जाने के कारण ही उनका नाम 'शाला' पड़ गया। जब वृष्टि से नदी, नाले, गड्ढे भर गये तो पृथ्वी रसवती होकर शस्य-शालिनी हो गई। बिना जोते बोये चौदह प्रकारकी वनस्पतियाँ गाँवों के समीप और जङ्गलों में उग आईं। उन्हीं का उपयोग करके उस समय के लोग निर्वाह करने लगे। पर जब उनमें भेदभाव और स्वार्थपरता का भाव बढ़ा तो लोग फल लेते समय पुष्प और पुष्प लेते समय पत्ते भी तोड़ लेते थे। इससे वे सब वनस्पतियाँ भी क्रमशः नष्ट हो गई और लोग फिर भूख-प्यास से व्याकुल होने लगे। तब लोगों ने प्रयत्न करके वनस्पतियों के बीजों का पता लगाया और स्वयम् उनको जोत-बोकर उत्पन्न करने लगे। फिर उनमें कर्म-विभाग भी होने लगा और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि विभिन्न वर्णों की स्थापना की गई।"

वैदिक तत्वों और पौराणिक उपाख्यानों का समन्वय—

पुराणों में देवताओं, ऋषियों, राजाओं के सम्बन्ध में जो घटनायें और कथानक दिए गये हैं, वे एक निष्पक्ष पाठक को बहुत ही अतिरंजित और अनेक बार असम्भव से ही प्रतीत होते हैं। इसका कारण अन्वेषण करने वाले विद्वानों ने यही बतलाया है कि पुराणकारों ने अलौकिक वैदिक तत्वों को रूपक तथा अलंकार की शैली में ढालकर लौकिक-कथाओं का रूप दे दिया है। देवासुर-संग्राम की कथायें इसका स्पष्ट प्रमाण है। इन्द्र और वृत्रासुर के संघर्ष को वेदों में भी कुछ अंशों में घटनात्मक ढङ्ग से लिया है, पर उनके विभिन्न स्थलों का मिलान करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका आशय सूर्य की शक्ति द्वारा बादलों से वर्षा कराने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। 'शतपथ ब्राह्मण' में एक स्थान पर इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया गया है—

न त्वं युयुत्से कतमच्चनाहर्न तेऽमित्रो मघवन कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं न नु पुरा युयुत्सः॥

अर्थात् "हे इन्द्र ! तुम कभी किसी से भी नहीं लड़े, तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है। तुम्हारे युद्धों का जो वर्णन किया जाता है। वह सब 'माया' बनावटी या काल्पनिक है। न आज कोई तुम्हारा शत्रु है और न पहले कोई तुम से लड़ा था।"

पर पुराणकारों ने तो उसका वर्णन दो राजाओं के सांगोपांग युद्ध की तरह इतना बढ़ा-चढ़ाकर किया कि वे सब वास्तविक व्यक्ति ही जान पड़ने लगे। यही बात महिषासुर और दुर्गा के संग्राम की है, जिसका वर्णन सप्तशती, में बड़ी मनोमोहक लच्छेदार भाषा में किया गया है। उसमें कहा गया है कि महिषासुर ने अत्यन्त प्रबल होकर देवों को भगाकर इन्द्रासन पर अधिकार कर लिया। फिर समस्त देवताओं की शक्ति को देवी के रूप में प्रकट करके उसके द्वारा महिष-बध कराया गया। पर वैदिक सूक्तों में [illegible] को एक तम आवरण माना गया है जो आरम्भिक अवस्था में सूर्य के तेज को रोके रहता है और जब केन्द्र में सौर-शक्ति पूर्ण रूपेण एकत्रित होकर परिधि की ओर बढ़ती है तो वह तम-आवरण या 'महिष' स्वयं ही नष्ट हो जाता है। 'ऋग्वेद' में कहा है—

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणदयानती।
व्याख्यान् महिषो दिनम् ॥ [१०।१८९।२]

अर्थात् "सूर्य के भीतर से जोज्यति या प्रकाश निकलता है, वह प्रकाश इनके प्राण-अपान से प्रकट हुआ है। उसके निकलने से 'महिष' [अन्धकार] नष्ट हो जाता है और सूर्य भगवान समस्त लोक को व्याप्त कर लेते हैं।"

इसी प्रकार पुराणों में पुरुरवा, उर्वशी नहुष, ययाति, तुर्वश आदि राजाओं की बड़ी-बड़ी विचित्र कथायें दी गई हैं और उन्हीं को बाद के समस्त प्रमुख भारतीय राजवंशों का स्रोत बतलाया गया है। पर वेदों के अध्ययन से पता चलता है कि ये सब आकाशीय पदार्थ हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों में बार-बार इन सब के नाम आये हैं। पुराणों के लेखानुसार ययाति के पाँच पुत्र थे जिनके नाम यदु, तुर्वस, पुरु, द्रुह्य और अनु थे। इन्हीं से भारत के चन्द्रवंश, यादव, कौरव आदि चले हैं। इन सब नामों को 'ऋग्वेद' के एक मन्त्र में आकाशीय नक्षत्र बतलाया गया है—

यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषस्थः । [१।१०८।८]

अर्थात् 'जो इन्द्र और अग्नि यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरु में स्थिति करते हैं।'

इन्द्रो मा... पुरुरूपईयते युक्ताह्यस्य शता दश । [६।४०।१८]

अर्थात् "इन्द्र माया से पुरु बन जाते हैं। उनके रथ में सहस्रों अश्व जुते होते हैं।"

"उत्त्वा तुर्वशायदु अस्नातारा शचीपति ।
इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् । (४-३०-११७)

अर्थात् "तुर्वश और यदु को शचीपति इन्द्र पार कर गया।"

इस प्रकार के ...लते-जुलते प्रसंग वेद-पुराणों में अनगिनती मिलते हैं, जिनसे प्रकट होता है कि ... तो पुराणकारों ने वेदों के ग्रह-नक्षत्र सम्बन्धी ... का रूप दे दिया है अथवा उन्होंने अपने राजवंशों के वर्णन के लिये वैदिक नक्षत्रों की नामावली की नकल की है। जो कुछ भी हो विद्वानों की दृष्टि में इसमें कोई दोष नहीं है। पुराण-रचना का उद्देश्य ही वेदों के गूढ़ तत्वों को कथा और दृष्टान्तों का सरल रूप प्रदान करके उसका साधारण जनता में प्रचार करना है। इस सम्बन्ध में वेदों और पुराणों के एक मननशील विद्वान ने लिखा है—

"कहा गया है कि जैसे ही अव्यक्त से जन्म लेने वाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुये उनके मुखों से वेद और पुराण दो वाङ्मय तत्वों का आविर्भाव हुआ। वेद निगम तथा पुराण आगम है। वेद विश्व का केन्द्राधिष्ठित तत्व है। वह अति गूढ़ विवेचन के रूप में संगृहीत होता है। महर्षियों ने उसे वैदिक संहिताओं के रूप में प्राप्त किया है। दूसरा वह ज्ञान है जो लोकव्यापी-जीवन से सम्बन्ध ...ता है, जिसका उद्भव लोक-जीवन की महती व्याख्या से होता है। वही ...ण या आगम है। पुराण शब्द की व्युत्पत्ति करते हुये कहा गया है—'पुरां ... भवति।' अर्थात् जो वाङ्मय एक ओर पुरा या पुरातन सृष्टि विद्या ...दाविद्या) से अपना सम्बन्ध बनाये रखता है और दूसरी ओर नित्य नये-... रूप में जन्म लेने वाले लोक-जीवन से भी सम्बन्ध जोड़े रहता है, वही पुराण आगमशास्त्र है। भारतीय साहित्य में पुराण वाङ्मय की विचित्र स्थिति

है। लोक-तत्व और लोक-जीवन की जैसी सुरक्षा इसमें है वैसी अन्यत्र नहीं है।

योग द्वारा शारीरिक और आत्मिक कल्याण—

वायु-पुराण में योग का महत्व और उसकी आवश्यकता पर बहुत जोर दिया है और सभी श्रेणियों के मनुष्यों को उसकी प्रेरणा दी है। उसमें कहा गया है—"जितनी तरह की तपस्याएँ, व्रत, नियम और यज्ञफल आदि हैं, प्राणायाम का फल भी उनमें से किसी से कम नहीं है। सौ सम्वतसर तक प्रत्येक मास कुश के अग्रभाग से जलबिन्दु पान करने का जो फल होता है, वही फल प्राणायाम करने से प्राप्त हो जाता है। प्राणायाम से दोषों का नाश होता है, धारणा से पापों का, प्रत्याहार से विषय समूह का और ध्यान से अनीश्वर गुणों का नाश होता है।"

आगे चलकर कहा है—"शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति ... को प्राणायाम का उद्देश्य समझिये। शान्ति का आशय है इस काल अथवा परकाल में देहधारियों द्वारा स्वयं किये हुए अथवा पिता-माता द्वारा, किंवा भाइयों द्वारा किये हुये भयंकर अकल्याणकारक कर्म से उत्पन्न कुत्सित पाप समूह का नाश होना। प्रशान्ति उस तपस्या को कहते हैं जिससे इस लोक और परलोक में हित के लिये लोभ और अश्रेयस्कर अभिमानादि पापवृत्तियों का संयम हो। जब प्रतिबुद्ध योगी को ज्ञान-विज्ञान युक्त प्रसिद्ध ऋषियों की तरह चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारकादि और भूत, भविष्य, वर्तमान का विषय प्रत्यक्ष हो जाय उसे दीप्ति कहते हैं। इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ, मन और पंच-वायु जिससे प्रसन्न हों उसे प्रसाद कहते हैं। यह चार प्रकार का पहला प्राणायाम-धर्म हुआ। यह तुरन्त फलदायक और काल-भय का निवारक है।"

इस प्रकार पुराणकार ने प्राणायाम को बहुत महत्व दिया है और यथा-संभव उसकी व्यवहारिक विधि का ज्ञान कराने की चेष्टा की है। इसके लिए उन्होंने साधक को स्पष्ट चेतावनी दे दी है कि उसे खूब सोच-समझकर और पूर्ण जानकारी प्राप्त करके समस्त नियमों का पालन करते हुये प्राणायाम करना चाहिये। जो अनियम से अथवा गलत तरीके से प्राणायाम करेगा उसे जड़ता, बहिरापन, मूकत्व, अन्धापन, स्मृति-लोप, वृद्धता आदि अनेक प्रकार के रो...

त्पन्न हो जाते हैं। ये सब दुष्परिणाम अज्ञानपूर्वक योग कर्म में प्रवृत्त होने होते हैं। इस प्रकार की चेतावनी अन्य कई ग्रन्थों में भी देखने में आती है, र इस पु... इन रोगों की जो चिकित्सा दी गई है, वह सर्वत्र देखने में नहीं आती। कोई अनुभवी योगी ही उसका विधान कर सकता है। प्राणायाम जनित दोषों की चिकित्सा बतलाते हुये कहा है—

"प्राणायाम से उत्पन्न होने वाले दोषों को शान्त करने के लिये स्निग्ध पदार्थ मिश्रित गर्म यवागू (जौ की पतली लपसी बिना नमक या मीठे की) कुछ काल तक पीड़ित स्थान पर धारण करे। इससे वात गुल्म नष्ट होता है। गुदावर्त को दूर करने को यह चिकित्सा करे कि दही अथवा यवागू का भोजन करें और वायु ग्रन्थि का भेदन करके उसे ऊपर की तरफ चलावे। अगर इससे ... न मिटे तो मस्तक में धारणा करे। जिस योगी के सर्वाङ्ग में कँपकँपी हो जाय, वह शरीर को आसन द्वारा स्थिर कर मन में किसी पर्वत की धारणा करे। छाती का दर्द होने पर उस स्थान या कण्ठ देश में वैसी ही धारणा करे। बोली रुक जाने पर वचन में और बहरापन हो तो कानों में धारणा करे। प्यास का कष्ट होने से स्नेहाक्त प्रज्ज्वलित अग्नि की धारणा करे। इन चिकित्साओं के फल की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करे। क्षय, कुष्ठ, कीलसादि राजस रोगों में सात्विकी धारणा करे। जिस-जिस स्थान में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो, वहाँ-वहाँ सात्विकी धारणा करे। जो भयभीत हो जाय उसके मस्तक पर लकड़ी की कील रखकर धीरे-धीरे खटखटावे। इससे उसकी संज्ञा लौट आती है। अगर साँप ने काट लिया हो तो हृदय और उदर में धारणा करे। अगर विषाक्त पदार्थ सेवन करने में आ गया हो, तो हृदय में विशल्या धारणा करे। मन में पर्वतमय पृथ्वी की धारणा कर हृदय में देवता और समुद्र की धारणा करे। योगी ऐसी चिकित्सा के लिये हजार घड़े तक से स्नान करते हैं। कण्ठ तक जल में घुसकर मस्तक में धारणा करे। आक (मदार) के सूखे पत्ते की ...नियाँ बनाकर दीमक की मिट्टी को घोलकर पी जाय। योग सम्बन्धी दोषों की चिकित्सा ऐसी ही आन्तरिक क्रिया द्वारा की जाय।"

यह तो हुई योगाभ्यास में भूल के कारण उत्पन्न हो जाने वाले विकारों और दोषों की बात। योग में शारीरिक क्रियाओं की अपेक्षा मानसिक भाव-

नाओं का महत्व अधिक है, इसलिये उसके दोषों की चिकित्सा भी मानसिक ढंग की होनी चाहिये। योगी की धारणा शक्ति निस्सन्देह प्रभावशाली होती है और वह शरीर की आरोग्यप्रदायक शक्ति को किसी स्थान पर संलग्न कर सकता है। इसलिये योगी के शारीरिक कष्ट सामान्य उपायों से ही दूर हो जाते हैं।

मानसिक विकारों का प्रतिकार—

शारीरिक व्याधियों की अपेक्षा भी मानसिक विकार बड़े अनिष्टकारी और मनुष्य का पतन करा देने वाले होते हैं। शरीर के कष्टों को सहते हुए जीवन के आवश्यक कार्यक्रमों को किसी प्रकार पूरा किया जा सकता है, पर मनोविकारों में ग्रस्त प्राणी का तो अपने ऊपर से नियंत्रण ही हट जाता है और वह शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होते हुये भी निकम्मा या हानिकर हो जाता है। इस सम्बन्ध में विवेचन करते हुये पुराणकार लिखते हैं—

"तत्व-दृष्टि से योगियों के उपसर्गों (व्याधिओं) पर विचार करने से विदित होता है कि यदि मनुष्योचित विविध कामना, स्त्री-प्रसंग की अभिलाषा, पुत्रोत्पादन इच्छा, विद्यादान, अग्निहोत्र, हविर्यज्ञ आदि तपस्याएँ, कपट, धनार्जन, स्वर्ग की स्पृहा आदि वस्तुओं में योगी आसक्त हो गया तो वह अविद्या के वशीभूत हो जायगा। इसलिए इनको उपसर्ग समझ कर निरन्तर इनसे बचने का उपाय करना चाहिए। दूर की ध्वनि सुनने की शक्ति, देवताओं का दर्शन सिद्ध का लक्षण कहा गया है। विद्या, कवित्व, शिल्प नैपुण्य, सब भाषाओं का बोध, विद्या का तत्वज्ञान, सुनने योग्य शब्दों को सौ योजन दूर से भी सुन लेना, यक्ष, राक्षस गन्धर्व आदि का दिव्य-दर्शन आदि योगियों के लिये विघ्नस्वरूप हैं। योगी जब सब दिशाओं में देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, पितरों को देखने लगते हैं, तब वे उन्मत्त हो जाते हैं।

आगे चलकर फिर कहा गया है कि योगियों की आठ प्रकार की सिद्धियाँ कही गई हैं जिन को योग के आठ ऐश्वर्य समझना चाहिये। यह तीन प्रकार का होता है—सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म। सावद्य नामक तत्व पंचभूतात्मक है, निरवद्य भी पंचभूतात्मक है। स्थूल इन्द्रिय, मन और अहंकार एवं सूक्ष्म इन्द्रिय, मन और अहंकार तथा सम्पूर्ण आत्मख्याति-अष्ट ऐश्वर्यों की यह

त्रिविधि प्रवृति है। त्रैलोक्य में जितने जीव-जन्तु हैं वे सब ऐसे योगी के वश में होते हैं। वे तीनों लोकों के पदार्थ को पा सकते हैं, इच्छानुरूप विषय भोग कर सकते हैं। यहाँ तक कि शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और मन आदि प्राकृतिक इन्द्रियों के विषय भी योगी की इच्छानुसार प्रवर्तित होते रहते हैं। ऐसे योगी को जन्म, मृत्यु, छेद, भेद, दाह, मोह, संयोग क्षय, क्षरण, खेद आदि कुछ भी नहीं होते, "पर इतना सब होने पर भी यदि वे ब्रह्मज्ञान का अवलम्बन करके अपवर्ग नामक परम पद की साधना नहीं करते तो वे रागवश राजस-तामस कर्मों के आचरण से फिर उन्हीं में लिप्त हो जाते हैं। उनमें से जो सुकृत करते हैं वे उसके फलस्वरूप स्वर्गलाभ करते हैं। वे फलभोग करने की उपरान्त पुनः भ्रष्ट होकर मानव-जन्म प्राप्त करते हैं। इस कारण अत्यन्त ... जो परब्रह्म है वही सर्वकालीन है और उस ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये।"

वास्तविकता यही है कि मनुष्य ज्ञान, योग, कर्म, भक्ति किसी भी मार्ग पर चले जब तक उसके विचारों में शुद्धता, पवित्रता, निस्वार्थता और सात्विकता नहीं आयेगी, उसे किसी चिरस्थायी फल की आशा नहीं हो सकती। थोड़े समय तक हठपूर्वक इन्द्रियों को रोक कर कोई साधन करके विशेष शक्ति प्राप्त कर लेना और बात है तथा मन और अन्तःकरण को क्रमशः बिल्कुल निर्मल और शुद्ध बनाकर ईश्वरीय आदेश के अनुकूल मार्ग को ही पूरी तरह ग्रहण करना दूसरी बात है। पहली श्रेणी के व्यक्ति थोड़े समय के लिये कोई चमत्कार-सा दिखलाकर दुनियाँ को प्रभावित कर सकते हैं, नामवरी, यश और प्रशंसा भी प्राप्त कर सकते हैं, पर उनकी ये चीजें ज्यादा समय तक टिक नहीं सकतीं। इतना ही नहीं ऐसे व्यक्तियों में से कितने ही बाद में स्वार्थ और विषयों की लालसा में फँसकर पतित भी हो जाते हैं। उनकी वही गति होती है जैसा कि गीता में कहा है—

कर्मेन्द्रिय संयम्य य आस्ते मनसास्मरन।
इन्द्रियार्थान्विमूढ़ात्मा मिथ्याचार स उच्यते॥

जीवन के उत्थान और अध्यात्म क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करने का मार्ग शुद्ध और सत्य भावों से धर्मानुष्ठान करना है। जो व्यक्ति मन के भीतर

कामनाएँ रखकर साधन-भजन करते हैं उनको सिद्धियाँ और चमत्कार की शक्ति प्राप्त कर लेने पर भी अन्त में गिरना ही पड़ता है।

अहिंसा का प्रतिपादन—

धार्मिक-जीवन में हिंसा और अहिंसा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। यों तो हिंसा प्राणी जगत का एक सामान्य नियम है और "जीवो जीवस्य भोजनम्" की लोकोक्ति प्रचलित हो गई है। पर यह नियम उन विवेकशून्य प्राणियों के लिये है जिनको ईश्वर ने ज्ञान रूपी महान तत्व प्रदान नहीं किया है। पर जिस 'मनुष्य' प्राणी के लिये भगवान ने ज्ञान-विज्ञान-अध्यात्म के सब रास्ते खोल दिये हैं उसके लिये सर्वोच्च आदर्श 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का ही हो सकता है। जब समस्त संसार में एक ही आत्म-तत्व व्याप्त है और प्राणीमात्र एक ही विश्व-व्यापी चैतन्य तत्व से उद्भूत हुआ है तब कोई ज्ञानी व्यक्ति किस प्रकार जीव हिंसा का समर्थन कर सकता है। इस देश के कुछ धर्माचार्यों ने "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" लोकोक्ति का सहारा लेकर यज्ञादि में हिंसा का प्रतिपादन किया है, पर उनकी इस अनीतिमूलक प्रणाली के फलस्वरूप यज्ञ-कर्म का विरोध होने लगा और अन्त में ऐसा समय आया जब इस देश से यज्ञ-प्रथा का लोप ही हो गया। 'वायुपुराण' में इस समस्या की गम्भीरपूर्वक विवेचना की है और स्पष्ट शब्दों में यह निर्णय किया है कि यज्ञादि में जीव हिंसा कदापि धर्मकार्य नहीं हो सकती। त्रेता युग में यज्ञ का प्रचलन होने का वर्णन करते हुये पशुवलि के सम्बन्ध में उसमें यह कथानक मिलता है—

"जब त्रेता में वृष्टि के उपरान्त सभी प्रकार की औषधियाँ पृथ्वी पर पैदा हो गईं, लोग घर द्वार, आश्रम और नगर बनाकर रहने लगे, तो विश्व-भोक्ता देवराज इन्द्र ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था कर ऐहिक एवं पारलौकिक कल्याण के लिये वेद संहिताओं और मंत्रों का प्रचार कर यज्ञ की प्रथा प्रचलित की। उस समय अश्वमेध यज्ञ का कार्य जब आरम्भ हुआ तो सभी महर्षिगण आकर उसमें सम्मिलित हो गये, और मेध्य पशुओं के द्वारा यज्ञ का आरम्भ सुनकर सभी लोग दर्शनार्थ उपस्थित हुये। जब सभी पुरोहितगण उस निरन्तर चलने वाले यज्ञ-कर्म में व्यस्त हो गये, यज्ञ में भाग लेने वाले देवता और महात्मागण आवाहित होने लगे, ठीक उसी समय यज्ञ-मंडल में समागत महर्षिगण

अध्वर्यु गण को पशुओं के स्नानादि में समुद्यत देखकर उन पशुओं की दीनता पर करुणार्द्र होकर इन्द्र से बोले कि 'यह तुम्हारे यज्ञ की कैसी विधि है ? हिंसामय धर्म कार्य करने के इच्छुक तुम यह महान अधर्म कार्य कर रहे हो। हे सुरोत्तम ! तुम्हारे जैसे देवराज के यज्ञ में यह पशुवध कल्याणकारी नहीं है। इन दीन पशुओं की हिंसा से तुम अपने संचित धर्म का विनाश कर रहे हो। यह पशु हिंसा कदापि धर्म नहीं है, हिंसा कभी भी धर्म नहीं कहा जा सकता। यदि तुम्हें यज्ञ करने की अभिलाषा है तो वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करो। हे सुरश्रेष्ठ ! वेदानुमत विधि से किया गया यज्ञ अक्षय फलदायी होगा। उन यज्ञ-बीजों से तुम यज्ञ आरम्भ करो जिनमें हिंसा का नाम नहीं है। हे इन्द्र ! प्राचीनकाल में बीस वर्ष पुराने रखे हुये बीजों द्वारा ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था। वह महान धर्ममय यज्ञाराधन हैं।

इस प्रकार उन तत्वदर्शी समागत मुनियों के कहने पर विश्वभोक्ता इन्द्र को यह संशय उत्पन्न हो गया कि अब हमें स्थावर तथा जंगम इन दो प्रकार के उपकरणों में से किसके द्वारा यज्ञाराधन करना चाहिये। इन्द्र के साथ विवाद में पड़े उन मुनियों ने यह समझौता किया कि इस विषय में राजा वसु की सम्मति ग्रहण की जाय।

उन सबने राजा बसु के पास जाकर कहा—हे परम बुद्धिमान राजन् ! आप परम धार्मिक राजा उत्तानपाद के पुत्र और स्वयं महामहिमशाली हैं, अतः हम लोगों के इस संशय को दूर करें। कृपया यह बतावें कि आपने यज्ञों की विधि किस प्रकार की देखी है ? इस बात को सुनकर राजा ने उचित-अनुचित का विचार न करके केवल ग्रन्थों के यज्ञ विषयक वचनों को स्मरण करके यह कहा कि शास्त्रीय उपदेशों के अनुसार यज्ञाराधन करना चाहिये। शास्त्रों का कथन है कि मेध्य पशुओं द्वारा अथवा बीजों और फलों द्वारा यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है, ऐसा मुझे वेद वाक्यों से मालूम हुआ है। परम तपस्वी योगी, महर्षियों के द्वारा अविष्कृत मंत्र-समूह हिंसा के द्योतक हैं और तारकादि दर्शनों द्वारा भी यज्ञों का हिंसामूलक होना अनुमित है। राजा बसु की ऐसी बातों से निरुत्तर होकर उन योगयुक्त तपस्वी ऋषियों ने कहा— 'हे राजन् ! तू राजा होकर भी ऐसी मिथ्या बात कह रहा है, अतः चुप रह।'

ऐसा कहने के बाद उन्होंने नीचे की ओर बने एक भवन की ओर देखा और कहा 'अब तू रसातल में प्रवेश कर।' मुनियों के ऐसा कहते ही राजा वसु, जो आकाशचारी था वसुधा तल पर आ गया। अतः पण्डित व्यक्ति को भी धर्म का निर्णय करने में बहुत सतर्क रहना चाहिये। क्योंकि धर्म के अनेक द्वार होते हैं, इसकी सूक्ष्म गति का वास्तविक ज्ञान अतिशय गूढ़ है। महर्षियों ने जीव-हिंसा को धर्म का द्वार नहीं माना है।"

यद्यपि अधोगति में पड़े जीवों के लिये हिंसा का सर्वथा त्याग और अहिंसा के उच्च आदर्श का पालन बड़ा कठिन है, तोभी धर्म कार्यों में हिंसा का प्रवेश कदापि वांछनीय नहीं कहा जा सकता। किसी एक व्यक्ति के हिंसा करने से उसका प्रभाव आस-पास के थोड़े लोगों पर ही पड़ता है और उसे कोई महत्व नहीं दिया जाता, पर धर्म-कार्य में हिंसा होने से उसे एक प्रमाण की तरह मान लिया जाता है और समस्त समाज के लिये ही एक दुष्प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होने का मार्ग खुल जाता है। अतः यज्ञों के रूप में जीव हिंसा का विधान निस्सन्देह, क्रूरता और अधार्मिकता का परिचायक है और इससे मनुष्य की निम्न वृत्तियों को प्रोत्साहन मिलकर उसका पतन ही होता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण—

प्राचीन समय में ज्ञान-विज्ञान के सम्बन्ध में जितनी खोज की गई थी वह पर्याप्त महत्वपूर्ण है। उसी के आधार पर आज का विज्ञान चमत्कारी अविष्कार कर रहा है। अग्नि और जल द्वारा भाप का इंजिन बनाकर रेल चलाना निस्सन्देह बुद्धिमत्ता का प्रमाण है, पर जिन मनुष्यों ने दावानल के भयंकर अग्निकाण्ड में से थोड़ी अग्नि लेकर उसे गृहोपयोगी रूप में प्रयोग किया वह भी कम प्रशंसा के पात्र नहीं है। इसी प्रकार वर्तमान-युग में अणु-बम एक युग परिवर्तनकारी अविष्कार है, पर जिन भारतीय मनीषियों ने कई हजार वर्ष पहले यह घोषित कर दिया था कि संसार के प्रत्येक पदार्थ का आदि कारण परमाणु हैं और वही सृष्टि-प्रक्रिया का मूल आधार है वे ही परमाणु-विज्ञान के आदि पुरुष माने जायेंगे। वायु-पुराणकार की दृष्टि भी सृष्टि-प्रक्रिया और उससे निर्मित विभिन्न प्रकार के पदार्थों के मूल कारण पर रही है। यद्यपि उन्होंने पौराणिक परम्परा के अनुसार सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्रों को

देवता मानकर उनके रथों, घोड़ों, महलों और दरबारियों का मनोरंजक वर्णन
किया है, जिससे जन समूह उनकी ओर आकर्षित हों, पर साथ ही बीच-बीच
में विशुद्ध वैज्ञानिक तथ्यों का परिचय भी दे दिया है। यद्यपि सूर्य को उन्होंने
सर्वसाधारण के ज्ञानानुसार पृथ्वी से बहुत छोटा और चन्द्रमा से आधा प्रकट
किया है और लोकरंजन के निमित्त उसमें मुनि, ऋषि गन्धर्व, अप्सरा यातु-
धान, सर्प आदि का दरबार लगता भी बतलाया है, पर साथ ही अन्य स्थान
पर यह भी प्रकट कर दिया है संसार का एकमात्र और आदि कारण सूर्य
ही है। उसमें कहा गया है—

"तीनों लोकों का मूलकारण सूर्य ही है इसमें सन्देह नहीं। देवता,
असुर और मनुष्यों से पूर्ण यह सम्पूर्ण जगत सूर्य का ही है। रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र
और चन्द्रादि देवों का जो तेज है, वह सूर्य का ही तेज है। ये ही सर्वात्मा,
सर्वलोकेश और मूलभूत परम देवता है। सूर्य से ही सब उत्पन्न होते हैं और
सूर्य में ही सब लीन होते हैं। पूर्वकाल में लोकों की उत्पत्ति और विनाश
सूर्य से ही हुआ है। जहाँ से बारम्बार क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास,
संवत्सर, ऋतु, वर्ष, युग आदि उत्पन्न होकर जिसमें लय को प्राप्त होते हैं,
वह सूर्य ही है। सूर्य को छोड़कर और किसी साधन से काल की गणना नहीं
की जा सकती। और बिना काल तथा समय के न शास्त्र, न दीक्षा, न दैनिक
कृत्य हो सकते हैं। तब न ऋतुओं का विभाग होगा, न पुष्प खिलेंगे न फल-
फूल की उत्पत्ति होगी, न सस्य होगा न औषधियाँ बढ़ेंगी। संसार को प्रतप्त
करने वाले और जल का आहरण करने वाले सूर्य के बिना यहाँ क्या, स्वर्ग
में भी देवों का व्यवहारिक कार्य रुक जायगा। विप्रो! सूर्य ही काल है, अग्नि
है और द्वादशात्म प्रजापति है। ये ही तीनों लोकों के चराचर को प्रतप्त किया
करते हैं। सूर्य देव परम तेजस्वी और लोक पालों के आत्मा है ये उत्तम वायु-
मार्ग का अवलम्बन करके किरणों द्वारा ऊपर-नीचे, अगल-बगल और सभी
जगहों में ताप-दान करते हैं।"

वायु पुराण ने सूर्य के विषय में जो लिखा है वही आधुनिक विज्ञान
की खोज से प्रकट हुआ है। सूर्य से ही समस्त ग्रहों ओर उपग्रहों की उत्पत्ति
होती है, वही इनमें जीवन और प्राणतत्व की उत्पत्ति का मुख्य हेतु है, वही

जगत के सब व्यवहारों को स्थिर रखने का आधार है और अन्त में वही इन सब की प्रलय भी करता है, यही विज्ञान का आधुनिकतम सिद्धान्त है। धर्म शास्त्रों के मतानुसार भी अव्यक्त परब्रह्म का प्रकट रूप सूर्य ही है। वही उत्पत्ति पालन, और प्रलय के कर्ता के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के कार्यों की पूर्ति करता है। इस प्रकार धर्मशास्त्र तथा विज्ञान इस सम्बन्ध में एक मत है कि सृष्टि का मूल आधार सूर्य ही है और यही बात उपरोक्त उद्धरण में वायुपुराणकार ने स्पष्ट शब्दों में कह दी है।

यह भी स्पष्ट है कि उस युग में यंत्र-विद्या का इतना अधिक प्रचार नहीं था कि आजकल की तरह भीमकाय दूरवीनों तथा अन्य ताप-मापक यंत्रों द्वारा दूरवर्ती ग्रहों, ताराओं का आन्तरिक रहस्य जान सकें। स्वयं वायुपुराण ने ज्योतिष सम्बन्धी बातों का पता लगाने के लिये जिन साधनों का वर्णन किया है उनमें यंत्रों का जिकर नही किया है 'ज्योतिमण्डल का विस्तार' शीर्षक प्रकर्ण के अन्त में उन्होंने स्वयं लिखा है—

"ज्योतिर्मण्डल का ठीक-ठीक वर्णन कोई भी मनुष्य चर्म-चक्षुओं से देखकर नहीं कर सकता। बुद्धिमान मनुष्य शास्त्र, अनुमान, प्रत्यक्ष एवं उपपत्ति (युक्ति) द्वारा निपुणतापूर्वक परीक्षा कर इनमें भक्ति और स्रद्धा करे। बुद्धिमान विप्रो ! ज्योति-तत्व के निर्णय में चक्षु, व शास्त्र, जल, लिखित ग्रन्थादि और गणित वे ही पाँच कारण कहे गये हैं।" इससे यह सिद्ध होता है कि पुराण के रचयिता अपनी तर्क बुद्धि और योग शक्ति (एकाग्रता और ध्यान) से सृष्टि मूल रहस्यों को अधिकांश में समझ सके थे। यदि उन्होंने इन विषयों को रूपक, उपमा, दृष्टान्त के आवरण में छिपाकर प्रकट किया है, तो इसका कारण यही है कि वे जनसाधारण को सामने गहन तत्वों अधिक रूप में रखना निरर्थक समझते थे। सामान्य बुद्धि वालों को अत्यन्त सरल रूप में इन तत्वों से परिचित करा देने का काम जैसी युक्ति और चतुरता से इन पुराणकारों ने सम्पन्न किया उस प्रशंसनीय ही कहा जायगा। इनके द्वारा सर्वसाधारण में सैकड़ों वर्षों तक आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक शिक्षा का प्रचार होता रहा और लोगों में धर्म-कर्त्तव्य-बुद्धि जागृत रही।

यह बात दूसरी है कि काल-क्रम से इस क्षेत्र में भी स्वार्थी और कम

योग्यता वाले लोगों ने प्रवेश किया और अपने स्वार्थ की पूर्ति की निगाह से तरह-तरह की मिलावट करके पुराणों की निर्मल धारा को गँदला बना दिया । स्वार्थीजन सदैव अपना दाव-घात ढूँढ़ते रहते हैं और जहाँ कहीं लाभ का मौका देखते हैं वहीं तरह-तरह के छल-बल, धूर्तता से भीतर घुस कर दोष उत्पन्न करते हैं और अपना मतलब पूरा करने की चेष्टा करते हैं । ऐसे व्यक्ति कभी इस कान की भी चिन्ता नहीं करते कि हमारी इस सामयिक स्वार्थपरता के कारण जन-जीवन बहुत समय के लिये पतित और गर्हित हो जायगा वर्तमान समय की राजनीतिक संस्थाओं में इसका उदाहरण भलीभाँति देखा जा सकता है कि किस प्रकार लोग देशभक्त और जन नायक का वेश धर कर भीतर घुस जाते हैं और सच्चे कार्यकर्ताओं को हटाकर भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं । यही बात पुराणों के सम्बन्ध में भी हुई है और इसी से हमको उनका विकृत रूप दिखलाई पड़ता है ।

साम्प्रदायिकता के दोष का शमन—

पुराणों पर प्रायः साम्प्रदायिक विद्वेष की बातें फैलाने का दोषारोपण किया जाता है । कई शैव पुराणों में ब्रह्मा और विष्णु के सम्बन्ध में बहुत-सी हीनता द्योतक बातें लिखी हैं और एकाध वैष्णव पुराण में उसी तरह शिव को नीचा सिद्ध करने की चेष्टा की गई है । किसी शैव लेखक ने लिखमारा कि 'विष्णु को प्रणाम करने वाला व्यक्ति नरकगामी होता है' तो उसी के मुकावले के किसी वैष्णव नामधारी ने शिव-पूजा को घोर पाप कर्म घोषित कर दिया । इस दृष्टि से 'वायु पुराण' का दर्जा काफी ऊँचा माना जायगा कि जिसमें 'शैव-पुराण' कहलाने पर भी विष्णु के सम्बन्ध में कोई निन्दात्मक बात नहीं है, वरन् तीन अध्यायों में विष्णु-वंश का वर्णन करते हुये जगह-जगह उनकी प्रशंसा ही की गई है । 'वायु पुराण' में भी दक्ष और शिव के विरोध तथा संघर्ष की कथा दी गई है पर उसमें विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि की वैसी दुर्गति तथा हीनता का एक शब्द भों नहीं मिलता जैसा कि 'शिवपुराण' आदि में दिखाया गया है । 'वायु पुराण' में शिव को ही सृष्टि का मूल और सर्व शक्तिमान बतलाया गया है पर विष्णु के सम्बन्ध में भी उसने जब कभी

उनकी चर्चा आई है, सम्मान युक्त भाषा का प्रयोग किया है। विष्णु के विभिन्न अवतारों के रहस्य को जानने की इच्छा रखने वाले ऋषियों ने उनकी महिमा का जिस प्रकार वर्णन किया उससे प्रकट होता है कि इस पुराण के रचयिता के विचारानुसार विष्णु का सम्मान महादेव के समान ही है। ऋषियों ने सूतजी से विष्णु भगवान की कथा सुनने की अभिलाषा करते हुये कहा—

"सूतजी ! भगवान विष्णु किस लिये पृथ्वी पर प्रादुर्भूत होते हैं ? उनके कितने अवतार कहे जाते हैं ? भविष्य में अन्य कितने अवतार होंगे ? युगान्त के अवसर पर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति में वे किस लिये उत्पन्न होते हैं ? वे इस प्रकार बारम्बार मानव-योनि में किस लिये जन्म धारण करते हैं ? इसे हम लोग जानना चाहते हैं, कृपया कहिये। उन परम बुद्धिमान शत्रु संहारकारी भगवान कृष्ण के शरीर से जो-जो कर्म [illegible] होते हैं, उन सबको हम भली भाँति सुनकर चाहते हैं। उनके इस कार्यों को क्रमपूर्वक हमें बताइये, उसी प्रकार उनके अवतारों के विषय में भी वर्णन कीजिये। उन सर्वव्यापी भगवान की प्रवृत्ति के विषय में भी हमें जिज्ञासा है। महा महिमामय वे भगवान विष्णु किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए वसुदेव के कुल में उत्पन्न होकर वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) की पदवी प्राप्त करते हैं ? देवताओं और मनुष्यों को उचित मार्ग पर लगाने वाले, भूर्भुवः आदि लोकों के उत्पत्तिकर्ता भगवान हरि किसलिए दिव्यगुण सम्पन्न अपनी आत्मा को मानव-योनि में समाविष्ट करते हैं ? चक्र धारण करने वालों में श्रेष्ठ जो भगवान अकेले ही संसार के मानव-मात्र के मनरूपी चक्र को सर्वदा परिचालित करते रहते हैं, उन्हें मानव-योनि में उत्पन्न होने की इच्छा क्यों हुई ? सर्वत्र व्याप्त रहने वाले जो भगवान विष्णु इस समस्त चराचर जगत की सर्वत्र रक्षा करने वाले हैं, वे किसलिये इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं और किसलिए गौओं का पालन करते हैं।

"जो भूतात्मा भगवान संसार के समस्त भूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि आदि) को धारण करने वाले तथा उत्पन्न करने वाले हैं, जो लक्ष्मी द्वारा धारण किये जाने वाले हैं, वे एक मर्त्यलोक निवासिनी सामान्य गृहिणी के गर्भ में किस लिये आते हैं। जिन्होंने देवताओं को यज्ञभोक्ता तथा पितरों को श्राद्ध-भोक्ता बनाया, जो स्वयं यज्ञादि शुभ कार्यों में विधि के अनुसार भोग के लिए

यज्ञ रूप में प्रतिष्ठित होते हैं, जिन्होंने युग के अनुसार तीन लोकों की क्रमानुसार रचना कर क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, भूत, भविष्यत्, वर्तमान, ये तीन काल, मुहूर्त, तिथि, मास संवत्सर, ऋतु, काल, योग आदि की रचना की है, जिन्होंने सर्व जीव समूहों में व्याप्त रहकर सब जीवों की सृष्टि की है, जो मानव की इन्द्रियों में योग द्वारा रमण करते हैं, जो गत-आगत सबके नेता हैं, जो सर्वत्र विराजमान एवं जगत के विस्तृत विविध विधानों के अधीश्वर हैं, जो धर्मात्मा लोगों की एकमात्र गति हैं, जो पापात्माओं के लिये दुर्गतिस्वरूप हैं, जो चारों वर्णों, के उत्पत्तिकर्ता एवं रक्षक हैं, उनका वर्णन हमें सुनाइये।

"इन समस्त लोकों की सृष्टि करने वाला जो सनातन पुरुष है, वह इस मर्त्यलोक में किस लिये आगमन करता है ? परम बुद्धिमान सूतजी ! इस बात का हमें बड़ा ही सन्देह है और महान विस्मय तो यह है कि जो स्वयमेव सद्गति प्राप्त करने [illegible] गति है, वह मनुष्य शरीर धारण ही क्यों करता है ? भगवान विष्णु के इन आश्चर्य में डालने वाले कर्मों के विषय में हम लोग क्रमानुसार सुनना चाहते हैं। वेद एवं देवगण उन भगवान विष्णु को परम आश्चर्यमय बतलाते हैं। हे महामते ! भगवान विष्णु की उस आश्चर्यमयी सम्भूति को आप बतलाइये। उनका आख्यान कहने और सुनने वालों को परम सुख देने वाला है। उनके बल एवं पराक्रम की विशेष ख्याति है। वे परम ऐश्वर्यशाली एवं महान हैं। उनके कर्म आश्चर्य से भरे हैं, उनके पराक्रम के सम्बन्ध में भी हम लोगों को बतलाइये।"

किसी अन्य शैव-पुराण में विष्णु का इस प्रकार गुणगान नहीं पाया जाता। उल्टा अनेक लेखकों ने उनके लिये अनुचित, अपमानजनक शब्द और घटनाक्रमों का प्रयोग किया है। यह शैली ठीक नहीं हैं और इस प्रकार की ओछी बातें पढ़ने से पाठक के हृदय में कहने वालों के प्रति सम्मान की भावना कम हो जाती है। इस दृष्टि से 'वायु पुराण' के वर्णन सर्वत्र सभ्यता और शिष्टता की रक्षा करने वाले हैं। जिस प्रकार भगवान विष्णु शिवजी की स्तुति करते हैं उसी प्रकार शिवजी भी उनकी सदैव प्रशंसा ही करते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व जब ब्रह्माजी विष्णु की नाभि कमल से उत्पन्न हुए तब भगवान शंकर वहाँ आये और विष्णु द्वारा स्तुति किये जाने पर प्रसन्न

होकर बोले—"विष्णो ! देव ! शाश्वत ! सुनो, मेरी तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रीति है । प्रकाश-अप्रकाश, जङ्गम-स्थावर, अथवा यह सारा विश्व ही रुद्र और नारायणमय हैं । मैं अग्नि हूँ तुम सोम हो, तुम रात्रि और मैं दिन हूँ । तुम ऋत हो मैं सत्य हूँ । तुम यज्ञ हो मैं उसका फल हूँ । तुम ज्ञान हो मैं ज्ञेय हूँ । सुकृत करने वाले जन तुम्हारा जप कर, तुमको प्रसन्न कर मुझमें प्रविष्ट हो जाते हैं । युगक्षय काल में हम दोनों को छोड़कर दूसरी कोई गति नहीं है । तुम अपने को प्रकृति समझो और मुझको पुरुष । तुम जिस प्रकार मेरे आधे शरीर हो उसी प्रकार मैं भी तुम्हारा आधा शरीर हूँ । तुम हमारे महान श्रीवत्स पद लक्षण श्यामल वाम पार्श्व हो और मैं नील लोहित दक्षिण पार्श्व हूँ । हे विष्णो तुम मेरे हृदय हो और मैं तुम्हारे हृदय में स्थित हूँ । तुम सभी कार्यों के कर्ता और मैं कार्यधिष्ठित देवता हूँ । [illegible] कल्याण हो ।"

वायु पुराणकार ने जो इस प्रक[illegible]शयता, शालीनता का परिचय दिया है वह धर्म के लिये परम हितकारी हैं । यदि अन्य पुराणकार भी ऐसी ही मनोवृत्ति का परिचय देते तो आज यह देश साम्प्रदायिक विद्वेष और पारस्परिक विरोध-भावना से बहुत कुछ मुक्त होता । यदि कोई किसी अन्य के उपास्य देव पर कटाक्ष करेगा तो वह भी वैसी ही भावना प्रकट करेगा और इससे समाज में कलह तथा विशृङ्खलता फैलेगी और धर्म की अप्रतिष्ठा होगी । इसलिए इस विषय में 'वायुपुराण' की नीति सर्वथा सराहनीय है ।

'वायु पुराण' के वर्णनों की स्पष्टता—

जैसा पहले बतलाया जा चुका है पुराणकारों ने अनेक वैदिक-तत्वों से रूपक, अलंकारयुक्त बड़ी-बड़ी कथायें बनाकर मनोरंजन के साथ धर्म-शिक्षण की विधि से काम लिया है । उदाहरण के लिए 'वामनावतार' का कथानक प्रसिद्ध है । वेदों में विष्णु की प्रशंसा करते हुए दो-चार स्थानों पर यह कहा गया है कि "यह समस्त विश्व आपकी पैरों की धूल में समाया हुआ है ।" यह कथन ब्राह्मण ग्रन्थों में व्याख्या द्वारा बलि-वामन की संक्षेप कथा के रूप में बदल दिया गया और पुराणों में इसे क्रमशः बढ़ाते हुए अन्त में 'वामन पुराण' जैसे स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत कर दिया गया ।

यही बात देवी या दुर्गा की कथा कथा के सम्बन्ध में है। 'मार्कण्डेय पुराण' में दी गई 'दुर्गा सप्तशती' की कथा में दुर्गा और असुरों के संग्राम का वर्णन बड़े वीरतापूर्ण और रोचक ढङ्ग से किया गया है। 'देवी भागवत' में तो उसे एक 'महापुराण' के समान विस्तृत रूप दे दिया गया है। इनमें पूर्व चरित्र में मधु-कैटभ का वध है, मध्यम चरित्र में महिषासुर का वध है और उत्तर चरित्र में शुम्भ-निशुम्भ आदि के वध का वर्णन किया गया है।

देवी का उल्लेख वेदों में भी आया है पर वहाँ विश्व की मूलभूत चिति-शक्ति ही 'देवी' है। उसका एक मुख्य रूप वाक् या वाणी भी बताया गया है। वह 'वाग्देवी' अपनी महिमा और शक्ति का वर्णन करती हुई कहती है—

"मित्र और [illegible] और अग्नि, दोनों अश्विनीकुमार इनको मैं ही धारण करती हूँ। वसु, [illegible] इस 'त्रिक' का संचरण मेरे ही द्वारा होता है। ब्रह्माणस्पति, सोम, त्वष्टा, पूषा, भग इनका भरण करने वाली मैं ही हूँ। राष्ट्र की नायिका मुझे ही समझो। मैं ही वस्तुओं का संचय करने वाली वसु पत्नी हूँ। जितने यज्ञीय अनुष्ठान हैं सबमें प्रथम मेरा स्थान है। देवों ने मुझे अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित किया है। जो देखता, सुनता और साँस लेता है वह मेरी ही शक्ति से अन्न खाता है। मैं जिसका वरण करती हूँ उसे ही उग्र, ब्रह्मा, ऋषि और मेधावी बना देती हूँ। रुद्र के धनुष में मेरी ही शक्ति प्रविष्ट है। मेरा अपना जन्मस्थान जलों के भीतर पारमेष्ठी समुद्र में है। वहाँ से जन्म लेकर मैं सब लोकों में व्याप्त हो जाती हूँ। मेरी ऊँचाई द्युलोक को स्पर्श करती है। झंझावात की तरह साँस लेती हुई मैं सब भुवनों का उपादान हूँ। द्युलोक (स्वर्ग) और पृथ्वी से भी परे मेरी महिमा है।

(ऋग्वेद १०।१२५)

पर पुराणों में देवी के वर्णन को अत्यन्त विस्तारयुक्त कथा का रूप देकर एक भिन्न प्रकार की उपासना पद्धति तथा सम्प्रदाय का स्रोत बना दिया गया। उनमें मधु-कैटभ वध के अवसर पर देवी का विष्णु की 'महामाया' के रूप में वर्णन किया गया, जिसने ब्रह्माजी द्वारा स्तुति किये जाने पर विष्णु को जगाया और मधु-कैटभ को मोहित करके विष्णु द्वारा उनका वध कराया।

महिषासुर के उपाख्यान में उसके पूरे शरीर का वर्णन किया गया है कि महादेव जी के मुख से जो तेज निकला उससे उसका मुख बना, यम के तेज से केश और विष्णु के तेज से उसकी दोनों बाहु बनीं। चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज से मध्यदेश, वरुण के तेज से जंघा और उरु, पृथ्वी के तेज से नितम्ब, ब्रह्मा के तेज से दोनों चरण, सूर्य के तेज से पैरों की अंगुली और वसुगणों के तेज से हाथों की अंगुली बनीं। कुबेर से नासिका, प्रजापति से दाँत, पावक के तेज से तीनों नेत्र, वायु के तेज से दोनों कान बने।" इस प्रकार वह मंगलमयी देवी उत्पन्न हुई। सब देवताओं ने उसे अपने-अपने मुख्य अस्त्र-शस्त्र भी दिये जिनके द्वारा संग्राम करके उसने महिषासुर को मार दिया।

'वायु पुराण' में भी मधु कैटभ के वध का वर्णन आया है। यह वर्णन बड़े सरल ढङ्ग से किया गया है। उसमें कहा गया है [illegible]

"भगवान शंकर के चले जाने [illegible] होकर विष्णु भगवान फिर शयन करने जल में घुस गये। तब पद्म जन्मा ब्रह्माजी भी प्रसन्न होकर उस पद्मासन पर जा बैठे। उसके बहुत दिन बाद वहाँ मधु-कैटभ नामक दो अतुलनीय बलशाली भ्राताओं ने तरुण सूर्य की तरह चमकने वाले उस पद्म को हिलाना प्रारम्भ कर दिया। उन दोनों की आंखें अन्धकार में चमक रही थीं और वे दोनों ही वीर हँस-हँस निर्भयभाव से पद्म पत्रों को तोड़ रहे थे। उन दोनों ने ब्रह्मा से कहा तुम हमारे भक्ष्य बनो। यह कहकर वे दोनों अन्तर्द्धान हो गये। पद्मयोनि ब्रह्मा ने उनके कठोर भाव को और अपने पराक्रम को जानकर तात्कालिक रहस्य को जानना चाहा। वे उस कमल नाल के सहारे सीधे रसातल में उतर गये। वहाँ उन्होंने कृष्णाजिन और उत्तरीय धारी विष्णु को देखा। उन्होंने उनको जगाया और जगने पर कहा—'देव! हमें भूतों से भय हो रहा है, उठिये, हमें बचाइये हमारा कल्याण कीजिये।'

"शत्रु को दमन करने वाले स्वयं भगवान विष्णु हँसते हुये बोले—'कुछ चिन्ता नहीं, डरने की कोई बात नहीं।' ब्रह्मा जी के चले जाने पर उन अनन्त भगवान ने अपने मुख से विष्णु और जिष्णु नामक दो भ्राताओं को उत्पन्न करके कहा—तुम दोनों ब्रह्मा की रक्षा करो। इधर मधु-कैटभ ने विष्णु-जिष्णु के आवागमन की वार्ता जान कर उनकी ही तरह अपना रूप बनालिया। उन्होंने

जल को अपनी माया से स्तम्भित कर दिया और विष्णु-जिष्णु से संग्राम क
लगे। उनको युद्ध करते हुये सौ दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये पर रणमद से म
उनमें से कोई भी युद्ध से विरत नहीं हुआ। उनका आकार-प्रकार और संस्था-
नादि एक प्रकार का था और गति, स्थिति भी उनकी समान ही थी तथा दोनों
का स्वरूप भी एक प्रकार का ही था, इससे ब्रह्मा व्याकुल हो ध्यान करने
लगे। तब उन्होंने दिव्य-दृष्टि से उनके रहस्य को समझा और विष्णु-जिष्णु के
ऊपर के शरीर को कमल केसर के सूक्ष्म कवच द्वारा बोध दिया और मन्त्रों
का पाठ करने लगे। मन्त्र जपते हुए ब्रम्ह को एक इन्दुवदना, पद्म-सुन्दरी
कन्या उत्पन्न हुई। ब्रह्मा ने पूछा—तुम कौन हो ? कन्या ने कहा आप मुझे
विष्णु की आज्ञानुवर्तिनी मोहिनी माया समझें। इधर युद्ध करते-करते मधु-कैटभ
थक गये और विष्णु-ध्रिान ने उनको मार डाला।"

दक्ष-यज्ञ का विचित्र पल्लवाश्रम

वायु-पुराणमें दक्ष-यज्ञके विध्वंस का जो वर्णन किया है वह अन्य समस्त
पुराणों से भिन्न है। अभी तक सब जगह यही पढ़ने में आया था कि शिव-
पत्नी सती ने दक्ष-यज्ञ में शंकर का भाग न देखकर योगाग्नि में जल कर
आत्म-बलिदान कर दिया, तब शिवजी ने वीरभद्र को भेजकर यज्ञ का
विध्वंस करा दिया। इसके बहुत काल पश्चात् देवताओं की अपार चेष्टा करने
पर उन्होंने पार्वती से विवाह किया था। पर 'वायुपुराण' का कथन है कि
किसी समय सती दक्ष के घर परिवार वालों से मिलने गई थी पर दक्ष ने
उसका सम्मान नहीं किया जिससे उसने स्वतः आत्मघात कर लिया।
तब शिव ने दक्ष को श्राप दिया कि तुम अगले जन्म में एक वृक्ष-कन्या के गर्भ
से उत्पन्न होंगे और तब भी तुम्हारा नाम दक्ष ही रखा जायगा। ऐसा ही हुआ
है और उस जन्म में भी दक्ष ने एक यज्ञ किया और महादेव को उसमें नहीं
बुलाया। उस अवसर पर देवताओं को आकाश मार्ग से जाते देखकर पार्वतीजी
ने उसका कारण पूछा। जब उनको शिव के अपमान की बात मालूम हुई तो वे
बहुत रुष्ट हुईं और शिवजी को प्रेरित करके वीरभद्र द्वारा यज्ञ को नष्ट करवा
दिया। उसी समय उमा के क्रोध से भद्रकाली की उत्पत्ति हुई जिसने इस
कार्य में पूर्ण सहयोग दिया।

पर्वत
प्रिया

इस प्रकार 'वायुपुराण' में वर्णित दक्ष-यज्ञ के नष्ट किये जाने का वर्णन 'शिव पुराण' 'रामायण' आदि के वर्णन से बहुत भिन्नता रखता है।

सम्भवतः पुराण-प्रेमी इसका उत्तर 'कल्प-भेद' बतलायें, पर जब और सब कथायें इसी समय की हों और अन्य ग्रन्थों से मिलती हों तो किसी एक को ही पूर्वकल्प की कहना कोई सारयुक्त तर्क नहीं है।

ज्योतिर्मय लिङ्ग की कथा—

पुराणों में अनेक स्थलों पर सृष्टि आरम्भ होने से पूर्व ब्रह्मा और विष्णु के पारस्परिक विवाद के अवसर पर ज्योतिर्लिङ्ग के उद्‌भव की कथा दी गई है और एकाध पुराण में इस प्रसंग में ब्रह्माजी को बहुत नीचा दिखाया गया है और विष्णु को भी शिव की अपेक्षा बह[illegible] प्रकट किया गया है। पर 'वायु-पुराण' में इस कथा को भी [illegible] होकर वि[illegible] [illegible]विक रूप में दिया गया है और शिवजी द्वारा यही कहलाया गया है कि—"देवताओं में श्रेष्ठ! मैं तुम दोनों पर प्रसन्न हूँ। पूर्वकाल में तुम दोनों सनातन पुरुष मेरे शरीर से ही उत्पन्न हुये हो। यह लोक पितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने हाथ हैं और यह नित्य युद्ध में स्थित रहने वाले विष्णु मेरे बाँये हाथ हैं।" इस कथानक में और अन्य पुराणों में ब्रह्मा को झूँठा बनाने और उनका एक मस्तक काट दिए जाने के अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों में जमीन आसमान का भेद है।

अध्यात्म ज्ञान की प्रधानता—

ग्रन्थ के अन्त में पुराणकार ने व्यासजी के हृदय में निराकार और साकार ब्रह्म का प्रश्न उठने की बात कह कर इस विषय पर विचार किया है कि परब्रह्म का स्वरूप वेदों के कथनानुसार अक्षर, अव्यय, अतीन्द्रिय और चिन्मात्र है, अथवा जैसा भक्ति प्रधान कथाओं के प्रणेता बतलाते हैं वह नाना प्रकार के आभरण धारण करके, वेणु वादन करते हुए गोपियों सङ्ग रासलीला, हास-विलास, रतिक्रीड़ा आदि के प्रेमी, गौओं की रक्षार्थ इधर-उधर दौड़ते हुये राधा विलासी के रूप में है। भक्तगणों ने उन परम पुरुष श्रीकृष्ण को गोलोक धाम के वासी बताया है और कहा है कि वे अक्षर, अव्यय ब्रह्म से भी परे हैं।

सत्यवती नन्दन व्यास जी जब बहुत सोच विचार करने पर भी इस स्या का निराकरण नहीं कर सके तो उन्होंने एकान्त में बैठकर आहार, त एवं आसन पर अधिकार प्राप्त करके एकाग्र मनसे चारों वेदों का आवाहन या। दीर्घ काल तक इस प्रकार स्मरण और ध्यान करने के पश्चात् मूर्ति- न वेद उनके समक्ष उपस्थित हुये तो व्यास जी ने उनसे जिज्ञासा की कि-- पने शब्द ब्रह्ममय शरीरों से आप लोगों ने अधिकारियों में भेद बनाकर कर्म ौर ज्ञान का उपदेश दिया है। उसके अनुसार कामनाओं से घिरे हुये चित्त ाले मनुष्यों के जो कुछ सत्कर्म होते हैं, उसका फल स्वर्ग कहा गया है। ौर ईश्वर में ही अपनी चित्त वृत्ति लगाने वाले पुरुषों के कर्मों का फल चित्त ुद्धि मानी गई है। चित्ताढ... से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है। वही ... के साथ एकता है, वह सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप हैं। यह सब जान लेने पर भी मेरे हृदय में एक जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है कि उस परब्रह्म से भी बढ़ कर कोई अन्य सत्ता है अथवा नहीं ?"

वेदों के कथन से व्यास जी को जो कुछ ज्ञान पड़ा उसका निष्कर्ष यही निकला कि 'वह परब्रह्म अक्षर, परम और कारणों का कारण स्वरूप है, अर्थात् उससे परे कोई नहीं है। पुष्प के रस एवं गन्ध की भाँति वह आत्मस्वरूप का भी आत्मस्वरूप हैं, उसी को सबसे परम समझो। वह अक्षर ब्रह्म शब्दों द्वारा गम्य नहीं है।"

अधिकाँश पुराणों में जिस प्रकार अवतारों के वर्णन को प्रधानता देकर भगवान के साकार स्वरूप की उपासना पर अधिक जोर दिया है, वह बात 'वायु पुराण' में देखने में नहीं आती। इसमें ज्ञान और योग पर आधारित अध्यात्म-मार्ग की श्रेष्ठता स्वीकार की गई है और अन्त में व्यास के सन्देह की कथा के रूप में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर दिया है।

'वायु-पुराण' की इस प्रकार की अनेक विशेषताओं पर ध्यान देने पर इसे 'महा-पुराणों' की सूची में स्थान देना सब प्रकार से समीचीन मालूम देता है। वास्तव में पौराणिक-साहित्य एक विशेष क्षेत्र और वर्ग से सम्बन्धित है

और मध्यकाल में उसका बहुत अधिक विस्तार किया गया है। उसमें केवल १८ महापुराणों का ही समावेश नहीं है, वरन् १८ उप-पुराण, १८ अति-पुराण और १८ लघु-पुराणों का समावेश भी उनमें कर दिया गया है। इन सब ग्रन्थों की विषय-सूची और वर्णन शैली पर जब दृष्टिपात करते हैं तो 'वायु पुराण' का दर्जा बहुत ऊँचा जान पड़ता है। उसमें सृष्टि रचना, जीव-जगत का विस्तार, मानवीय-सभ्यता का विकास, समाज व्यवस्था, शासन व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था का क्रमशः उद्भव आदि विषयों का अन्य कितनेही पुराणों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक तथा बुद्धिसंगत ढंग से वर्णन किया है। हमारा विश्वास है कि पाठकगण इस पुराण का अध्ययन करके अनेक प्राचीन युग सम्बन्धी तथ्यों को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। धर्म के [illegible] और उपासना का भी इसमें जिस रूप में वर्णन किया गया है [illegible]ग्रस्त प्रश्न उपस्थित करने के बजाय धर्म के उन मूल तत्वों पर प्रकाश पड़ता है जो मानव जीवन की सार्थकता के लिये मार्गदर्शक सिद्ध होंगे।

—श्रीराम शर्मा, आचार्य

—✱×✱—

भद्रकारा और शतपथेश्वरों के द्वारा बोधा वत्सा, किसष्णा, कुल्या, कुन्तला, काशिकोसला हैं ॥ ४१ ॥ इसके अनन्तर पार्श्व में ही तिलङ्ग, मगध जो कि वृकों के सहित हैं, मध्यदेश में ये प्रायः जनपद कहे गये हैं ॥ ४२ ॥

सह्यस्य चोत्तरार्द्धे तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामिह कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥४३
तत्र गोवर्द्धनो नाम सुरराजेन निर्मितः ।
रामप्रियार्थं स्वर्गोऽयं वृक्षा ओषधयस्तथा ॥४४
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः ।
अन्तःपुरवनोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरम ॥४५
वाह्लीका वाढधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
अपरीताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिकाः ॥४६
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः ।
शका ह्रदाः कुलिन्दाश्च परिता हारपूरिकाः ॥४७
रमटा रद्धकटकाः केकया दशमानिकाः ।
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥४८
काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बराः प्रियलौकिकाः ।
पीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदराः ॥४९
आत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्चः कसेरुकाः ।
लम्पाका स्तनपाश्चैव पीडिका जुहुडैः सह ॥५०
अपगाश्चालिमद्राश्च किरातानाञ्च जातयः ।
तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तङ्गणास्तथा ॥५१
चूलिकाश्चाहुकाश्चैव पूर्णदर्वास्तथैव च ।
एते देशा ह्युदीच्याश्च प्राच्यान् देशान्निबोधत ॥५२

सह्य पर्वत के उत्तरार्द्ध में जहाँ कि गोदावरी नदी है पृथ्वी में और समस्त इस भूमण्डल में यह प्रदेश बहुत ही सुन्दर है ॥ ४३ ॥ वहाँ पर गोवर्द्धन पर्वत है जो कि सुरराज के द्वारा विनिर्मित किया गया है। यह राम की प्रिया के लिये स्वर्ग है तथा यहाँ पर वृक्षादि एवं ओषधियाँ सब भरद्वाज मुनि

ने ही उसके प्रिय करने के लिये अवतरित किये हैं। अन्तःपुर वन का उद्देश उसने परम सुन्दर उत्पन्न किया है ।। ४४-४५ ।। वाह्लीक, वाढधान, आभीर, कालतोयक, अपरीत, पह्लव और चर्म खण्डिक शूद्र जाति वाले लोग होते हैं । गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, भद्रक, शक, ह्लद, कुलिन्द, परित, हारपूरिक, रमट, रद्ध कटिक, केकय, दशमानिक ये क्षत्रियोपनिवेश तथा वैश्य एवं शूद्र कुल हैं ।। ४६-४७-४८ ।। काम्बोज, दरद, बर्बर, प्रियलौकिक, पीन, तुषार, पह्लव और बाह्यतोदर हैं। आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थल, कसेरुक, लम्पाक, स्तनपा तथा जुहुडों के सहित पीड़िक, अपग और अलिमद्र ये सब किरातों की जातियाँ होती हैं। तोमर, हंसमार्ग, काश्मीर, तङ्गण, चूलिक बाहुक तथा पूर्ण दर्वा ये सब देश उत्तर के हैं अर्थात् उत्तर दिशा में होने वाले प्रदेश होते हैं। अब प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा में होने वालों को श्रवण करो ।। ४९-५०-५१-५२ ।।

अन्ध्रवाकाः सुजरका अन्तर्गिरिबहिर्गिराः ।
तथा प्रवङ्गवङ्गेया मालदा मालवर्तिनः ।।५३
ब्रह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा गेयमर्थकाः ।
प्राग्ज्योतिषाश्च मुण्डाश्च विदेहास्तामलिप्तकाः ।
माला मगधगोविन्दाः प्राच्यां जनपदाः स्मृताः ।।५४
अथापरे जनपदा दक्षिणापथ वासिनः ।
पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चौल्याः कुल्यास्तथैव च ।।५५
सेतुका मूषिकाश्चैव कुमना वनवासिकाः ।
महाराष्ट्रा माहिषकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः ।।५६
अभीराः सह चैषीकाः आटव्याश्च वराश्च ये ।
पुलिन्द्रा विन्ध्यमूलीका वैदर्भा दण्डकैः सह ।।५७
पौनिका मौनिकाश्चैव अस्मका भोगवर्द्धनाः ।
नैर्णिकाः कुन्तला आन्ध्रा उद्भिदा नलकालिकाः ।।५८
दाक्षिणात्याश्च वै देशा अपरांस्तान्निबोधत ।
शूर्पाकाराः कोलवनाः दुर्गाः कालीतकैः सह ।।५९
पुलेयाश्च सुरालाश्च रूपसास्तापसैः सह ।
तथा तुरसिताश्चैव सर्वे चैव परक्षराः ।।६०

अन्ध्रवाक सुजरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिर, प्रवङ्ग वङ्ग, मालदा, मालवर्त्ती, ब्रह्मोत्तर, प्रविजय, भार्गव, गेयमर्थक, प्राग्ज्योतिष, मुण्ड, विदेह, तामलिप्तक, माला, मगध और गोविन्द ये सब जन पद प्राची दिशा में कहे गये हैं ।। ५३ ५४ ।। इनके अनन्तर दक्षिणापथ वासी जनपद हैं जिनके नाम पाण्डय, केरल, चौल्य कुल्य, सेतुक मूषिक, कुमन, वनवासिक है । महाराष्ट्र, माहिषक, कलिङ्ग, अभीर, चैषीक, आटव, वरा, पुलिन्द्र, विन्ध्य भूलीक और दण्डकों के सहित वैदर्भ, पौनिक, मौनिक, अस्मक, भोगवर्द्धन, नैर्णिक, कुन्तल, आन्ध्र, उद्भिद और नलकालिक ये सब दक्षिणात्य प्रदेश होते हैं । इनके अतिरिक्त जो दूसरे हैं अब उनका श्रवण करो । शूर्पाकार, कोलवन, कालीतक, पुलेय, सूराल, रूपस, तापस, तुरसित ये सब परक्षर हैं ।। ५५-५६।५७-५८-५९-६० ।।

नासिक्याद्याश्च ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः ।
भानुकच्छाः समा हेयाः सहसा शाश्वतैरपि ।।६१
कच्छीयाश्च सुराष्ट्राश्च अनर्त्ताश्चार्बुदैः सह ।
इत्येते सम्परीताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः ।।६२
मालवाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह ।।६३
तोसलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिकास्तथा ।
तुमुरास्तुम्बुराश्चैव षट्सुरा निषधैः सह ।।६४
अनुपास्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवन्तयः ।
एते जनपदाः सर्वे विन्ध्य पृष्ठनिवासिनः ।।६५
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ।
निगर्हरा हंसमार्गाः क्षुपणास्तङ्गणाः खसाः ।।६६
कुशप्रावरणाश्चैव हूणा दर्वाः सहूदकाः ।
त्रिगर्त्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ।।६७
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः ।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुष्टयम् ।
तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टान्निबोधत ।।६८

नासिक से आद्य लेकर जो नर्मदा के अन्तर में हैं वे शाश्वतों के द्वारा सहसा भानुकच्छ के समान हेय हैं । कच्छीय, सुराष्ट्र, आवर्त्त, अर्बुद ये सब सम्परीत होते हैं । अब विन्ध्य वासियों को श्रवण करो । मालव, करूष, मेकल, उत्कल, उत्तमर्ण दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, तोसल, कोसल, त्रैपुर तथा वैदिक, तुमुर, तुम्बुर, षटसुर, निषध, अनुप, तुण्डिकेर, वीतिहोत्र, अवन्ती ये समस्त जनपद विन्ध्य के पृष्ठ पर निवास करने वाले हैं ॥ ६१-६२-६३-६४-६५ ॥ इसके आगे जो पर्वताश्रयी देश हैं उन्हें बतलाया जाता है निगर्हर, हंसमार्ग, क्षुपण, तङ्गण, खस, कुशप्रावरण, हूण, दर्व, सहूदक, त्रिगर्त, मालव, किरात, तामस ये पर्वतों पर आश्रय वाले प्रदेश हैं । कवि लोग भारतवर्ष में चार युग कहते हैं उनके नाम कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार होते हैं । उनका निसर्ग बतलायेंगे । ऊपर से जानलो ॥ ६६-६७-६८ ॥

॥ प्रकर्ण ३३-ज्योतिष प्रचार (१) ॥

अधःप्रमाण मूर्द्धञ्च वर्ण्यमानं निबोधत ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पंचमम् ।
अनन्तधातवो ह्येते व्यापकास्तु प्रकीर्तिताः ॥१
जननी सर्वभूतानां सर्वभूतधरा धरा ।
नानाजनपदाकीर्णा नानाधिष्ठानपत्तना ॥२
नानानदनदीशैला नैकजातिसमाकुला ।
अनन्ता गीयते देवी पृथिवी बहुविस्तरा ॥३
नदीनदसमुद्रस्थास्तथा क्षुद्राश्रयाः स्थिताः ।
पर्वताकाशसंस्थाश्च अन्तर्भूमिगताश्चयाः ॥४
आपोऽनन्ताश्च विज्ञेयास्तथाग्निः सर्वलौकिकः ।
अनन्तः पठ्यते चैव व्यापकः सर्वसम्भवः ॥५
तथाकाशमनालम्बं रम्यं नानाश्रयं स्मृतम् ।
अनन्तं प्रथितं सर्वं वायुश्चाकाशसम्भवः ॥६
आपः पृथिव्यामुदके पृथिवी चोपरि स्थिता ।
आकाशञ्चापरमधः पुनर्भूमिः पुनर्ज्जलम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब आप लोग अधःप्रमाण और ऊर्द्ध जो कि मेरे द्वारा वर्ण्यमान होगा उसका श्रवण करें। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और पाँचवीं ज्योति ये अनन्त धातुऐं हैं जो व्यापक कही गई हैं ।। १ ।। समस्त प्राणियों के जनन करने वाली जननी तथा सम्पूर्ण भूतों को धारण करने वाली धरा होती है जो कि अनेक प्रकार के जनपदों से आकीर्ण है तथा विविध प्रकार के अधिष्ठान एवं नगरों वाली है ।। २ ।। इस धरा में नाना भाँति के नद, नदी तथा पर्वत हैं और अनेक प्रकार की जातियों से यह समाकुल हो रही है। यह पृथिवी देवी अनन्त एवं बहुत विस्तार वाली गाई जाती है ।। ३ ।। नदी, नद और समुद्र में रहने वाले तथा छोटे-छोटे आश्रमों में स्थित, पर्वत एवं आकाश में रहने वाले तथा इस भूमण्डल के अन्दर में रहने वाले जल भी अनन्त हैं उन्हें भी बिना अन्त वाले जानना चाहिए। इसी भाँति समस्त लोक में रहने वाला यह अग्नि भी व्यापक एवं सर्व सम्भव तथा अनन्त पढ़ा जाता है ।। ४-५ ।। इसी प्रकार से यह आकाश बिना अवलम्ब वाला, सुन्दर एवं अनेकों का आश्रय कहा गया है। यह सब अनन्त प्रथित है। और वायु आकाश से उत्पन्न होने वाला है ।। ६ ।। जल पृथिवी में है और जल के ऊपर यह पृथ्वी स्थित है। आकाश ऊपर है फिर नीचे जल है और फिर भूमि है ।। ७ ।।

एवमन्तमनन्तस्य भौतिजस्य न विद्यते।
पुरा सुरैरभिहितं निश्चितन्तु निबोधत ।।८
भूमिजलमथाकाशमिति ज्ञेया परम्परा।
स्थितिरेषा तु विज्ञेया सप्तमेऽस्मिन् रसातले ।।९
दशयोजनसाहस्रमेकभौमं रसातलम्।
साधुभिः परिविख्यातमेकैकं बहुविस्तरम् ।।१०
प्रथममतलञ्चैव सुतलन्तु ततः परम्।
ततः परतरं विद्याद्वितलं बहुविस्तरम् ।।११
ततो गभस्तलं नाम परतश्च महातलम्।
श्रीतलञ्च ततः प्राहुः पातालं सप्तमं स्मृतम् ।।१२
कृष्णभौमञ्च प्रथमं भूमिभागश्च कीर्त्तितम्।

पाण्डुभौमं द्वितीयन्तु तृतीयं रक्तमृत्तिकम् ।।१३
पीतभौमश्चतुर्थन्तु पंचमं शर्करातलम् ।
षष्ठं शिलामयञ्चैव सौवर्णं सप्तमन्तलम् ।।१४

इस प्रकार से इस भौतिक की अनन्तता है और इसका अन्त कभी नहीं होता है। पहिले देवों ने जो कहा है अब आप जो भी निश्चित है उसका श्रवण करो ।। ८ ।। भूमि, जल तथा आकाश यह इनकी परम्परा होती है जो कि जानने के योग्य है। इस सप्तम रसातल में यह स्थिति जानने के योग्य होती है ।। ९ ।। दश सहस्र योजन वाला यह एक भौम रसातल है। साधु पुरुषों के द्वारा यह एक-एक बहुत विस्तार से युक्त परिविख्यात है ।। १० ।। इनमें जो प्रथम है वह अतल नाम वाला है। इसके आगे सुतल होता है। इसके भी आगे बहुत विस्तार वाला वितल होता है ।। ११ ।। इस के आगे गभस्तल नाम वाला है और फिर आगे महातल है । इस के आगे श्रीतल कहा गया है और पाताल सातवाँ कहा गया है ।। १२ ।। प्रथम भाग कृष्ण भौम है जो कि भूमिका भाग कीर्त्तित किया गया है। पाण्डु भूमि वाला पाण्डु भौम दूसरा भाग है। तीसरा रक्त भूमि वाला अर्थात् जिसमें लाल मिट्टी है ऐसा भाग है। पीतभौम चौथा भाग होता है। पांचवाँ भाग शर्करा तल वाला होता है और छठवाँ भाग शिलाओं से पूर्ण है तथा सातवाँ भाग सौवर्ण होता है अर्थात् हेममय है ।। १३-१४ ।।

प्रथमे तु तले ख्यातमसुरेन्द्रस्य मन्दिरम् ।
नमुचेरिन्द्रशत्रोर्हि महानादस्य चालयम् ।।१५
पुरञ्च शंकुकर्णस्य कबन्धस्य च मन्दिरम् ।
निष्कुलादस्य च पुरं प्रहृष्टजनसकुलम् ।।१६
राक्षसस्य च भीमस्य शूलदन्तस्य चालयम् ।
लोहिताक्षकलिङ्गानां नगरं श्वापदस्य तु ।।१७
धनञ्जयस्य च पुरं माहेन्द्रस्य महात्मनः ।
कालियस्य च नागस्य नगरं कलसस्य च ।।१८
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।

तले ज्ञेयानि प्रथमे कृष्णभौमे न संशयः ॥१९
द्वितीयेऽपि तले विप्रा दैत्येन्द्रस्य सुरक्षसः ।
महाजम्भस्य च तथा नगरं प्रथमस्य तु ॥२०
हयग्रीवस्य कृष्णस्य निकुम्भस्य च मन्दिरम् ।
शंखाख्येयस्य च पुरं नगरं गोमुखस्य च ॥२१

इनमें जो प्रथम तल है उसमें असुरों के स्वामी का मन्दिर ख्यात है । इन्द्र के शत्रु महानाद वाले नमुचि का यह आलय है ॥ १५ ॥ शंकुकर्ण का नगर है और कबन्ध का मन्दिर है । और निष्कुल से इसका पुर परम प्रहृष्ट मनुष्यों से संकुल अर्थात् घिरा हुआ है ॥ १६ ॥ अत्यन्त भीम अर्थात् भयानक शूलदन्त राक्षस का आलय है । लोहिताक्षक लिङ्गों का और श्वापद का नगर है ॥ १७ ॥ माहेन्द्र महात्मा धनञ्जय का नगर है तथा कालिय नाग का और कलस का वहाँ पर नगर है ॥ १८ ॥ इस प्रकार से वहाँ पर नाग दानव और राक्षसों के सहस्रों नगर हैं । ये सब कृष्णभौम प्रथम तल में ही जानने के योग्य होते हैं और इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ १९ ॥ हे विप्रो ! द्वितीय तल में भी दैत्यों के स्वामी राक्षस प्रथम महाजम्भ का नगर है ॥ २० ॥ और फिर वहाँ हयग्रीव, कृष्ण, और निकुम्भ का मन्दिर है । शंख नाम वाले और गोमुख का पुर एवं नगर है ॥ २१ ॥

राक्षसस्य च नीलस्य मेघस्य क्रथनस्य च ।
पुरञ्च कुरुपादस्य महोष्णीषस्य चालयम् ॥२२
कम्बलस्य च नागस्य पुरमश्वतरस्य च ।
कद्रुपुत्रस्य च पुरं तक्षकस्य महात्मनः ॥२३
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
द्वितीयेऽस्मिन् तले विप्राः पाण्डुभौमे न संशयः ॥२४
तृतीये तु तले ख्यातं प्रह्लादस्य महात्मनः ।
अनुह्लादस्य च पुरं दैत्येन्द्रस्य महात्मनः ॥२५
तारकाख्यस्य च पुरं पुरं त्रिशिरसस्तथा ।
शिशुमारस्य च पुरं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥२६

च्यवनस्य च विज्ञेयं राक्षसस्य च मन्दिरम् ।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरं कुम्भिलस्य खरस्य च ॥२७
विराधस्य च क्रूरस्य पुरमुल्कामुखस्य च ।
हेमकस्य च नागस्य तथा पाण्डुरकस्य च ॥२८

इसके अतिरिक्त वहाँ पर नील, मेघ और क्रथन राक्षस का पुर है तथा कुरुपाद और महोष्णीष का आलय है ॥ २२ ॥ कम्बल नाग का और अश्वतर का पुर है । कद्रु के पुत्र महान् आत्मा वाले तक्षक का नगर है ॥ २३ ॥ इस प्रकार से वहाँ पर नाग, दानव और राक्षसों के सहस्रों ही पुर हैं । हे विप्रो ! इस द्वितीय तल में ऐसे अनेक नगर हैं जो कि पाण्डुभौम इस नाम वाला है । इसमें भी तनिक संशय नहीं है ॥ २४ ॥ तीसरे तल में महात्मा प्रह्लाद का पुर प्रसिद्ध है तथा महात्मा दैत्येन्द्र अनुह्लाद का नगर है ॥ २५ ॥ वहाँ पर इनके अतिरिक्त तारक नाम वाले का पुर, त्रिशिरा का पुर, और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से समाकुल शिशुमार का पुर है ॥ २६ ॥ वहाँ पर च्यवन राक्षस का मन्दिर है सो जान लेना चाहिए तथा राक्षसेन्द्र कुम्भिल और खर का पुर भी है ॥२७॥ तथा अत्यन्त क्रूर विराध का पुर और उल्कामुख का पुर है । एवं हेमक, नाग तथा पाण्डुरक के भी वहाँ पर पुर हैं ॥ २८ ॥

मणिमन्त्रस्य च पुरं कपिलस्य च मन्दिरम् ।
नन्दस्य चोरगपतेर्विशालस्य च मन्दिरम् ॥२९
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
तृतीयेऽस्मिस्तले विप्राः पीतभौमे न संशयः ॥३०
चतुर्थे दैत्यसिंहस्य कालनेमेर्महात्मनः ।
गजकर्णस्य च पुरं नगरं कुञ्जरस्य च ॥३१
राक्षसेन्द्रस्य च पुरं सुमालेर्बहुविस्तरम् ।
मुञ्जस्य लोकनाथस्य वृकवक्त्रस्य चालयम् ॥३२
बहुयोजनसाहस्रं बहुपक्षिसमाकुलम् ।
नगरं वैनतेयस्य चतुर्थेऽस्मिन् रसातले ॥३३
पञ्चमे शर्कराभौमे बहुयोजनविस्तृते ।

विरोचनस्य नगरं दैत्यसिंहस्य धीमतः ॥३४
वैदूर्य्यस्याग्निजिह्वस्य हिरण्याक्षस्य चालयम् ।
पुरञ्च विद्युज्जिह्वस्य राक्षसस्य च धीमतः ॥३५

वहाँ तीसरे तल में मणिमन्त्र का पुर तथा कपिल का मन्दिर है। उरगों के स्वामी नन्द का एवं विशाल का मन्दिर है ॥ २९ ॥ हे विप्रो इस तृतीय तल में, जो कि पीतभौम है, नाग, दानव और राक्षसों के सहस्रों ही पुर एवं मन्दिर हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ३० ॥ अब आगे चौथे तल में दैत्यों में सिंह महात्मा कालनेमि के, गजकर्ण के तथा कुञ्जर के पुर एवं मन्दिर हैं ॥ ३१ ॥ तथा राक्षसेन्द्र सुमालि का बहुत विस्तार वाला पुर है। मुञ्ज लोकनाथ वृत्रवक्त्र के आलय हैं ॥ ३२ ॥ इस चतुर्थ रसातल में बहुत से सहस्र योजन के विस्तार वाला और बहुत से पक्षियों समाकुल घिरा हुआ वैनतेय का सुरम्य नगर है ॥ ३३ ॥ पाँचवाँ जो शर्करा भौम तल है उसमें जो कि बहुत योजनों के विस्तार वाला है दैत्यों में सिंह के समान एवं बुद्धिमान् विरोचन का नगर है ॥ ३४ ॥ वैदूर्य, अग्नि जिह्व और हिरण्याक्ष का आलय (घर) है तथा धीमान् राक्षस विद्युज्जिह्व का पुर भी है ॥ ३५ ॥

महामेघस्य च पुरं राक्षसेन्द्रस्य शालिनः ।
कर्म्मारस्य च नागस्य स्वस्तिकस्य जयस्य च ॥३६
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
पञ्चमेऽपि तथा ज्ञेयं शर्करानिलये सदा ॥३७
षष्ठे तले दैत्यपतेः केसरेर्नगरोत्तमम् ।
सुपर्णिणः सुलोम्नश्च नगरं महिषस्य च ।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरमुत्क्रोशस्य महात्मनः ॥३८
तत्रास्ते सुरसापुत्रः शतशीर्षो मुदा युतः ।
कश्यपस्य सुतः श्रीमान् वासुकिर्नाम नागराट् ॥३९
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
षष्ठे तलेऽस्मिन् विख्याते शिलाभौमे रसातले ॥४०
सप्तमे तु तले ज्ञेयं पाताले सर्वपश्चिमे ।

कुन्द और इन्दु के समान वर्ण वाले उसकी अक्षमाला विराजमान है। वह ऐसी प्रतीत होती है जैसे हिमाच्छादित श्वेत पर्वत के शिखर पर तरुण सूर्यों की माला हो ।।५०।। जटाओं से कराल द्युति वाले उस अपने शयनासन पर ऐसे दिखाई देते हैं जैसे भूमि पर सहस्र शिखरों वाला कोई पर्वत फैला हुआ हो ।।५१।। वह महान् नागों का स्वामी महान् भाग वाले और महान् भोग वाले तथा महान् बल वाले महान् नागों के द्वारा महान् तेज से युक्त स्वयं उपास्यमान होते हैं ।।५२।। वह समस्त नागों के राजा है और महान् द्युति वाले शेष नाम वाले हैं। वह अहि की तनु अर्थात् शरीर वैष्णवी अर्थात् विष्णु से सम्बन्ध रखने वाली है जोकि मर्यादा में व्यवस्थित है ।।५३।। ये सातों ही व्यवहार के योग्य रसातल कहे गये है। ये सब सर्वदा देव, असुर, महानाग और राक्षसों के निवास भूमि बने हुए हैं ।।५४।। इससे आगे स्थान देखने तथा गमन करने के अयोग्य है जिसमें कि बड़े सिद्ध और साधुभी नहीं जासकते हैं। यह आगे क्या है इसे देवगण भी नहीं जानते हैं और व्यवहार से सर्वथा रहित ही है ।।५५।। हे द्विजोत्तमो ! ऋषियों के द्वारा पृथिवी, अग्नि. जल, वायु और आकाश का महत्व इसी प्रकार से वर्णन किया जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।५६।।

अत ऊर्द्धं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् ।
सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु ।
प्रकाशतः स्वभाभिस्तौ मण्डलाभ्यां समास्थितौ ।।५७
सप्तानाञ्च समुद्राणां द्वीपानान्तु स विस्तरः ।
विस्तरार्द्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः ।।५८
पर्यासपारिमाण्यन्तु चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः ।
पर्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ।।५९
अवति त्रीनिमान् लोकान् यस्मात् सूर्यः परिभ्रमन् ।
अवधातुः प्रकाशाख्यो ह्यवनात्स रविः स्मृतः ।।६०
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः ।
महितत्वा-महीशब्दो ह्यस्मिन् वर्षे निपात्यते ।।६१

अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भन्तु सुविस्तरम् ।
मण्डलं भास्करस्याथ योजनानां निबोधत ॥६२
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु ।
विस्ताराात्रिगुणश्चास्य परिणाहोऽथ मण्डलम् ।
विष्कम्भो मण्डलस्यैव भास्करादृद्विगुणः शशी ॥६३

इससे आगे सूर्य और चन्द्रमा की गति के विषय में बतलाऊँगा । ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा जब तक भ्रमण किया करते हैं वे दोनों मण्डलों से समाश्रित होते हुए अपनी प्रभा से प्रकाशित होते हैं ॥५७॥ सात समुद्रों का और द्वीपों का यह विस्तार है पृथिवी का तो इस विस्तार का अर्धभाग है जोकि वाह्य से अन्य में होता है ॥५८॥ चन्द्र और आदित्य पर्याप्त के पारिमाण्य को प्रकाशित किया करते हैं और पर्याप्त के पारिमाण्य से तुल्य ही दिव कहा गया है ॥५९॥ यह सूर्य परिभ्रमण करता हुआ तीनों लोकों की जिस कारण रक्षा किया करता है वह अव धातु प्रकाश नाम वाला है और अवन करने से ही वह रवि कहा गया है ॥६०॥ इससे आगे अब चन्द्र और सूर्य का प्रमाण कहा जाता है । महितत्व के कारण से मही यह शब्द इस वर्ष में निपातित किया जाता है ॥६१॥ इस भारतवर्ष का सुविस्तार विष्कम्भ है अनन्तर भास्कर के मण्डल के योजन समझलो ॥ ॥६२॥ भास्कर का विस्तार नौ योजन सहस्र अर्थात् नौ योजन वाला है । इसके विस्तार से तिगुना इसके मण्डल का ही विष्कम्भ है । भास्कर से दुगुना चन्द्रमा है ॥६३॥

अतः पृथिव्यां वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः सह ।
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलञ्च यत् ॥६४
इत्येतदिह सङ्ख्यातं पुराणं परिमाणतः ।
तद्वक्ष्यामि प्रसङ्ख्याय साम्प्रतैरभिमानिभिः ॥६५
अभिमानिव्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह ।
देवा ये वै ह्यतीतास्ते रूपैर्नामभिरेव च ॥६६
तस्मात्तु साम्प्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि वसुधातलम् ।
दिवस्तु सन्निवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्सनशः ॥६७

शतार्द्ध कोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नतः स्मृता ।
तस्या वार्धप्रमाणेन मेरोर्वै चातुरन्तरम् ।।६८।।
पृथिव्या वार्ध विस्तारो योजनाग्रात्प्रकीर्त्तितः ।
मेरुमध्यात् प्रतिदिशं कोटिरेकादश स्मृताः ।।६९
तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः ।
पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्या वार्धविस्तरः ।।७०

इसलिये पृथिवी का प्रमाण योजनों के साथ बतलाता हूँ । सातद्वीपी और सप्त समुद्रों वाली का विस्तार और जो मण्डल है यह यहाँ पर परिमाण से पुराण ने संख्या की है । वह आजकल के होने वाले अभिमानियों के द्वारा प्रसंख्या के लिये बतलाता हूँ ।।६४।।६५।। जो अभिमान करने वाले व्यतीत हो गये वे यहाँ आज के समय में होने वालों के तुल्य ही थे । जो देवता थे वे भी नामों और अपने रूपों से सब व्यतीत हो गये हैं ।।६६।। इससे साम्प्रत अर्थात् इस समय में होने वाले देवों से वसुधा तल को बतलाता हूँ । साम्प्रतों के द्वारा ही पूर्णरूप से दिव का सन्निवेश होता है ।।६७।। यह पृथ्वी पूर्णतया पचास करोड़ विस्तार वाली कही गई । उसके अर्ध प्रमाण से मेरु का चातुरन्तर होता है ।।६८।। पृथिवी का आधा विस्तार योजनाग्र से प्रकीर्तिति होता है । मेरु के मध्य से प्रतिदिशा में ग्यारह करोड़ कहे गये हैं ।।६९।। सौ हजार नवासी और पचास सहस्र पृथिवी का अर्ध विस्तार है ।।७०।।

पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोटयस्तु विस्तारः संख्यातः स चतुर्दिशम् ।।७१
तथा शतसहस्राणमेकोनाशीतिरुच्यते ।
सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्यास्त्वेष विस्तरः ।।७२
विस्तारात् त्रिगुणश्चैव पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ।
गणितं योजनाग्रन्तु कोटयस्त्वेकादश स्मृताः ।।७३
तथा शतसहस्रन्तु सप्तत्रिंशाधिकानि तु ।
इत्येतद्वै प्रसङ्ख्यातं पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ।।७४
तारकासन्निवेशस्य दिवि यावद्धि मण्डलम् ।

पर्यासः सन्निवेशस्न भूमस्तावत्तु मण्डलम् ।।७५
पर्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ।
सप्तानामपि लोकानामेतन्मानं प्रकीर्तितम् ।।७६
पर्यासपारिमाण्येन मण्डलानुगतेन च ।
उपर्युपरि लोकानां छत्रवत्परिमण्डललम् ।।७७

पृथिवी का विस्तार पूर्णतः योजनों के द्वारा समझना चाहिए। चारों दिशाओं में अर्थात् सभी ओर तीन करोड़ विस्तार संख्यात किया गया है ।।७१।। सात द्वीप और सात समुद्र वाली इस पृथिवी का विस्तार सौ हजार उन्यासी कहा जाता है। ७२।। इस विस्तार से तिगुना पृथिवी के अन्त का मण्डल होता है। योजनाग्र से गिना गया है और ग्यारह करोड़ कहे गये हैं ।।७३। उसी प्रकार से सैंतीस अधिक सौ सहस्र यहपृथिव्यन्त का मण्डल प्रसंख्यात किया गया है ।।७४।। दिव में तारकाओं के सन्निवेश का जितना मण्डल है सन्निवेश का पर्यास और भूमि का मण्डल उतना ही है।७५।। इसलिये पर्यास के पारिमाण्य से भूमि का दिव के ही तुल्य होता है ऐसा कहा गया है। सातों लोकों का यह मान कहा गया है ।।७६।। पर्यास के परिमाण्य से और मण्डल के अनुगत से लोकों के ऊपर ऊपर छत्र की तरह परिमण्डल होता है ।।७७।।

संस्थितिर्विहिता सर्वा येषु तिष्ठन्ति जन्तवः ।
एतदण्डकटाहष्य प्रमाणं परिकीर्त्तितम् ।।७८
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ।
भूर्लोकश्च भुवश्चैव तृतीयः स्वरिति स्मृतः ।
महर्लोको जनश्चैव तपः सत्यश्च सप्तमः ।।७९
एते सप्त कृता लोकाश्छत्राकारा व्यवस्थिताः ।
स्वकैरावरणैः सूक्ष्मैर्धार्यमाणाः पृथक् पृथक् ।।८०
दशभागाधिकाभिश्च ताभिः प्रकृतिभिर्बहिः ।
धार्यमाणा विशेषैश्च समुत्पन्नैः परस्परम् ।।८१
अस्याण्डस्य समन्ताच्च सन्निविष्टो घनोदधिः ।
पृथिवीमण्डलं कृत्स्नं घनतोयेन धार्यते ।।८२

घनोदधिपरेणाथ धार्य्यते घनतेजसा ।
बाह्यतो घनतेजस्तु तिर्य्यगूर्द्ध्वन्तु मण्डलम् ।।८३।।
समन्ताद्घनवातेन धार्य्यतेमाणं प्रतिष्ठितम् ।
घनवातात्त थाकाशमाकाशश्च महात्मना ।।८४

जिनमें जन्तुगण निवास करते हैं उनकी संस्थिति विहित हुई और इस अण्ड कटाह का प्रमाणभी कह दिया गया है ।।७८।। इस अण्ड के भीतर ये लोक हैं, सात द्वीप है और यह पृथ्वी है । तीनों लोकों में भूर्लोक, भुवः लोक और तीसरा स्वर्लोक है ऐसा कहा गया है । महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सातवां सत्य लोक है ।।७६।। ये सात लोक किये गये और छत्र के आकार वाले व्यवस्थित होते हैं । ये सातों अपने २० आवरणों से जोकि अति सूक्ष्म हैं पृथक्-पृथक् धार्यमाण हैं ।।८०।। बाहि दशभाग अधिक उन प्रकृतियों से और विशेष समुत्पन्नों से परस्पर में ये धार्यमाण होते हैं । ८१।। इस अण्ड के चारों ओर घना समुद्र सन्निविष्ट होता है । इस समस्त भूमण्डल को घन जल से धारण किया जाता है ।८२। इस घनोदधि के परे घन तेज से धारण किया जाता है । बाहिर से घन तेज का तिर्यक् और ऊद्र्ध्व मण्डल होता है ।।८३।। चारों ओर घन वात के द्वारा यह धार्यमाण होता हुआ प्रतिष्ठित होता है घन बात से आकाश और महान् आत्मा वाले से आकाश प्रतिष्ठित होता है ।।८४।।

भूतादिना वृत्तं सर्वं भूतादिर्महता वृतः ।
वृतो महानन्तेन प्रधानेनाव्ययात्मना ।।८५
पुराणि लोकपालानां प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ।
ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाणं परिवक्ष्यते ।।८६
मेरोः प्राच्यां दिशि तथा मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
वस्वोकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ।।८७
दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानस्यवै मूर्द्धनि ।
वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे ।।८८
प्रतीच्यान्तु पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्याथ धीमतः ।।८९

दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
तुल्या माहेन्द्रपुर्य्या तु सोमस्यापि विभावरी ॥६०
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्द्दिशम् ।
स्थिता धर्म्मव्यवस्थायै लोकसंरक्षणाय च ॥६१

यह सब भूतादि के द्वारा वृत है और यह सब भूत आदि महान् अर्थात् महत् से वृत होता है और वह महान् अव्ययात्मा एवं अनन्त प्रधान के द्वारा आवृत होता है ॥८५॥ अब लोकपालों के पुरों को क्रम के अनुसार बताया जायगा और ज्योतिर्गण के प्रचार का प्रमाण भी बताया जायगा ॥८६॥ प्राची अर्थात् पूर्व दिशा में मानस के मूर्धापर मेरु है जिसके ओकसार वाली हेम परिष्कृत माहेन्द्री है ॥८७॥ मानस के मस्तक पर ही मेरु के दक्षिण में संयमनपुर में वैवस्वत यम निवास किया करता है ॥८८॥ और मानस के मूर्धापर मेरु के पश्चिम दिशा में धीमान वरुण देव की परमरम्य सुखा नाम वाली नगरी है ॥८९॥ मानस के ही मूर्धापर उत्तर दिशा में मेरु के माहेन्द्र पुरी के तुल्य ही सोम की विभावरी पुरी है ॥९०॥ मानस के उत्तर पृष्ठ पर चारों दिशाओं में लोकपाल धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा लोकों के संरक्षण करने के वास्ते स्थित रहा करते हैं ॥९१।

लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने ।
काष्ठागतस्य सूर्य्यस्य गतिर्या तां निबोधत ॥९२
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्य्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ।
ज्योतिषाञ्चक्रमादाय सततं परिगच्छति ॥९३
मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः ।
वैवस्वते संयमने उदयस्तत्र उच्यते ॥९४
सुखायामर्द्धरात्रञ्च मध्यगः स्याद्रविर्यदा ।
सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ॥९५
विभायामर्द्धरात्रं स्यान्माहेन्द्यामस्तमेति च ।
तदा दक्षिणपूर्वेषामपराह्णो विधीयते ॥९६
दक्षिणापर देश्यानां पूर्व्वाह्णः परिकीर्त्त्यते ।

तेषामपररात्रञ्च ये जना उत्तरापथे ।।६७
देशा उत्तरपूर्व्वा ये पूर्व्वरात्रन्तु तान् प्रति ।
एवमेवोत्तारेष्वर्को भवनेषु विराजते ।।६८

लोकपालों के ऊपर के भाग में सब ओर से दक्षिण अयन में काष्ठागत सूर्य की जो गति होती है उसे आप लोग समझ लेवें ।।९२।। दक्षिण प्रक्रम में सूर्य फेंके हुए तीर की भाँति दौड़ लगाता है और निरन्तर ज्योतिर्गण के चक्र को लेकर चारों ओर जाया करता है ।।९३।। जिस समय भगवान् भुवन भास्कर अमरावती में मध्यगामी होते हैं तब वहाँ पर वैवस्वत सयमन में उदय कहा जाता है ।।९४।। जब रविदेव मध्यगामी होते हैं तब सुखापुरी में अर्धरात्रि होती है। सुखा में और इसके अनन्तर वारुणी में उत्तिष्ठ मान होते हुए वह दिखलाई दिया करते हैं ।।९५।। विभा में आधीरात होती है और माहेन्द्री वह अस्ताचलगामी होते हैं । तब दक्षिण पूर्व वालों का अपराह्ल किया जाता है ।।९६।। दक्षिणा परदेश वालों का पूर्वाह्ल परिकीर्त्तित होता है । उनके अपर में रात्रि होती है जो जन उत्तरापथ में निवास किया करते हैं ।।९७।। जो देश उत्तर पूर्व होते हैं उनके प्रति पूर्वरात्रि होती है । इसी प्रकार से ही उत्तर भुवनों में सूर्यदेव विराजमान हुआ करते हैं ।।९८।।

सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ले चार्य्यमा यदा ।
विभावर्य्यां सोमपुर्य्यामुत्तिष्ठति विभावसुः ।।६६
रात्र्यर्द्धं चामरावत्यामस्तमेति यमस्य च ।
सोमपुर्यां विभायान्तु मध्याह्ले स्याद्दिवाकरः ।।१००
महेन्द्रस्याम रावत्यामुत्तिष्ठति यदा रविः ।
अर्द्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ।।१०१
स शीघ्रमेति पर्य्येति भास्करोऽलातचक्रवत् ।
भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि गगने रविः ।।१०२
एवं चतुर्षु द्वीपेषु दक्षिणान्तेन सर्पति ।
उदयास्तमनेनासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ।।१०३
पूर्वाह्ले चापराह्ले तु द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ।

तपत्येकन्तु मध्याह्ने तैरेव तु सरश्मिभिः ॥१०४
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नं तपन् रविः ।
अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ॥१०५

सुखा में तथा वारुणी में मध्याह्न में जब अर्यमान होते हैं तब विभावरी में और सोमपुरी में विभावसु उत्थित होते हैं अर्थात् उगते हैं ॥ ९९ ॥ उस समय अमरावती में रात्रि का आधा भाग होता है और यम के यहाँ अस्ताचलगामी हुआ करते हैं। सोमपुरी और विभा में मध्याह्न में दिवाकर हुआ करते हैं ॥ १०० ॥ जिस समय महेन्द्र की अमरावती में सूर्य उदित हुआ करते हैं तब संयमन में आधी रात होती है और वारुणी में अस्त होते हैं ॥ १०१ ॥ वह भास्कर अलात के चक्र की भाँति शीघ्र ही आया करते हैं जाते हैं। आकाश में नक्षत्रों के भ्रममाण होते हुए सूर्य भ्रमण किया करते हैं ॥ १०२ ॥ इस प्रकार से चारों द्वीपों में दक्षिणान्त से प्रसर्पण किया करते हैं। उदय और अस्त मन के द्वारा यह बार-बार उत्थित हुआ करते हैं ॥ १०३ ॥ पूर्वाह्न में और अपराह्न में वह दो-दो देवालय वाले होते हैं। एक को तो मध्याह्न में तपते हैं और वह उन्हीं रश्मियों के द्वारा वर्धमान होने वालियों से उदित होते हुए मध्याह्न तक सूर्य तपन किया करते हैं इसके पश्चात् ह्रास को प्राप्त होती हुई किरणों से वह अस्ताचल को चले जाया करते हैं ॥ १०४-१०५ ॥

उदयास्तमयाभ्यां हि स्मृते पूर्वापरे दिशौ ।
यावत्पुरस्तात्तपति तावत् पृष्ठे तु पार्श्वयोः ॥१०६
यत्रोद्यन् दृश्यते सूर्यस्तेषां स उदयः स्मृतः ।
यत्र प्रणाशमायाति तेषामस्तः स उच्यते ॥१०७
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे ।
विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च ।
ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥१०८
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं भास्करस्य च ।
उच्छ्रायस्य प्रमाणेन ज्ञेयमस्तमनोदयम् ॥१०९
शुक्लच्छायोग्निरापश्च कृष्णच्छाया च मेदिनी ।

विदूरभावादर्कस्य उद्यतस्य विरश्मिता ।
रक्ताभावो विरश्मित्वाद्रक्तत्वाच्चाप्यनुष्णता ॥११०
लेखयावस्थितः सूर्यो यत्र यत्र तु दृश्यते ।
ऊर्द्ध्वं गतः सहस्रन्तु योजनानां स दृश्यते ॥१११
प्रभा हि सौरी पादेन अस्तङ्गच्छति भास्करे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात् प्रकाशते ॥११२

इस प्रकार से उदय और अस्तमयों के द्वारा पूर्वापर दिशाऐं कही गई हैं । जब तक आगे वह तपते हैं तब तक पृष्ठ में पार्श्व का होना होता है ॥ १०६ ॥ जहाँ पर उगते हुए सूर्यदेव दिखलाई देते हैं उनका वह उदय कहा गया है । जहाँ पर वह प्रकाश को प्राप्त होते हैं उनका वह अस्त कहा जाया करता है ॥ १०७ ॥ सब वर्षों के उत्तर में मेरु होता है और लोकालोक पर्वत सब के दक्षिण में होता है । सूर्य के विशेष दूर हो जाने से तथा भूमि की लेखा से आवृत होने से उसकी किरणें ह्रियमान हो जाया करती हैं । इसी कारण से वह रात्रि में दिखलाई नहीं दिया करते हैं ॥ १०८ ॥ ग्रह नक्षत्र और ताराओं का तथा भास्कर का दर्शन उच्छ्राय के प्रमाण से जानना चाहिए । जो अनोदय होता है वही अस्त कहा जाता है ॥ १०९ ॥ अग्नि और जल शुक्ल छाया वाले हैं और मेदिनी कृष्ण छाया वाली होती है । विशेष दूरी के भाव के होने के कारण से ही उद्यत सूर्य की विरश्मिता होती है अर्थात् किरणों के दर्शन का अभाव रहा करता है । जब उसकी विरश्मिता होती है तो उसमें रक्तता का अभाव रहा करता है और लालिमा के भाव का अभाव होने से उष्णता का भी अभाव रहता है ॥ ११० ॥ लेखा से अवस्थित सूर्य जहाँ-जहाँ पर भी दिखलाई देता है तो वह सहस्रों योजन ऊपर गया हुआ दिखलाई दिया करता है ॥१११॥ भगवान् भुवन भास्कर के अस्त में गमन करने पर सौरी प्रभा पाद से अग्नि में आविष्ट हो जाया करती है इस लिये रात्रि में दूर से प्रकाशित होती है ॥११२॥

उदितस्तु पुनः सूर्यः अस्तमाग्नेयमाविशत् ।
संयुक्तो वह्निना सूर्यस्ततः स तपते दिवा ॥११३
प्राकाश्यञ्च तथौष्ण्यञ्च सूर्याग्नेयी च तेजसी ।

परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ।।११४
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तथा तस्मिंश्च दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति तथा सूर्ये रात्रिराविशते त्वपः ।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ।।११५
अस्तं याति पुनः सूर्ये दिनं वै प्रविशत्यपः ।
तस्माच्छुक्ला भवन्त्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात् ।।११६
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमनेऽर्कस्य अहोरात्रं विशत्यपः ।।११७
दिनं सूर्यप्रकाशाख्यं तामसी रात्रिरुच्यते ।
तस्माद्व्यवस्थिता रात्रिः सूर्यावेक्ष्यमहः स्मृतम् ।।११८
एवं पुष्करमध्येन यदा सर्पति भास्करः ।
त्रिंशांशकन्तु मेदिन्या मुहूर्तेनैव गच्छति ।।११९

पुनः जब वह उदित होता है तो सूर्य आग्नेय अस्त में आविष्ट हो जाता है और वह्नि से संयुक्त होता हुआ वह सूर्य फिर दिन में तपा करता है ।।११३।। प्रकाश का होना तथा उष्णता का होना ये दोनों ही सूर्य तथा अग्नि के तेज होते हैं। ये दोनों परस्पर में अनुप्रवेश करके ही दिन और रात्रि में आप्यायित्त हुआ करते हैं।। ११४ ।। भूमि के उत्तर अर्धभाग में तथा दक्षिण में सूर्य के उत्थित होने पर रात्रि जल में आविष्ट हो जाती है। इसी लिये जल दिवारात्रि के प्रवेशन से ताम्र हो जाते हैं।। ११५ ।। फिर सूर्य के अस्तंगत हो जाने पर दिन जल में प्रविष्ट हो जाया करता है। इसी लिये जल शुक्ल हो जाते हैं। रात्रि दिन के प्रवेशन होने के कारण से ही ऐसा हुआ करता है ।। ११६ ।। इस क्रम के योग से भूमि के अर्ध दक्षिणोत्तर में सूर्य के उदयास्तमान वेला में अहोरात्र जल में प्रवेश किया करते हैं ।। ११७ ।। जो सूर्य के प्रकाश के नाम वाला होता है वही दिन कहा जाया करता है और जो तामसी अर्थात् प्रकाश के अभाव में अन्धकार से पूर्ण होती है वह रात्रि के नाम वाली कही जाया करती है। इससे रात्रि की व्यवस्था होती है और जो सूर्यावेक्ष्य है अर्थात् जिस समय में सूर्य देखने के योग्य होता है वह दिन कहा गया है ।। ११८ ।। इस प्रकार से जब

सूर्य पुष्कर के मध्य से सर्पण किया करता है तो पृथ्वी का त्रिशांशक मुहूर्त्त भर में ही चला जाता है ॥ ११९ ॥

योजनाग्रान्मुहूर्त्तस्य इमां संख्यां निबोधत ।
पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मृता ॥१२०
पञ्चाशत्तु तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ।
मौहूर्त्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ॥१२१
एतेन गतियोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम् ।
पर्य्यागच्छेत्तदादित्यो माघे काष्ठान्तमेव हि ॥१२२
सर्पते दक्षिणायान्तु काष्ठायां तन्निबोधत ।
नवकोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम् ॥१२३
तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
अहोरात्रात्पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ॥१२४
दक्षिणाद्विनिवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः ।
क्षीरोदस्य समुद्रस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥१२५
मण्डलं विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोट्यस्तु विस्तीर्णा विषुवच्चापि सा स्मृता ॥१२६

योजनाग्र से मुहूर्त्त की इस संख्या को समझ लो । वह पूर्ण सौ सहस्रों को इकत्तीस कही गई है ॥ १२० ॥ तथा अन्य पचास सहस्र अधिक सूर्य की यह मुहूर्त्त वाली गति का विधान किया जाता है ॥ १२१ ॥ इसी गति के योग से जब दक्षिण दिशा को सूर्य पर्यागमन किया करता है तब सूर्य माघ में दिशा के अन्त को ही प्राप्त होता है ॥ १२२ ॥ दक्षिण दिशा में जब गमन किया करता है इसे भी समझ लो । नौ करोड़ योजनों से परिमण्डल प्रसंख्यात होता है ॥ १२३ ॥ तथा सौ सहस्र चालीस और पाँच अहोरात्र से सूर्य की यह गति होती है ऐसा विधान किया जाता है ॥ १२४ ॥ दक्षिण से जिस समय यह सूर्य विनिवृत्त होता हुआ विषुवस्थ हो जाता है और क्षीरोद समुद्र के उत्तरान्त दिशाओं में भ्रमण करता हुआ आता है ॥ १२५ ॥ विषुवद्या का जो मण्डल होता है योजनों के द्वारा उसे भी जान लो । विषुवद्या भी तीन करोड़ विस्तीर्ण कही गई है ॥ १२६ ॥

तथा शतसहस्राणामशीत्येकाधिका पुनः ।
श्रवणे चोत्तरां काष्ठाश्चित्रभानुर्यदा भवेत् ।
शाकद्वीपस्य षष्ठस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥१२७
उत्तरायाञ्च काष्ठायां प्रमाणं मण्डलस्य च ।
योजनाग्रात्प्रसंख्याता कोटिरेका तु सा द्विजैः ॥१२८
अशीतिर्नियुतानीह योजनानां तथैव च ।
अष्टपञ्चाशतञ्चैव योजनान्यधिकानि तु ॥१२९
नागवीथ्युत्तरावीथी अजवीथी च दक्षिणा ।
मूलं चैव तथाषाढे ह्यजवीथ्युदयास्त्रयः ।
अभिजित्पूर्वतः स्वातिर्नागवीथ्युदयास्त्रयः ॥१३०
काष्ठयोरन्तरं यच्च तद्वक्ष्ये योजनैः पुनः ।
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशोत्तरं शतम् ॥१३१
त्रयस्त्रिंशाधिकाश्चान्ये त्रयस्त्रिंशच्चयोजनैः ।
काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनाग्रात् प्रतिष्ठितम् ॥१३२
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अन्तरे दक्षिणोत्तरे ।
ते तु वक्ष्यामि संख्याय योजनैस्तन्निबोधत ॥१३३

इसी प्रकार से सौ सहस्र और एकाधिक अस्सी श्रवण में उत्तर दिशा में जब सूर्य होता है तो वह शाकद्वीप षष्ठ की उत्तरान्त दिशाओं का विचरण करता हुआ ही होता है ॥ १२७ ॥ उत्तर दिशा में मण्डल का प्रमाण जो होता है वह द्विजों के द्वारा योजनाग्र से एक करोड़ प्रसंख्यात किया गया है ॥ १२८ ॥ यहाँ पर योजनों के अस्सी नियुत और अट्ठावन अधिक योजन होते हैं ॥१२९॥ नागवीथी, उत्तरावीथी और अजवीथी ये दक्षिण मूल और आषाढ़ में अजवीथी ये तीन उदय होते हैं। अभिजित नक्षत्र से पूर्व स्वाति में नागवीथी तीन उदय होते हैं ॥ १३० ॥ दिशाओं में जो अन्तर होता है उनको पुनः योजनों के द्वारा बतलाया जायगा। यह सौ हजार एक सौ इकत्तीस और अन्य तैंतीस अधिक अर्थात् तैंतीस योजनों के द्वारा योजनाग्र से दिशाओं का अन्तर प्रतिष्ठित होता है ॥ १३१-१३२ ॥ दिशाओं में और लेखाओं में जो दक्षिणोत्तर अन्तर हुआ

करते हैं उनकी संख्या करके योजनों के द्वारा बतलाया जायगा उन्हें भी आप लोग समझ लेवें ॥ १३३ ॥

एकैकमन्तरन्तस्या नियुतान्येकसप्तति: ।
सहस्राण्यतिरिक्ताश्च ततोऽन्या पञ्चसप्तति: ॥१३४
लेखयो: काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयो: स्मृतम् ।
अभ्यन्तरन्तु पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे ॥१३५
बाह्यतो दक्षिणे चैव सततन्तु यथाक्रमम् ।
मण्डलानां शतं पूर्णमशीत्यधिकमुत्तरम् ॥१३६
चरते दक्षिणे चापि तावदेव विभावसु: ।
प्रमाणं मण्डलस्याथ योजनाग्रान्निबोधत ॥१३७
एकविंशद्योजनानां सहस्राणि समासत: ।
शते द्वे पुनरप्यन्ये योजनानां प्रकीर्त्तिते ॥१३८
एकविंशतिभिश्चैव योजनैरधिकैर्हि ते ।
एतत्प्रमाणमाख्यातं योजनैर्मण्डलं हि तत् ॥१३९
विष्कम्भो मण्डलस्यैष तिर्यक् स तु विधीयते ।
प्रत्यहञ्चरते तानि सूर्यो वै मण्डलक्रमम् ॥१४०

उसका एक-एक का अन्तर एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर नियुत हैं । सहस्र अतिरिक्त हैं इसके बाद भी अन्य पिचहत्तर हैं ॥ १३४ ॥ लेखाओं तथा बाह्याभ्यन्तर दिशाओं में यह अन्तर कहा गया है । और अभ्यन्तर तो उत्तरायण में मण्डलों का परिगमन करता है ॥ १३५ ॥ वायु से दक्षिण में निरन्तर क्रम के अनुसार एकसौ अस्सी मण्डलों के उत्तर में तथा उसी प्रकार से दक्षिण में भी विभावसु विचरण किया करता है । मण्डल का प्रमाण भी योजनाग्र से समझ लो ॥ १३६-१३७ ॥ संक्षेप से इक्कीस सहस्र तथा फिर अन्य दोसौ योजन कहे गये हैं । १३८ ॥ इक्कीस अधिक योजनों के द्वारा मण्डल का प्रमाण कहा गया है ॥ ११६ ॥ मण्डल का जो विष्कम्भ होता है वह तिर्यक् (तिरछा) विधान किया जाता है । सूर्य प्रतिदिन मण्डल क्रम पूर्वक उनका विचरण किया करता है ॥ १४० ॥

कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं निवर्त्तते ।
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्त्तते ॥१४१
तस्मात् प्रकृष्टां भूमिञ्च कालेनाल्पेन गच्छति ।
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्त्तैर्दक्षिणोत्तरे ॥१४२
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणामह्लानुचरते रविः ।
मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१४३
कुलालचक्रमध्यस्तु यथा मन्दं प्रसर्पति ।
तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः ॥१४४
त्रयोदशार्द्धमर्द्धेन ऋक्षाणां चरते रविः ।
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पां निगच्छति ॥१४५
अष्टादशमुहूर्त्तैस्तु उत्तरायणपश्चिमम् ।
अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रमः ॥१४६
त्रयोदशार्द्धमर्धेन ऋक्षाणाञ्चरते रविः ।
मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१४७
ततो मन्दतरं ताभ्याश्चक्रं भ्रमति वै यथा ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै यथा ॥१४८
त्रिंशन्मुहूर्त्तानि वाहुरहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन् ।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि सः ॥१४९

कुलाल (कुम्हार) का चक्र पर्यन्त जिस तरह शीघ्र ही लौट आता है उसी प्रकार से दक्षिण प्रक्रम में सूर्य भी शीघ्र निवृत हो जाता है ॥१४१॥ इससे इस प्रकृष्ट भूमि को अल्पकाल में ही जाता है । सूर्य बारह मुहूर्त्तों में ही दक्षिणोत्तर में शीघ्र चला जाया करता है ॥१४२॥ दिन में सूर्य नक्षत्रों के त्रयोदशार्ध का अनुसरण किया करता है और अठारह मुहुर्त्तों में रात्रि में नक्षत्रों का चरण किया करता है ॥१४३॥ जिस प्रकार से कुम्हार के चक्र का मध्य भाग मन्द गति से प्रसर्पण किया करता है वैसे ही उदगयन में सूर्य देव भी मन्द विक्रम वाले हुए चला करते हैं ॥१४४॥ नक्षत्रों के त्रयोदशार्ध के अर्ध से सूर्य चरण किया करता है । इसी कारण से अल्प भूमि को भी बहुत अधिक काल

में जाया करता है ॥१४५॥ अठारह मुहूर्त्तों में उत्तरायण पश्चिम में दिन हुआ करता है उसमें भी वह बहुत धीमी गति वाला होता हुआ विचरण किया करता है ॥ १४६ ॥ सूर्य नक्षत्रों के त्रयोदशार्ध को अर्ध से चरण किया करता है। रात्रि में अठारह मुहूर्त्तों में नक्षत्रों का चरण किया करता है ॥ १४७ ॥ इसके अनन्तर उन दोनों से जिस प्रकार कुछ और मन्द चक्र भ्रमण किया करता है और मृत्पिण्ड की भाँति मध्य में स्थित ध्रुव जैसे भ्रमण करता है ॥ १४८ ॥ तीस मुहूर्त्तों को ही अहोरात्र कहते हैं। ध्रुव भ्रमण करता हुआ दोनों दिशाओं के मध्य में वह मण्डलों का भ्रमण किया करता है ॥ १४९ ॥

कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्त्तते ।
ध्रुवस्तथा हि विज्ञेयस्तत्रैव परिवर्त्तते ॥१५०
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु ।
दिवा नक्तञ्च सूर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः ॥१५१
उत्तरे प्रक्रमे त्विन्दोर्दिवा मन्दा गतिः स्मृता ।
तथैव च पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गतिः ॥१५२
दक्षिणे प्रक्रमे चैव दिवा शीघ्रं विधीयते ।
गतिः सूर्यस्य नक्तं वै मन्दा चापि तथा स्मृता ॥१५३
एवं गतिविशेषेण विभजन् राव्यहानि तु ।
तथा विचरते मार्गं समेन विषमेण च । १५४
लोकालोके स्थिता ये ते लोकपालाश्चतुर्दिशम् ।
अगस्त्यश्चरते तेषामुपरिष्टाज्जवेन तु ।
भजन्नसावहोरात्रमेवङ्गतिविशेषणैः ॥१५५
दक्षिणे नागवीथ्यायां लोकालोकस्य चोत्तरम् ।
लोकसन्तारको ह्येष वैश्वानरपथाद्वहिः ॥१५६
पृष्ठे यावत् प्रभा सौरी पुरस्तात् सम्प्रकाशते ।
पार्श्वयोः पृष्ठतस्तावल्लोकालोकस्य सर्वतः ॥१५७

जिस प्रकार कुलाल के चक्र की नाभि वहाँ पर ही रहा करती है ध्रुव को भी उसी प्रकार का जान लेना चाहिए। वह वहाँ पर ही परिवर्त्तन किया

करता है ॥ १५० ॥ दोनों दिशाओं के मध्य में मण्डलों का भ्रमण करने वाले रात और दिन सूर्य की गति भी मन्द और शीघ्रता वाली हो जाती है ॥१५१॥ उत्तर प्रक्रम में चन्द्रमा की गति दिन में मन्द कही गई है। उसी भाँति रात में सूर्य की गति शीघ्रता वाली हुआ करती है ॥ १५२ ॥ दक्षिण प्रक्रम में दिन में शीघ्र होने का विधान होता है। रात्रि में सूर्य की गति मन्द उसी भाँति कही गई है ॥ १५३ ॥ इस प्रकार से गति विशेष के द्वारा रात और दिन का विभाग करते हुए सम और विषम के द्वारा उसी प्रकार मार्ग का विचरण किया करता है ॥ १५४ ॥ लोकालोक में जो स्थित हैं वे चारों दिशाओं में लोकपाल हैं। उनके ऊपर अगस्त्य वेग से चरण करते हैं जो कि इस प्रकार से गति विशेषणों से रात दिन सेवन करने वाले हैं ॥ १५५ ॥ दक्षिण में नागवीथी में लोकालोक पर्वत के उत्तर में वैश्वानर पथ से बाहिर यह लोक सन्तारक है ॥ १५६ ॥ पृष्ठ में सौरी अर्थात् सूर्य की प्रभा जब तक आगे भली-भाँति प्रकाशित होती है लोकालोक के पीछे और पार्श्वों में सब ओर तब तक प्रकाश दिया करती है ॥ १५७ ॥

योजनानां सहस्राणि दशोर्द्ध न्तूच्छ्रितो गिरिः ।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च सर्वतः परिमण्डलः ॥१५८
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ।
अभ्यन्तरं प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः ॥१५९
एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्त्वतः परम् ।
लोकालोक एकधा तु निरालोकस्त्वनेकधा ॥१६०
लोकालोकन्तु सन्धत्ते यस्मात् सूर्यः परिग्रहम् ।
तस्मात्सन्ध्येति तामाहुरुषाव्युष्टचोर्यदन्तरम् ।
उषा रात्रिः स्मृता विप्र व्युष्टिश्चापि त्वहः स्मृतम् ॥१६१
सूर्यं हि ग्रसमानानां सन्ध्याकाले हि रक्षसाम् ।
प्रजापतिनियोगेन शापस्तेषां दुरात्मनाम् ।
अक्षयत्वञ्च देहस्य प्रापिता मरणं तथा ॥१६२
तिस्रः कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः ।

प्रार्थयन्ति सहस्रांशुमुदयन्ति दिने दिने ।
तापयन्तो दुरात्मानः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ।।१६३
अथ सूर्यस्य तेषाञ्च युद्धमासीत् सुदारुणम् ।
ततो ब्रह्मा च देवाश्च ब्राह्मणाश्चैव सत्तमाः ।
सन्ध्येति समुपासन्तः क्षेपयन्ति महाजलम् ।।१६४
ओङ्कारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
तेन दह्यन्ति ते दैत्या वज्रभूतेन वारिणा ।।१६५

यह गिरि दश सहस्र योजन उच्छ्रित ऊपर को है और सब ओर से परिमण्डल प्रकाशयुक्त तथा अप्रकाश वाला है ।। १५८ ।। लोकालोक गिरि के भीतर नक्षत्र, चन्द्र और सूर्य तथा ताराओं के गणों के साथ समस्त ग्रह प्रकाश दिया करते हैं ।। १५६ ।। इतनाही लोक है और इसके आगे तो निरालोक ही है । लोकालोक तो एक प्रकार का ही होता है और निरालोक अनेक प्रकार वाला होता है ।। १६० ।। जिस कारण से सूर्य लोकालोक के परिग्रह का सन्धान करता है इसी लिये उषा और व्युष्टि का जो अन्तर होता है उसको सन्ध्या कहा करते हैं । विप्रों के द्वारा उषा को रात्रि और व्युष्टि को दिन कहा गया है ।। १६१ ।। सन्ध्या के समय में सूर्य का ग्रास करने वाले उन दुरात्मा राक्षसों को प्रजापति के नियोग से शाप है देह का अक्षयत्व तथा वे मरण को प्राप्त कराये गये थे ।। १६२ ।। मन्देहा नाम वाले विख्यात राक्षस तीन करोड़ हैं जो दिन-दिन में उगने वाले सूर्य की प्रार्थना करते हैं । ये दुरात्मा ताप देते हुए सूर्य को खाना चाहते हैं ।। १६३ ।। इसके अनन्तर उनका और सूर्य का महा-दारुण युद्ध हुआ था । तब ब्रह्माजी, देवगण, और सत्ताम ब्राह्मण सन्ध्या इसकी उपासना करते हुए महाजल का क्षेप किया करते हैं ।। १६४ ।। ओङ्कार ब्रह्म से संयुक्त और गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित वह जल है । उस वज्रभूत जल से वे दैत्य दग्ध होते हैं ।। १६५ ।।

ततः पुनर्महातेजा महाद्युतिपराक्रमः ।
योजनानां सहस्राणि ऊर्द्ध्वमुत्तिष्ठते शतम् ।।१६६
ततः प्रयाति भगवान् ब्राह्मणैः परिवारितः ।

वालखिल्यैश्च मुनिभिः कृतार्थैः समरीचिभिः ।।१६७
काष्ठानिमेषा दश पंच चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्तम् ।
त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ।।१६८
ह्रासवृद्धी त्वह भार्गैर्दिवसानां यथाक्रमम् ।
सन्ध्या मुहूर्तमानन्तु ह्रासे वृद्धौ समा स्मृता ।।१६९
लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्त्तागते तु वै ।
प्रातस्तनः स्मृतः कालो भागस्त्वह्नः स पंचमः ।।१७०
तस्मात् प्रातस्तनात्कालात् त्रिमूहूर्त्तस्तु सङ्गवः ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्त स्तु तस्मात्कालाच्च सङ्गवात् ।।१७१
तस्मान्मध्यन्दिनात् कालादपराह्ण इति स्मृतः ।
त्रय एव मुहूर्त्तास्तु तस्मात् कालाच्च मध्यमात् ।।१७२

इसके अनन्तर महान् तेज से युक्त और महान् द्युति तथा पराक्रम वाले सहस्र शत योजन ऊर्ध्व में उत्थित होते हैं ।। १६६ ।। इसके पश्चात् वालखिल्य मुनि, कृतार्थ मरीचि और ब्राह्मणों के द्वारा परिवारित भगवान् प्रयाण करते हैं ।। १६७ ।। दश और पाँच निमेषों की काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं से कलान्त होता है और तीस कलाओं का एक मुहूर्त्त होता है तथा तीस मुहूर्त्तों की रात्रि तथा दिन सम होते हैं ।। १६८ ।। दिन के भागों से यथाक्रम दिनों की ह्रास और वृद्धि होती है । मुहूर्त्त के मान तक सन्ध्या ह्रास और वृद्धि में सम कही गई है ।। १६९ ।। इसके अनन्तर तीन मुहूर्त्त आदित्य के आगत होने पर लेखा प्रभृति होती हैं । जो प्रातस्तन होता है वह काल कहलाता है वह दिवस का पांचवाँ भाग होता है ।। १७० ।। उस प्रातस्तन काल से तीन मुहूर्त्त वाला सङ्गव होता है । उस सङ्गव काल से तीन मुहूर्त्त वाला मध्याह्न होता है ।। १७१ ।। उस मध्यन्दिन काल से अपराह्ण यह कहा गया है । उस मध्यम काल से तीन ही मुहूर्त्त होते हैं ।। १७२ ।।

अपराह्णे व्यतीपाते कालः सायाह्न उच्यते ।
दशपञ्चमुहूर्त्ताह्वै मुहूर्त्तास्त्रिय एव च ।।१७३
दशपंचमुहूर्त्तं वै अहर्विषुवति स्मृतम् ।

दशपंचमुहूर्त्ताद्वै रात्रिन्दिवमिति स्मृतम् ।।१७४
वर्द्धते ह्रसते चैव अयने दक्षिणोत्तरे ।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते त्वहः ।।१७५
शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवन्तद्विभाव्यते ।
अहोरात्रं कलाश्चैव सप्त सोमः समश्नुते ।।१७६
तथा पंचदशाहानि पक्ष इत्यभिधीयते ।
द्वौ पक्षौ च भवेन्मासो द्वौ मासावन्तरावृतुः ।
ऋतुत्रयमयनं स्याद्द्वेऽयने वर्षमुच्यते ।।१७७
निमेषादिकृतः कालः काष्ठाया दश पंच च ।
कलायास्त्रिंशतः काष्ठा मात्राशीतिद्वयात्मिका ।।१७८
शतघ्नैकोनकास्त्रिंशन्मात्रास्त्रिंशत् षडुत्तरा ।
द्विषष्टिभाक् त्रयोविंशन्मात्रायाञ्च चला भवेत् ।।१७९
चत्वारिंशत्सहस्राणि शतान्यष्टौ च विद्युतिः ।
सप्ततिञ्चापि तत्रैव नवतिं विद्धि निश्चये ।।१८०

अपराह्न के व्यतीपात हो जाने पर जो काल होता है वह सायाह्न कहा जाता है। दश पाँच मुहूर्त से तीन ही मुहूर्त होते हैं ।। १७३ ।। दश पञ्च मुहूर्त्त वाला विषुवान् में अह कहा गया है। दश पाँच मुहूर्त से रात्रिन्दिन यह कहा गया है ।। १७४ ।। दक्षिण और उत्तर अयन में रात्रि दिन बढ़ता है और ह्रास को प्राप्त होता है। अह रात्रि का ग्रास करता है और रात्रि अह का ग्रास किया करती है। इसी तरह से इन दोनों का ह्रास तथा वर्धन हुआ करता है ।। १७५ ।। शरद और बसन्त के मध्य में वह विषुवत् विभावित होता है। अहोरात्र और कला सात इनको सोम समशन किया करता है ।। १७६ ।। उसी प्रकार से पन्द्रह दिन का पक्ष कहा जाता है। दो पक्षों का एक मास होता है और दो मासों के अन्तर में एक ऋतु होता है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और दो अयनों का एक वर्ष कहा जाया करता है ।। १७७ ।। दश और पाँच अर्थात् पन्द्रह कला का निमेषादि कृत काल होता है। तीस कला का काष्ठा और अशीति (अस्सी) द्वयकी मात्रा होती है ।। १७८ ।।

शतघ्नैकोनका त्रिशत षट् उत्तर वाली मात्रा बासठ के भजन वाली तेईस मात्रा में चल होती है ॥ १७९ ॥ चालीस सहस्र सौ और आठ विद्युति सत्तर और वहाँ ही नब्बे निश्चय में जानो ॥ १८० ॥

चत्वार्येत्र शतान्याहुर्विद्युतौ वैधसंयुगे ।
चरांशो ह्येष विज्ञेयो नालिका चात्र कारणम् ॥१८१
संवत्सरादय: पञ्च चतुर्मानविकल्पिता: ।
निश्चय: सर्वकालस्य युग इत्यभिधीयते ॥१८२
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितोय: परिवत्सर: ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सर: ।
पञ्चमो वत्सरस्तेषां कालस्तु परिसंज्ञित: ॥१८३
विंशशतं भवेत्पूर्णं पर्वणां तु रवेर्युगम् ।
एतान्यष्टादशस्त्रिंशदुदयो भास्करस्य च ।।१८४
ऋतवस्त्रिंशत: सौरा अयनानि दशैव तु ।
पञ्चत्रिंशत् शतं चापि षष्टिर्मासाश्च भास्कर: ॥१८५
त्रिंशदेव त्वहोरात्रं स तु मासश्च भास्कर: ।
एकषष्टिस्त्वहोरात्रा दनुरेको विभाव्यते ॥१८६
अह्नान्तु त्र्यधिकाशीति: शतं चाप्यधिकं भवेत् ।
मान तच्चित्रभानोस्तु विज्ञेयं भुवनस्य तु ॥१८७

वैधसंयुग विद्युति में चारसौ ही कहते हैं । यहाँ चरांश जानना चाहिए । यहाँ पर नालका कारण है ॥ १८१ ॥ सम्वत्सर आदि पाँच चार मान से विकल्पित होते हैं । समस्त काल का निश्चय युग ऐसा कहा जाता है ॥ १८२ ॥ प्रथम सम्वत्सर होता है, दूसरा परिवत्सर होता है, तीसरा इद्वत्सर और चौथा अनुवत्सर तथा पांचवाँ वत्सर होता है । इस प्रकार से उनका काल परिसंज्ञित होता है ॥ १८३ ॥ बीस सौ पर्वों का पूर्ण रवि का युग होता है । ये अठारह तीस भास्कर का उदय है ॥ १८४ ॥ सौर ऋतुऐं तीस और दश ही अयन होते हैं । पेंतीस और सौ तथा साठ मास भास्कर है ॥ १८५ ॥ तीस ही अहोरात्र का वह भास्कर मास होता है । इकसठ अहोरात्र

एक दनु विभावित होता है ।। १८६ ।। दिनों के तिरासी और सौ अधिक होते हैं । वह चित्रभानु भुवन का मान समझना चाहिए ।। १८७ ।।

सौरसौम्यं तु विज्ञेयं नक्षत्रं सावनं तथा ।
नामान्येतानि चत्वारि यैः पुराणं विभाव्यते ।।१८८
खे तस्योत्तारतश्चैव शृङ्गवान्नाम पर्वतः ।
त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणि स्पृशन्तीव नभस्तलम् ।।१८९
तैश्चापि शृङ्गवान्नाम सर्वतश्चैव विश्रुतः ।
एकमार्गश्च विस्तारो विष्कम्भश्चापि कीर्तितः ।।१९०
तस्य वै सर्वतः शृङ्गं मध्यमन्तद्धिरण्मयम् ।
दक्षिणं राजतश्चैव शृङ्गं तु स्फटिकप्रभम् ।।१९१
सर्वरत्नमयं चैकं शृङ्गमुत्तरमुत्तामम् ।
एवं कूटैस्त्रिभिः शैलैः शृङ्गवानिति विश्रुतः ।।१९२
यत्ताद्विषुवतं शृङ्गन्तदर्कः प्रतिपद्यते ।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये मध्यमां गतिमास्थितः ।
अहस्तुल्यामथो रात्रिं करोति तिमिरापहः ।।१९३
हरिताश्च हया दिव्यास्ते नियुक्ता महारथे ।
अनुलिप्ता इवाभान्ति पद्मरक्तैर्गभस्तिभिः ।।१९४
मेषान्ते च तुलान्ते च भास्करोदयतः स्मृताः ।
मुहूर्त्ता दश पञ्चैव अहोरात्रिश्च तावती ।।१९५

सौर, सौम्य, नक्षत्र और सावन इन्हें समझ लेना चाहिए । ये चार नाम हैं जिनसे पुराण विभावित होता है ।। १८८ ।। आकाश में उसके उत्तर में शृङ्गवान् नाम का एक पर्वत है उसके तीन शिखर हैं जो कि इतने ऊँचे हैं कि मानों वे आकाश तल का स्पर्श करते हैं ।। १८९ ।। उन्हीं से शृङ्गवान् यह नाम सब ओर विश्रुत होता है । एक मार्ग और विस्तार और विष्कम्भ भी कहा गया है ।। १९० ।। उसके शिखर सब ओर है उनमें जो मध्यम शृङ्ग है वह हिरण्मय होता है । दक्षिण शिखर राजत (चांदी का) है जो कि स्फटिक की प्रभा वाला है ।। १९१ ।। उत्तर की ओर जो शिखर है वह समस्त रत्नों से

परिपूर्ण एक उत्तम शिखर है। इस प्रकार से तीन कूटों के शैलों से यह शृङ्गवान् इस नाम से प्रख्यात है ।। १९२ ।। जो विषुवत शृङ्ग है उसको अर्क प्रतिपन्न होता है। शरत् और बसन्त के मध्य में मध्यम गति में आस्थित होता है। तिमिर अर्थात् अन्धकार अपहरण करने वाला सूर्य दिन के तुल्य रात्रि को कर देता है ।। १९३ ।। दिव्य हरित अश्व महारथ में नियुक्त होते हैं। पद्म के समान रक्त किरणों से अनुलिप्त की भाँति शोभित होते हैं ।। १९४ ।। मेष के अन्त में और तुला के अन्त में भास्करोद्यत कहे गये हैं। पन्द्रह मुहूर्त्त की उतनी ही अहोरात्रि होती है ।। १९५ ।।

कृत्तिकानां यदा सूर्यः प्रथमांशगतो भवेत् ।
विशाखानां तथा ज्ञेयश्चतुर्थांश निशाकरः ।।१९६
विशाखायां यदा सूर्यश्चरतेंऽशं तृतीयकम् ।
तदा चन्द्रं विजानीयात् कृत्तिकाशिरसि स्थिरम् ।।१९७
विषुवन्तं तदा विद्यादेवमाहुर्महर्षयः ।
सूर्येण विषुव विद्यात् कालं सोमेन लक्षयेत् ।।१९८
समा रात्रिरहश्चैव यदा तद्विषुवद्भवेत् ।
तदा दानानि देयानि पितृभ्यो विषुवत्यपि ।
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण मुख मेतत्तु दैवतम् ।।१९९
ऊनरात्राधिमासौ च कलाकाष्ठामुहूर्त्तकाः ।
पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च ।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ।।२००
तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात् ।
नभो नभस्योऽथ इषुः सहोर्जः ।
सहःसहस्याविति दक्षिणं स्यात् ।।२०१
संवत्सरास्ततो ज्ञेयाः पश्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ।
तस्मात्तु ऋतवो ज्ञेया ऋतवो ह्यन्तरा स्मृताः ।।२०२

जिस प्रकार कृत्तिकाओं का सूर्य प्रथमांशगत होता है तब विशाखाओं के चतुर्थांश में निशाकर होता है ।। १९६ ।। विशाखा में जब सूर्य तृतीय अंश में

चरण किया करता है तब चन्द्रमा को कृत्तिका के शिर में स्थित जानना चाहिए ॥ १९७ ॥ उस समय देव को विषुवान् समझना चाहिए ऐसा ऋषि लोग कहते हैं। सूर्य को विषुव समझे और काल को सोम के साथ लक्षित करे ॥ १९८ ॥ जब रात्रि और दिन समान होवें और जब विषुवद् होवे तब विषुवान् में भी पितरों को दान देने चाहिये और विशेष करके ब्राह्मणों को देवे क्योंकि ये देवताओं का मुख हुआ करता है ॥ १९९ ॥ ऊन रात्र और अधिमास, कला, काष्ठा और मुहूर्त्त-पौर्णमासी तथा अमावस्या जाननी चाहिए। सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति जाननी चाहिये ॥ २०० ॥ तप और तपस्या, मधु और माधव, शुक्र और शुचि उत्तर अयन होता है। नभ और नभस्य इषु-सहोर्ज और सह तथा सहस्य दक्षिण अयन जान लेवे ॥ २०१ ॥ इसके पश्चात् सम्वत्सर जाने जो कि पञ्च अब्द ब्रह्मा के सुत हैं। उससे ऋतु जाने, जो अन्तर होते हैं वे ऋतु कहे गये हैं ॥ २०२ ॥

तस्मादनुमुखा ज्ञेया अमावास्यास्य पर्वणः।
तस्मात्तु विषुवं ज्ञेयं पितृदैवहितं सदा ॥२०३
एवं ज्ञात्वा न मुह्येत दैवे पित्र्ये च मानवः।
तस्मात् स्मृतं प्रजानां वै विषुवत्सर्वगं सदा ॥२०४
आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकान्तो लोक उच्यते।
लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः ॥२०५

चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात्।
सुधामा चैव वैराजः कर्द्दमः शङ्कपस्तथा।
हिरण्यलोमा पर्जन्यः केतुमान् जातनिश्चयः ॥२०६
निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निस्तन्त्रा निष्परिग्रहाः।
लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥२०७

उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम्।
पितृयाणः स वै पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ॥२०८
तत्रासते प्रजावन्तो मुनयो ह्यग्निहोत्रिणः।
लोकस्य सन्तानकराः पितृयाणे पथिस्थिताः ॥२०९

इससे इस पर्व की अमावस्या को अनुमुखा जाननी चाहिए। उससे पितर और देवों के हित वाला विषुव सदा जान लेना चाहिए ॥ २०३ ॥ मान का इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके फिर दैव तथा पितर सम्बन्धी कार्य में मोह नहीं करना चाहिये। इससे समस्त में गमन करने वाला सदा प्रजाओं का विषुवत् कहा गया है ॥ २०४ ॥ आलोकान्त लोक कहा गया है और लोकान्त लोक कहा जाता है वहाँ पर लोकालोक के मध्य में लोकपाल स्थित होते हैं ॥ २०५ ॥ वहाँ चार महान् आत्मा वाले भूतसंप्लव पर्यन्त रहा करते हैं। सुधामा, वैराज, कर्द्दम, शङ्खप, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, केतुमान, जातनिश्चय, निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निस्तन्त्र, निष्परिग्रह—ये लोकालोक में चारों दिशाओं में लोकपाल स्थित हैं ॥ २०६–२०७ ॥ अगस्त्य के उत्तर में और अजवीथी के दक्षिण में वैश्वानर पथ से बाहिर वह पितृगण पन्था होता है ॥ २०८ ॥ वहाँ पर अग्निहोत्र करने वाले प्रजावान् मुनिगण लोक के सन्तान कहने वाले पितृयाण के मार्ग में स्थित होते हैं ॥ २०९ ॥

भूतारम्भ कृतं कर्म आशिषा ऋत्विगुच्यते ।
प्रारभन्ते लोककामास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः ।।२१०
चलितन्ते पुनर्द्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे ।
सन्तत्या तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ।।२११
जायमानास्तु पूर्वो वै पश्चिमाधां गृहेषु च ।
पश्चिमाश्चैव जायन्ते पूर्वेषां निधनेष्वपि ।
एवमावर्त्तमानास्ते तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ।।२१२
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनां गृहमेधिनाम् ।
सवितुर्द्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ।
क्रियावतां प्रसङ्ख्येया ये श्मशानानि भेजिरे ।।२१३
लोकसंव्यवहारेण भूतारम्भकृतेन च ।
इच्छाद्वेषप्रकृत्या च मैथुनोपगमेन च ।।२१४
तथा कायकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च ।
एतैस्तैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानि हि भेजिरे ।
प्रजैषिणस्ते मुनयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ।।२१५

नागवीथ्युत्तरे यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् ।
उत्तरः सवितुः पन्था देवयानस्तु स स्मृतः ।।२१६

भूतारम्भ कृत कर्म आशीष से ऋत्विग कहा जाता है । लोक की कामना वाले प्रारम्भ किया करते हैं उनका वह दक्षिण पन्था होता है ।। २१० ।। वे चलित हो जाने वाले धर्म को फिर युग-युग में स्थापित किया करते हैं और वह सन्तति से, तप से, मर्यादाओं से और श्रुत के द्वारा ही किया करते हैं ।। २११ ।। पश्चिमों के गृहों में पूर्व जायमान होते हैं, और पश्चिम पूर्वों के निधन होने पर उत्पन्न हुआ करते हैं । इस प्रकार से आवर्त्तमान वे भूतसंप्लव तक ठहरा करते हैं ।। २१२ ।। अठ्ठासी सहस्र गृहमेधी मुनियों का सविता का दक्षिण मार्ग है जिसमें वे आश्रित रहते हैं और जब तक चन्द्रमा तथा तारागण स्थित हैं तब तक रहते हैं, और क्रिया वालों की प्रसंख्या करनी चाहिए जो कि श्मशानों के सेवन किया करते थे ।। २१३ ।। लोक के संव्यवहार से और भूतारम्भ कृत से, इच्छा और द्वेष की प्रवृत्ति से, मैथुन के उपगम से तथा यहाँ पर कायकृत से और विषय के सेवन से इतने ये कारण हैं जिन से सिद्ध लोग श्मशानों के सेवन किया करते थे । वे मुनिगण प्रजाओं के इच्छा वाले यहाँ द्वापरों में उत्पन्न हुए ।। २१४-२१५ ।। नागवीथी के उत्तर में और जो सप्तर्षियों के दक्षिण में उत्तर सविता का पन्था है वह देवयान कहा गया हैं ।। २१६ ।।

यत्र ते वासिनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः ।
सततन्ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्ज्जितस्तु तैः ।।२१७
अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्द्धरेतसाम् ।
उदक्पन्थानमर्यम्णः श्रिता ह्याभूतसम्प्लवात ।।२१८
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽस्मृतत्वं हि भेजिरे ।
आभूतसम्प्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते ।।२१९
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार्गगामिनः ।
ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पुण्यपापकृतोऽपरम् ।
आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते ह्यूर्द्धरेतसः ।।२२०
ऊर्द्धोत्तरमृषियभ्यस्तु ध्रुवो यत्रास्ति वै स्मृतम् ।
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ।।२२१

तत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाधकाः ॥२२२

यहाँ पर जो निवास करने वाले हैं वे विमल, सिद्ध और ब्रह्मचारी हैं । वे निरन्तर जुगुप्सा करते हैं इससे उन्होंने मृत्यु को जीत लिया है ॥ २२७ ॥ उन ऊर्द्ध्वरेताओं के अठ्ठासी सहस्र हैं जो अर्यमा के उदक् पन्था का आश्रय वाले हैं और भूतसंप्लव अर्थात् महाप्रलय पर्यन्त वहाँ आश्रित रहते हैं ॥ २१८ ॥ इन सब कारणों से जो कि शुद्ध हैं वे अस्मृतत्व का सेवन करते थे । और भूतसंप्लव तक स्थित रहने वालों का अमृतत्व विभावित होता है ॥ २१९ ॥ अयममार्ग-गामिका यह त्रैलोक्य की स्थिति का काल है । ब्रह्म हत्या और अश्वमेधों से पुण्य, पाप कृत अपर है । भूतसंप्लव के अन्त में ऊर्द्ध्वरेता भी क्षीण हो जाते हैं । ऊर्द्ध्वोत्तार ऋषियों के लिये जहाँ ध्रुव है वह कहा गया है । यह व्योम में भास्वर तीसरा दिव्य विष्णु पद होता है जहाँ जाकर किसी प्रकार शोक नहीं करते हैं वही विष्णु का परम पद होता है । वहाँ धर्म ध्रुवादिक ठहरा करते हैं जहाँ वे लोक के साधक होते हैं ॥ २२२ ॥

॥ प्रकर्ण ३४—ज्योतिष प्रचार (२) ॥

स्वायम्भुवे निसर्गे तु व्याख्यातान्युत्तराणि तु ।
भविष्याणि च सर्वाणि तेषां वक्ष्याम्यनुक्रमम् ॥१
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पप्रच्छुर्लोमहर्षणम् ।
सूर्याचन्द्रमसोश्चारं ग्रहाणाञ्चैव सर्वशः ॥२
भ्रमन्ते कथमेतानि ज्योतींषि दिवि मण्डलम् ।
तिर्यग्व्यूहेन सर्वाणि तथैवासङ्करेण च ।
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ॥३
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
भूतसम्मोहनन्त्वेतच्छ्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते ॥४
भूतसम्मोहनं ह्येतद् ब्रुवतो मे निबोधत ।
प्रत्यक्षमपि दृश्यं यत्तत् संमोहयते प्रजाः ॥५

योऽसौ चतुर्दिशं पुच्छे शिशुमारे व्यवस्थितः ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ॥६
स हि भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥७

श्री सूत जी ने कहा—स्वायम्भुव निसर्ग में जो उत्तर थे उनकी व्याख्या कर दी गई है । भविष्य में जितने सब हैं उनका अनुक्रम बतलाया जायगा ॥१॥ यह सुनकर मुनिगण ने लोमहर्षण से पूछा कि सूर्य, चन्द्रमा का चार और सब ग्रहों का चार कैसा होता है ? ॥२॥ ऋषियों ने कहा—दिविमण्डल में ये ज्योतियाँ किस प्रकार से भ्रमण किया करती हैं । ये सब तिर्यग् व्यूह से तथा असङ्कार से भ्रमण किया करते हैं ? और उनको कौन भ्रमण कराया करता है अथवा वे स्वयं ही भ्रमण किया करते हैं ? ॥ ३ ॥ हे सत्तम ! हम सभी लोग इस बात को जानना चाहते हैं सो आप कृपा करके हमको सब बतलाइये । इस भूत सम्मोहन के सुनने की इच्छा हमें होती है ॥ ४ ॥ श्री सूत जी ने कहा—अब मैं इस भूत सम्मोहन को ही बतलाता हूँ सो आप सब जान लेवें । जो यह प्रत्यक्ष में देखने के योग्य है वही प्रजा का सम्मोहन किया करता है ॥ ५ ॥ जो यह चारों दिशाओं मे शिशुमार पुच्छ में व्यवस्थित है वह राजा उत्तानपाद का मेढीभूत पुत्र दिन मे ध्रुव है ॥ ६ ॥ वह ही स्वयं भ्रमण करता हुआ ग्रहों के साथ चन्द्र और आदित्य दोनों को भ्रमण कराया करता है और उस भ्रमण करते हुए के पीछे नक्षत्र अनुगमन चक्र की भाँति किया करते हैं ॥ ७ ॥

ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते भगणः स्वयम् ।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ॥८
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ।
तेषां योगश्च भेदाश्च कालचारस्तथैव च ॥९

अस्तोदयौ तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ।
विषुवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्त्तते ॥१०
वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः सन्ध्या चैव दिनं तथा ।
शुभाशुभं प्रजानाञ्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्त्तते ॥११

ध्रुवेणाधिकृतांश्चैव सूर्योऽपावृत्य तिष्ठति ।
तदेष दीप्तकिरणः स कालाग्निर्दिवाकरः ।।१२
परिवर्त्त क्रमाद्विप्रा भाभिरालोकयन् दिशः ।
सूर्यः किरणजालेन वायुयुक्तेन सर्वशः ।
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजसत्तमाः ।।१३
आदित्यपीत सूर्याग्नेः सोमं संक्रमते जलम् ।
नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधानं प्रवर्त्तते ।।१४

ध्रुव के मन से यह भगण स्वयं भ्रमण किया करता है और सूर्य- चन्द्र और तारागण नक्षत्रों तथा ग्रहों के साथ सर्पण किया करते हैं ।। ८ ।। वे सब वातानीकपूर्ण बन्धनों से ध्रुव में बँधे हुए हैं। उनका योग भेद और कालचार होता है ।। ९ ।। अस्त, उदय तथा दक्षिणोत्तर अयन में अन्य उत्पात एवं विषुवद् ग्रह वर्ण यह सभी ध्रुव से ही प्रवृत्त हुआ करता है ।। १० ।। वर्षा, घाम, हिम, रात्रि, सन्ध्या तथा दिन और प्रजाओं का शुभ एवं अशुभ यह सभी कुछ ध्रुव से ही प्रवृत्त होता है ।। ११ ।। ध्रुव के द्वारा अधिकृत जो हैं उनको अपावृत करके सूर्य स्थित है इसी से यह दीप्त किरणों वाला—कालाग्नि और दिवाकर होता है ।। १२ ।। हे विप्रो ! हे द्विज सत्तमो ! सूर्य परिवृत्त क्रम से प्रभाओं से दिशाओं में आलोक करता हुआ जो कि सब ओर वायु से युक्त किरणों के जाल के द्वारा आलोक दिया करता है समस्त जगत् के जल का ग्रहण कर लेता है ।। १३ ।। सूर्याग्नि के आदित्य पीत जल को सोम संक्रामित किया करता है। वायुयुक्त नाड़ियों से लोकाधान प्रवृत्त हुआ करता है ।। १४ ।।

यत्सोमात् स्रवते सूर्यस्तदभ्रेष्ववतिष्ठते ।
मेघा वायुनिघातेन विसृजन्ति जलम्भुवि ।।१५
एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते च पुनर्जलम् ।
नानाप्रकारमुदकन्तदेव परिवर्त्तते ।।१६
सन्धारणार्थं भूतानां मायैषा विश्वनिर्मिता ।
अनया मायया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।१७
विश्वेशो लोककृद्देवः सहस्रांशुः प्रजापतिः ।
धाता कृत्स्नस्य लोकस्य प्रभुर्विष्णुर्दिवाकरः ।।१८

सर्वलौकिकमम्भो वै यत्सोमान्नभसः सृ_तम् ।
सोमाधारं जगत्सर्वमेतत्तथ्यं प्रकीर्तितम ।।१६

सूर्यादुष्णं निस्रवते सोमाच्छीतं प्रवर्त्तते ।
शीतोष्णवीर्यौ द्वावेतौ युक्तौ धारयतो जगत् ।।२०

सोमाधारा नदी गङ्गा पवित्रा विमलोदका ।
सोमपुत्रपुरोगाश्च महानद्यो द्विजोत्तमाः ।।२१

सोम से जो स्रवित होता है उसके आगे में सूर्य अवस्थित रहता है। मेघ वायु के निघात प्राप्त कर उससे ही भूमि पर जल का त्याग किया करते हैं ।। १५ ।। इस प्रकार से यह जल उत्क्षिप्त होता है और फिर गिरा करता है। वही जल अनेक प्रकार का परिवर्त्तित हुआ करता है ।।१६।। प्राणियों को सन्धारण करने के लिये यह विश्वनिर्मिता माया है और इस माया से यह सचराचर त्रैलोक्य व्याप्त हो रहा है ।। १७ ।। इस समस्त विश्व का स्वामी, लोकों की रचना को करने वाला, देव, सहस्र किरणों वाला, प्रजापति, समस्त लोक का धाता, प्रभु और विष्णु दिवाकर है ।। १८ ।। समस्त लौकिक जल सोम से आकाश से स्रु_त होता है। यह समस्त जगती तल ही सोम के आधार वाला है। यह बिल्कुल तथ्य ही कहा गया है ।। १६ ।। सूर्य से उष्णता का निस्रवण हुआ करता है। सोम से शीत की प्रवृत्ति होती है। ये दोनों शीतोष्ण वीर्य वाले हैं और दोनों ही युक्त होते हुये इस जगत को धारण किया करते हैं ।।२०।। गङ्गा परम पवित्र नदी और विमल जल वाली सोम धारा है। हे द्विजोत्तमा ! ये समस्त महानदियाँ सोम पुत्र के आगे जाने वाली होती हैं ।। २१ ।।

सर्वभूतशरीरेषु आपो ह्यनुगताश्च याः ।
तेष सन्दह्यमानेषु जङ्गमस्थावरेषु च ।
धूमभूतास्तु ता आपो निष्क्रामन्तीह सर्वशः ।।२२
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमत्राम्भसां स्मृतम् ।
आर्कन्तेजो हि भूतेभ्यो ह्यादत्ते रश्मिभिर्जलम् ।।२३
समुद्राद्वायुसंयोगाद्वहन्त्यापो गभस्तयः ।

यतस्त्वृतुवशात् काले परिवर्त्तो दिवाकरः ।
यच्छत्यपो हि मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लगभस्तिभि ॥२४

अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ।
सर्वभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्ततः ॥२५

ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायव्य स्तनितश्चैव वैद्युतञ्चाग्निसंभवम् ॥२६

मेहनाच्च मिहेर्द्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ति यतस्त्वापस्तदभ्र कवयो विदुः ॥२७

मेघानां पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते ।
आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधाः ।
त्रिधा घनाः समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि सम्भवम् ॥२८

समस्त प्राणियों के शरीरों में जो जल अनुगत होता है उनके जल जाने पर जंगम और स्थावरों में सर्वत्र ही उस जल का दग्धीभाव हुआ करता है फिर वही जल धूमभूत होकर सब ओर निकलता है ॥ २२ ॥ उससे फिर बादलों की रचना होती है ये जल का स्थान ही कहा गया है। सूर्य का तेज ही किरणों के द्वारा भूतों से जल का आदान किया करता है ॥ २३ ॥ समुद्र से वायु के संयोग से किरणें जल का वहन किया करती हैं। क्योंकि फिर ऋतु के वश से काल में दिवाकर परिवर्त्त हो जाता है। शुक्ल किरणों के द्वारा मेघों से शुक्ल जल को देता है ॥ २४ ॥ अभ्रों में रहने वाले जल वायु से समुदीरित होते हुये नीचे गिरा करते हैं ये जल समस्त प्राणियों के हित के लिये ही वायु के द्वारा भूमि पर प्रपतित हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ फिर समस्त प्राणियो के हित सम्पादन करने के लिये छः मास तक यह जल भूमि पर वर्षता रहता है। और यह वायव्य, स्तनित, वैद्युत तथा अग्नि सम्भव होता है ॥ २६ ॥ मेहन करने के कारण से यह मिहि धातु से मेघत्व को प्रकट किया करता है। यह जलों को भ्रंशित नहीं किया करता है इसलिये कवि लोग इसे अभ्र कहा करते हैं ॥२७॥ पुनः मेघों की उत्पत्ति का स्थान तीन प्रकार का बताया गया है। आग्नेय,

ब्रह्मज और पक्षज, ये पृथक् प्रकार वाले होते है। घन तीन प्रकार वाले कहे गये हैं अब उनका सम्भव बतलाया जाता है ।। २८ ।।

आग्नेयास्त्वर्णजाः प्रोक्तास्तेषां तस्मात् प्रवर्त्तनम् ।
शीतदुर्दिनवाता ये स्वगुणास्ते व्यवस्थिताः ।।२६
महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गगामिनः ।
भूत्वा धरणिमभ्येत्य विचरन्ति रमन्ति च ।।३०
जीमूता नाम ते मेघा एतेभ्यो जीवसम्भवाः ।
विद्युद्गुणविहीनाश्च जलधाराविलम्बिनः ।।३१
मूका घना महाकाया प्रवाहस्य वशानुगाः ।
क्रोशमात्राच्च वर्षन्ति क्रोशार्द्धादपि वा पुनः ।।३२
पर्वताग्रनितम्बेषु वर्षन्ति च रमन्ति च ।
बलाकागर्भदाश्चैव बलाकागर्भधारिणः ।।३३
ब्रह्मजानाम ते मेघा ब्रह्मनिःश्वाससम्भवाः ।
ते हि विद्युद्गुणोपेताः स्तनयन्ति स्वनप्रियाः ।।३४
तेषां शब्दप्रणादेन भूमिः स्वाङ्कुरुहोद्गमा ।
राज्ञी राज्ञाभिषिक्तेव पुनर्यौवनमश्नुते ।
तेष्वियं प्रीतिमासक्ता भूतानां जीवितोद्भवा ।।३५

जो आग्नेय मेघ होने हैं वे अव्रर्णज होते हैं और उनका उससे प्रवर्त्तन होता है। शीत, दुर्दिन, बात जो ये उसमें अपने गुण हैं वे व्यवस्थित होते हैं ।। २६ ।। महिष, वराह और मत्त मातङ्गगामी होकर धरणी में आकर विचरण किया करते हैं तथा रमण किया करते हैं ।। ३० ।। जीभूत नाम वाले वे मेघ इनसे ही जीव सम्भूत होते हैं। ये विद्युद्गण से रहित और जल धारा के विलम्बी होते हैं ।। ३१ ।। मूक अर्थात् गर्जन न करने वाले, घन अर्थात् अत्यधिक गहरे, महान काया अर्थात् आकार वाले और प्रवाह के वश में अनुगमन करने वाले ये एक कोश मात्र से अथवा आधे कोश से भी वर्षा किया करते हैं ।। ३२ ।। ये मेघ पर्वताग्र निबन्धों में वर्षते हैं और रमण किया करते हैं। वलाकाओं के गर्भ के प्रदान करने वाले और बलाकाओं के गर्भधारी हुआ करते

हैं ।। ३३ ।। जो ब्रह्मज मेघ होते हैं वे ब्रह्म के निश्वास से उत्पत्ति वाले हुआ करते हैं । वे विद्युद्गण से युक्त तथा स्वन (शब्द) प्रिय होते हैं और गर्जना किया करते हैं ।। ३४ ।। उनके शब्द प्रमाण से ही भूमि अपने अङ्कुरुहों के उद्गम वाली हो जाती है । राजा के द्वारा अभिषिक्त की हुई रानी के समान ही फिर यौवन की प्राप्ति कर लेती है । उनमें यह भूमि प्रीति को प्राप्त हुई अत्यन्त आसक्त होकर प्राणियों के जीवन को उत्पन्न करने वाली हो जाती है ।। ३५ ।।

जीमूता नाम ते मेघास्तेभ्यो जीवस्य सम्भवः ।
द्वितीयं प्रवहं वायुं मेघास्ते तु समाश्रिताः ।।३६
एते योजनमात्राच्च सार्द्धार्द्धान्निष्कृतादपि ।
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धारासाराः प्रकीर्त्तिताः ।
पुष्करावर्त्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः ।।३७
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना ये पर्वतानां महौजसाम् ।
कामगानां प्रवृद्धानां भूतानां शिवमिच्छता ।।३८
पुष्करा नाम ते मेघाः बृहन्तस्तोय मत्सराः ।
पुष्करावर्त्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ।।३९
नानारूपधराश्चैव महाघोरतराश्च ते ।
कल्पान्तवृष्टेः स्रष्टारः संवर्त्ताग्नेर्नियामकाः ।।४०
वर्षन्त्येते युगान्तेषु तृतीयास्ते प्रकीर्त्तिताः ।
अनेकरूपसंस्थानाः पूरयन्तो महीतलम् ।
वायुं परं वहन्तः स्युराश्रिताः कल्पसाधकाः ।।४१
यान्यस्याण्डकपालस्य प्राकृतस्याभवंस्तदा ।
तस्माद्ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयम्भुवः ।
तान्येवाण्डकपालस्य सर्वे मेघाः प्रकीर्त्तिताः ।।४२

जीमूत नाम वाले वे मेघ होते हैं जिनसे जीवों का जन्म हुआ करता है । वे मेघ द्वितीय प्रवह वायु के समाश्रित हुआ करते हैं । ये सार्द्धार्द्ध निष्कृत योजन मात्र से भी उस प्रकार का उनका वृष्टि सर्ग होता है कि उसे धारासार कहा गया

है। पुष्कर और आवर्त्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ॥ ३७ ॥ स्वेच्छा से गमन करने की इच्छा वाले, प्रवृद्ध प्राणियों की हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से युक्त पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया था ॥ ३८ ॥ पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं वे बहुत बड़े और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से वे पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दिक हुए हैं ॥ ३९ ॥ अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा कल्पान्त वृष्टि के करने वाले एवं संवर्त्ताग्नि के नियामक होते हैं ॥ ४० ॥ ये युग के अन्त में वर्षा किया करते हैं और वे तृतीय कहे गये हैं। अनेक रूप और संस्थान वाले तथा इस महीतल को पूर देने वाले हैं और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक उसी पर आश्रित रहा करते हैं ॥ ४१ ॥ जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय में हुए थे जब चारों मुखों वाला स्वयम्भुव ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। वे ही अण्ड कपाल के सब मेघ प्रकीर्त्तित हुए हैं ॥ ४२ ॥

तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः ।
तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४३
गजानां पर्वतानाञ्च मेघानां भोगिभिः सह ।
कुलमेकं पृथग्भूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ॥४४
पजन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवाः ।
तुषारवृष्टिं वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ॥४५
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः ।
योऽसौ धर्त्ति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम् ।
दिव्यामतिजलां पुण्यां विद्यां स्वर्गपथ स्थिताम् ॥४६
तस्या विष्पन्दजन्तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः ।
शा सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥४७
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे ।
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम् ॥४८
तस्मिन्निपतितं वर्षं यत्तुषारसमुद्भवम् ।

ततस्त दावहो वायुर्हिमशैलात् समुद्वहन् ।
आनयत्यात्मयोगेन सिञ्चमानो महागिरिम् ॥४९

उस सब का भी अयन अविशेष रूप से धूम ही होता है। उनमें परम श्रेष्ठ पर्जन्य होता है और चारों दिग्गज होते हैं ॥ ४३ ॥ गजों का, मेघों का और पर्वतों का भोगियों के साथ पृथक् भूत एक ही कुल होता है और इनकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थल एक जल ही कहा गया है ॥ ४४ ॥ पर्जन्य और दिग्गज हेमन्त में शीत से जन्म ग्रहण करने वाले हैं। ये सब प्रकार के सस्यों की वृद्धि के लिये तुषार वृष्टि किया करते हैं ॥ ४५ ॥ परिवह नाम वाला श्रेष्ठ होता है जिसका अपाश्रय वायु होता है। जो यह भगवान् आकाश में दिखाई देने वाली, दिव्य, अत्यधिक जल से युक्त, पुण्य, विद्या और स्वर्ग के मार्ग में स्थिति करने वाली गङ्गाधारण करते हैं ॥ ४६ ॥ उसके जल को विष्यन्दित करते हुए दिग्गज अपने पृथुकरों के द्वारा सीकर का मुंचन करते हैं वह नीहार कहा जाता है ॥ ४७ ॥ दक्षिण दिशा में जो गिरि है वह हेमकूट कहा जाता है। हिमाचल के पहाड़ के उत्तर और दक्षिण में पुण्ड्र नाम का नगर कहा गया है। वह नगर बहुत ही प्रसिद्ध है ॥ ४८ ॥ उसमें पड़ी हुई जो वर्षा है वह तुषार से समद्भूत है। उससे उसका वहन करने वाला वायु हिमशैल से समुद्वहन करता हुआ आत्मयोग से महतगिरि को सिञ्चन करता हुआ लाता है ॥ ४९ ॥

हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् ।
इहाभ्येति ततः पश्चादपरान्तविवृद्धये ॥५०
मेघाबाप्यायतश्चैव सर्वमेतत् प्रकीर्त्तितम् ।
सूर्य एव तु वृष्टीनां सृष्टा समुपदिश्यते ॥५१
ध्रुवेणा वेष्टितः सूर्यस्ताभ्यां वृष्टिः प्रवर्त्तते ।
ध्रुवेणावेष्टितो वायुर्वृष्टिं सहरते पुनः ॥५२
ग्रहान्निःसृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
वारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण परिवेष्टितम् ॥५३
अतः सूर्यरथस्याथ सन्निवेशं निबोधत ।
संस्थितेनैकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना ॥५४

हिरण्मयेन भगवान् पर्वणा तु महौजसा ।
नष्टवर्त्मान्धकारेण षट्‌प्रकारैकनेमिना ।
चक्रेण भास्वता सूर्यः स्यन्दनेन प्रसर्पति ॥५५
दश योजनसाहस्रो विस्तारायामतः स्मृतः ।
द्विगुणोऽस्य रथोपस्थादीषादण्डप्रमाणतः ॥५६

हिमवान पर्वत का अतिक्रमण करके उससे आगे वृष्टि का शेष भाग यहाँ आता है । इसके पश्चात् अपरान्त की वृद्धि के लिए वह वर्षा हुआ करती है ॥ ५० ॥ मेघ और आप्यायत यह सब कह दिया गया है । वृष्टियों के सृजन करने वाला सूर्य ही उपदिष्ट किया जाता है ॥ ५१ ॥ ध्रुव के द्वारा आवेष्टित सूर्य होता है, उन दोनों से वृष्टि प्रवृत्त हुआ करती है । ध्रुव के द्वारा वायु फिर वृष्टि का संहार किया करता है ॥ ५२ ॥ सूर्य ग्रह से निकलकर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल में वार के अन्त में ध्रुव के द्वारा परिवेष्टित सूर्य में प्रवेश किया करता हैं ॥ ५३ ॥ इससे आगे उसके पश्चात् सूर्य के रथ का सन्निवेश को समझ लो । एक चक्र से संस्थित होने वाले, पाँच आर से, त्रिनाभिसे युक्त तथा महान् ओज वाले हिरणमय पर्व से अन्वित एवं मार्ग के अन्धकार को दूर करने वाले तथा छै प्रकार की एक नेमि वाले भासमान चक्र वाले रथ से भगवान प्रसर्पण किया करते हैं ॥ ५४–५५ ॥ दश हजार योजन वाला विस्तार तथा आयाम कहा गया है जो ईषा दण्ड प्रमाण से इसके रथोपस्थ से दुगुना होता है ॥ ५६ ॥

स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु ।
असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः परमगैर्हयैः ॥५७
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तु यतः शुक्रस्ततः स्थितः ।
वरुणस्यन्दनस्येह लक्षणैः सदृशस्तु सः ।
तेनाऽसौ सर्पतिव्योम्नि भास्वता तु दिवाकरः ॥५८
अथेमानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य तु ।
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथा क्रमम् ॥५९
अहस्तु नाभिः सूर्यस्य एकचक्रः स वै स्मृताः ।
आराः पञ्चर्तवस्तस्त नेमिः षड्ऋतवः स्मृताः ॥६०

रथनीडः स्मृतो ह्यब्दस्त्वयने कूवरावुभौ ।
मुहूर्ता बन्धुरास्तस्य शम्या तस्य कलाः स्मृताः ॥६१
तस्य काष्ठाः स्मृता घोणा ईषादण्डः क्षणांस्तु वै ।
निमेषाश्चानुकर्षोऽस्यईषा चास्य लवाः स्मृताः ॥६२
रात्रिर्वरूथो धर्मोऽस्य ध्वज ऊर्द्ध्वसमुच्छ्रितः ।
युगाक्षकोटी ते यस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ ॥६३

उनका वह रथ अर्थ के वश में रहने वाले ब्रह्मा के द्वारा निर्मित किया गया है जोकि सङ्ग रहित, दिव्य और सुवर्ण का है और पर-गमन करने वाले अश्वों से युक्त भी होता है ॥५७॥ अश्व स्वरूप छन्दों के द्वारा जहाँ शुक्र है वहाँ पर ही स्थित होता है । यहाँ यह वरुण के रथ के लक्षणों के सदृश ही होता है । भास्वत उसके साथ यह व्योम में दिवाकर गमन किया करता है ॥५८॥ इसके उपरान्त सूर्य के रथ के इन प्रत्यङ्गों को सम्वत्सर के अवयवों के द्वारा यथाक्रम कल्पित किया गया है ॥५६॥ अह अर्थात् दिन सूर्य की नाभि है और वह एक चक्र वाला कहा गया है। पाँच ऋतुऐं ही उसके पाँच आर होते हैं और छः ऋतुएें उसकी नेमि बताई गई हैं ॥६०॥ अब्द रथ का नीड़ कहा गया है और दो अयन ही उसके दो कूवर हैं । मुहूर्त उसके बन्धुर है और कला उसकी शम्या है । ऐसा ही बताया गया है ॥६१। काष्ठा उसकी घोणा कही गई है और क्षण ईषादण्ड कहा गया है निमेष इसके अनुकर्ष हैं और लव इसका ईषा बताया गया है ॥६२॥ रात्रि इस रथ का रूप है । धर्म इसका ऊपर को समुच्छ्रित ध्वज है । अर्थ और काम ये दोनों उसके युगाक्ष कोटी कहे गये हैं ॥६३॥

सप्ताश्वरूपाश्छन्दांसि वहन्ते वामतो धुराम् ।
गायत्री चैव त्रिष्टुप्चअनुष्टुव् जगती तथा ॥६४
पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिक् चैव तु सप्तमम् ।
अक्षे चक्रं निबद्धन्तु ध्रुवे त्वक्षः समर्पितः ॥६५
सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षो भ्रमति ध्रुवः ।
अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः ॥६६

एवमर्थ वशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु ।
तथा संयोगभागेन संसिद्धो भास्वरो रथः ।।६७
तेनाऽसौ तरणिर्देवस्तरसा सर्पति दिवि ।
युगाक्षकोटिसम्बद्धौ रश्मी द्वौ स्यन्दनस्य हि ।।६८
ध्रुवेण भ्रमतो रश्मी विचक्रयुगयोस्तु वै ।
भ्रमतो मण्डलानि स्युः खेचरस्य रथस्य तु ।।६९
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु ।
ध्रुवेण संगृहीते वै द्विचक्रश्वेतरज्जुवत् । ७०

सात अश्वों के रूप में रहने वाले छन्द हैं जो वामभाग से धुरा को वहन करते हैं। वे सात छन्द गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती, पंक्ति, बृहती और सातवाँ उष्णिक् है। अक्ष में चक्र निबद्ध है और वह अक्ष ध्रुव में समर्पित होता है ।।६४।।६५।। चक्र के साथ अक्ष भ्रमण करता है और अक्ष के साथ में ध्रुव घूमता है। चक्र के साथ ही ध्रुव से प्रेरित होता हुआ यह अक्ष भ्रमण किया करता है ।।६६।। इस प्रकार से अर्थ के वश से उसके रथ का यह सन्निवेश किया गया है और उस प्रकार से संयोग के भाव से सम्यक्तया सिद्ध उसका भास्वर रथ होता है ।।६७।। उस रथ के द्वारा ही यह सूर्यदेव दिव में वेग के साथ सर्पण किया करते हैं। उसके रथ के युगाक्ष कोटी से सम्बद्ध दो रश्मियाँ होती हैं ।।६८।। विचक्र युगों की दोनों रश्मियाँ ध्रुव के द्वारा भ्रमण किया करती हैं। भ्रमण करने वाले आकाशगामी रथ के मण्डल होते हैं ।।६९।। उस स्यन्दन के दक्षिण युगाक्ष कोटी ध्रुव के द्वारा द्विचक्रेश्वर रज्जु की भाँति संग्रहीत होती हैं ।।७०।।

भ्रमन्तमनुगच्छेतां ध्रुवं रश्मी तु तावुभौ ।
युगाक्ष कोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु ।।७१
कीलासक्तो यथा रज्जुर्भ्रमते सर्वतो दिशम् ।
ह्रसतस्तस्य रश्मी तौ मण्डलेषूत्तरायणे ।।७२
वर्द्धेते दक्षिणे चैव भ्रमतो मण्डलानि तु ।
ध्रुवेण संगृहीतो तु रश्मी वै नयतो रविम् ।।७३

आकृष्येते यदा तौ वै ध्रुवेण समधिष्ठितौ ।
तदा सोऽभ्यन्तरं सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥७४
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन् ।
ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु ॥७५
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।
उद्वेष्टयन् स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ॥७६

भ्रमण करने वाले ध्रुव के पीछे वे दोनों रश्मियाँ अनुगमन किया करती हैं। उस स्यन्दन (रथ) की युगाक्ष कोटी वे वातोर्मी होती हैं ॥७१॥ जिस प्रकार से कील में आसक्त रज्जु सब दिशाओं में भ्रमण किया करती है रास को प्राप्त होने वाली उसकी वे दोनों रश्मियाँ उत्तरायण के मण्डलों में रहती है ॥७२॥ दक्षिण में मण्डलों का भ्रमण करने वाले उसकी ध्रुव के द्वारा संग्रहीत वे रश्मियाँ रवि को ले जाती हैं ॥७३॥ जिस समय में ध्रुव के द्वारा समधिष्ठित वे दोनों आकृष्यमाण होती हैं उस समय में सूर्य मण्डलों के अन्दर भ्रमण किया करते हैं। वह वेग के साथ उद्वेष्टित करते हुए मण्डलों को चले जाते हैं ॥७६॥

॥ प्रकर्ण ३५—ध्रुवचर्या

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥१
एते वसन्ति वै सूर्ये द्वौ, द्वौ मासौ क्रमेण तु ।
धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ॥२
उरगो वासुकिश्चैव सङ्कीर्णारश्च तावुभौ ।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ ॥३
क्रतुस्थलप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थली ।
ग्रामणी रथकृच्छ्रश्च तपोर्यश्चैव तावुभौ ॥४
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ ।
मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ॥५
वासन्तौ ग्रैष्मिकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह ।

ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च तक्षको रम्भ एव च ॥६
मेनका सहजन्या च गन्धर्वौ च हहा हुहः ।
रथःस्वनश्च ग्रामण्यो रथचित्रश्च तावुभौ ॥७
पौरुषेयो धवश्चैव यातुधानावुदाहृतौ ।
एतेवसन्ति वै सूर्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः ॥८

श्रीसूतजी ने कहा—वह सूर्य का रथ देव आदित्य और ऋषियों के द्वारा अधिष्ठित होता है । इसी प्रकार से गन्धर्व, अप्सराएँ, ग्रामणी, सर्प और राक्षसों के द्वारा भी अधिष्ठित रहा करता है ॥१॥ ये सब सूर्य में दो, दो, मासतक निवास किया करते हैं और क्रम से इनका वहाँ वास होता । भास्कर में जिसका निवास है उनका परिगणन किया जाता है, धाता, अर्यमा, पुलस्त्य, पुलह, प्रजापति, उरग वासुकि और सङ्कीर्णार वे दोनों गायन करने वाले श्रेष्ठ तुम्बरु और नारद गन्धर्व, क्रतुस्थली अप्सरा, पुञ्जिक स्थली, ग्रामणी, रथकृच्छ्र और तपोर्य वे दोनों रक्ष, हेति, प्रहेति दो यातुधान और मधु माधव के मासों में यह गण भास्कर में वास करते हैं ॥२॥३॥४॥५॥ वासन्त और ग्रैष्मिक दो–दो, मास हैं उनमें मित्र, वरुण, अत्रि और वसिष्ठ ऋषि, तक्षक, रम्भ-मेनका, और सहाजन्या तथा हहा, हुहु दो गन्धर्व, रथस्वन, , ग्रामण्य, और रथचित्र वे दोनों, पौरुषेय और धव दो यातुधान ये शुचि शुक्रमासों में सूर्य में निवास करते हैं ॥६॥७॥८॥

ततः सूर्ये पुनस्त्वन्या निवसन्तीह देवताः ।
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ॥६
एलापर्णस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च ताबुभो ।
विश्वावसूग्रसेनौ च प्रातःश्चैवारुणश्च ह ॥१०
प्रम्लोचेति च विख्याता निम्लोचेति च ते उभे ।
यातुधानस्तथा सर्पो व्याघ्रः श्वेतश्च तावुभो ।
नभोनभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे ॥११
शरद्दतौ पुनः शुभ्रा वसन्ति मुनि देवताः ।
पर्जन्यश्चाथ पूषा च भरद्वाजः सगौतम. ॥१२

विश्वावसुश्च गन्धर्वास्तथ व सुरिभिश्च यः ।
विश्वाची च घृताची च उभे ते शुभलक्षणे ॥१३
नाग ऐरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः ।
सेनाजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१४
आपो वातश्च तावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ ।
वसन्त्येते तु वै सूर्ये भासयोश्च इषोर्जयोः ॥१५

इसके अनन्तर फिर यहाँ सूर्य में अन्य देवता निवास करते हैं जिनमें इन्द्र, विवस्वान्, अङ्गिरा, भृगु, एलापर्ण, सर्प और शङ्खपाल वे दोनों, विश्वा-वसु-उग्रसेन, प्रातः अरुण-विख्यात प्रम्लोचा और निम्लोचा वे दोनों, यातुधान तथा सर्प, व्याघ्र और श्वेत वे दोनों, यह गण नभ और नभस्य इन दो मासों में भास्कर में वास करते हैं ॥९॥१०॥११॥ शरद ऋतु में फिर शुभ्र मुनि और देवता वास किया करते हैं। पर्जन्य और पूषा, गौतम के साथ भरद्वाज, विश्वावसु, गन्धर्व और इसी भाँति सुरभि, विश्वाची और घृताची ये दोनों शुभ लक्षणों से से युक्त, नाग और ऐरावत, विश्रुत और धनज्जय-सेनजित और सुषेण-सेनानी और ग्रामणी वे दोनों- जल और वात वे दोनों यातुधान कहे गये हैं ये सब निश्चय ही इष और ऊर्ज मासों में सूर्य में निवास करते हैं ॥१२॥१२॥ ॥१४॥१५॥

हैमन्तिकको तु द्वौ मासौ वसन्ति तु दिवाकरे ।
अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च ऋतुश्च ह ॥१६
भुजङ्गश्च महापद्मः सपः कर्कोटकस्तथा ।
चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ ॥१७
उर्वशी विप्रचित्तिश्च तथैवाप्सरसौ शुभे।
ताक्ष्यैश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१८
विद्युत्स्फूर्ज्जश्च तावुग्रौ यातुधानावुदाहृतौ ।
सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे ॥१९
ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै ।
त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च ॥२०

काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वरावुभौ ।
गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथैव च ।।२१
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा ।
ऋतुजित्सजिश्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ ।।२२
ब्रह्मोपेतस्यथा दक्षो यज्ञोपेतश्च स स्मृतः ।
एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ मासौ तु क्रमेण तु ।।२३

हैमन्तिक अर्थात् हेमन्त ऋतु के दो मासों में तो निम्न लोग अर्थात् अधोगणित लोग सूर्य में वास करते हैं—अंश और भग ये दोनों-कश्यय और ऋतु-भुजङ्ग-महापद्म सर्प-तथा कर्कोटक गन्धर्व और ऊर्णाय वे दोनों, उर्वशी और विप्रचिति ये दोनों शुभ अप्सराएं-तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि दो सेनानी और ग्रामणी- विद्युत और स्फूर्ज वे दोनों उग्र यातुधान कहे गये हैं। सह और सहस्य मास में ये सब दिवाकर में बसते हैं ।।१६।।१७।।१८।।१९।। इसी प्रकार से शिशिर ऋतु के दो मासों में त्वष्टा-विष्णु-जमदग्नि-विश्वामित्र-कम्बल और अश्वतर ये दोनों काद्रवेय नाग- गन्धर्व- धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा-अप्सरा तिलोत्तमा—देवी रम्भा मनोरमा-ऋतचित् लोक में प्रसिद्ध ग्रामणी-ब्रह्मोपेत तथादक्ष और जो यज्ञोपेत कहा गया है। इतने ये देवगण दो मास तक सूर्य क्रम से निवास किया करते है ।।२०।।२१।।२२।।२३।।

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः ।
सूर्यमाप्यायन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ।।२४
प्रथितैस्तैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ।।२५
ग्रामणीयक्षभूतास्तु कुर्वते भीमसंग्रहम् ।
सर्पा वहन्ति सूर्यञ्च यातुधानानुयान्ति च ।
वालखिल्या नयन्त्यस्तं परिचार्योदयाद्रविम् ।।२६
एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः ।
यथायोगं यथासत्यं यथाधर्मं यथाबलम् ।।२७

यथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषां सिद्धस्तु तेजसा ।
इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ।।२८
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसाङ्गणाः ।
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च भूरिशः ।।२९
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ।
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः ।।३०

ये सब द्वादश और सात गण स्थान के अभिमानी होते हैं । ये सूर्य को भी तेज से उत्तम तेज द्वारा आप्यायित किया करते हैं । २४ ।। वे मुनिगण प्रथित वचनों के द्वारा रवि का स्तवन किया करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सरायें गीतों एवं नृत्यों के द्वारा सूर्य की उपासना किया करते हैं ।। २५ ।। ग्रामणी और यक्ष, भूत भीम संग्रह किया करते हैं । सर्प सूर्य का वहन करते हैं और यातुधान अनुयान किया करते हैं । वालाखिल्यादि उदय से परिचर्या करके उस रवि को अस्ताचल में ले जाया करते हैं ।। २६ ।। इन देवों के यथा वीर्य, यथातप, यथायोग तथा सत्य के अनुसार धर्म और बल के अनुसार जैसे यह सूर्य तपता है उनके नेत्र से सिद्ध होता है । इतने ये सब दो-दो मास पर्यन्त दिवाकर में यहाँ निवास किया करते हैं ।। २७-२८ ।। ऋषि लोग, गन्धर्व देव, पन्नग और अप्सराओं के गण, ग्रामणी लोग तथा यक्ष, यातुधान बहुत सारे । ये तपते हैं, वर्षते हैं, दीप्त होते हैं, तान करते हैं और सृजन करते हैं एवं प्राणियों के जो यहाँ पर अशुभ कर्म होते हैं उनका व्यपोह किया करते हैं इस प्रकार के कहे गये हैं । २९-३० ।।

मानवानां शुभं ह्येते हरन्ति दुरितात्मनाम् ।
दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित् ।।३१
विमानेऽवस्थिता दिव्ये कामगा वातरंहसः ।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगाः ।।३२
वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः ।
गोपायन्ति तु भूतानि सर्वानीहामनुक्षयात् ।।३३
स्थानाभिमानिनामेतत् स्थानं मन्वन्तरेषु वै ।

अतीतानागतानां वै वर्त्तन्ते साम्प्रतन्तु ये ॥३४
एवं वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्द्दिशम् ।
चतुर्द्दशसु सर्गेषु गणा मन्वन्तरेषु च ॥३५
ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमाना घर्मं हिमञ्च वर्षञ्च दिनं निशाञ्च ।
कालेन गच्छत्यृतुवशात् परिवृत्तरश्मिर्देवान् पितॄंश्च मनुजांश्च तर्पयन् वै॥३६
प्रीणाति देवानमृतेन सूर्यः सोमं सुषुम्नेन विवर्द्धयित्वा ।
शुक्ले तु पूर्णं दिवसक्रमेण तां कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति ॥३७

ये मानवों के शुभ कर्मों का तथा पापात्माओं के अच्छे कर्मों का हरण किया करते हैं । कहीं-कहीं पर प्रचारों के दुरित का व्यपोह किया करते हैं ॥ ३१ ॥ दिव्य विमान में अवस्थित काम के अनुसार गमन करने वाले वात रंहस ये सूर्य के साथ ही दिन में अनुगमन करने वाले होते हुए भ्रमण किया करते हैं ॥ ३२ ॥ वर्षण करते हुए, तपते हुए और प्रजा को आह्लादित करते हुए यहाँ पर अनुक्षय से समस्त प्राणियों की रक्षा किया करते हैं ॥ ३३ ॥ स्थानाभिमानियों के मन्वन्तरों में यह स्थान है अतीत और अनागतों तथा जो साम्प्रत हैं वर्त्तित होते हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार से वे सप्तक चारों दिशाओं में सूर्य में वास किया करते हैं जो चौदह सर्गों में और मन्वन्तरों में गण बसते हैं ॥ ३५ ॥ ग्रीष्म काल में, हिम में और वर्षाओं में घाम, हिम तथा वर्षा का मुञ्चन करते हुए एवं दिन और रात्रि को बनाते हुए समय से ऋतु के कारण परिवृत्त रश्मियों वाला देव पितर और मनुष्यों को तृप्त करते हुए जाते हैं ॥ ३६ ॥ सूर्य देवताओं को अमृत के द्वारा प्रसन्न करता है और चन्द्रमा को सुषुम्ना के द्वारा विशेष रूप से वर्धन करके प्रसन्न किया करता है । शुक्लपक्ष में तो पूर्ण और दिनों के क्रम से कृष्णपक्ष में उसको देवता लोग पान करते हैं ॥ ३७ ॥

पीतन्तु सोमं द्विकालावशिष्टं कृष्णक्षये रश्मिभिस्तां क्षरन्तम् ।
सुधामृतं तत्पितरः पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव कव्यम् ॥३८
सूर्येण गोभिस्तु समुद्धृताभिरद्भिः पुनश्चैव समुद्धृताभिः ।
वृष्टचातिवृद्धाभिरथौषधीभिर्मर्त्याः क्षुधन्त्वन्नपानैर्जयन्ति ॥३९

अमृतेन तृप्तिस्त्वर्द्धमासं सुराणां मासार्द्धं तृप्तिः स्वधया पितृणाम् ।
अन्नेन शश्वत्तु दधाति मर्त्यान् सूर्यः स्वयं तच्च बिभर्ति गोभिः ।।४०
अयं हरिस्तैर्हरिभिस्तुरङ्गमैरयन् हि चापो हरतीति रश्मिभिः ।
विसर्गकाले विसृजंश्च ताः पुनर्बिभर्ति शश्वत् सविता चराचरम् ।।४१
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्गमैः पिबत्यथापो हरिभिः सहस्रधा ।
ततः प्रमुञ्चत्यपि तास्त्वसौ हरिः स मुह्यमानो हरिभिस्तुरङ्गमैः ।।४२
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं रथेन तु ।
भद्रैस्तैरक्षतैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिवि क्षये ।।४३
अहोरात्राद्रथेनासौ एकचक्रेण तु भ्रमन् ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तां सप्तभिः सप्तभिर्हयैः ।।४४

द्विकाला वशिष्ठ पीत सोम को कृष्णक्षय में रश्मियों के द्वारा क्षरण करते हुए उस सुधामृत को पितर पान किया करते हैं । देव और सौम्य उसी प्रकार से कव्य का पान किया करते हैं ।। ३८ ।। सूर्य की किरणों से जो कि समुद्भूत हैं और फिर समुद्धृत जलों से वृष्टि से अत्यन्त बढ़ी हुई ओषधियों से मनुष्य क्षुधा को अन्न पानों से जीता करते हैं ।। ३९ ।। अमृत से देवों की तृप्ति आधे मास तक होती है और सुधा से पितरों की मासार्द्ध तृप्ति हुआ करती है । मनुष्यों को अन्न से सर्वदा तृप्ति होती है अतः सूर्य स्वयं किरणों द्वारा उसका भरण किया करता है ।। ४० ।। यह हरि है जो उन हरि तुरङ्गमों के द्वारा जाता हुआ रश्मियों से जलों का हरण किया करता है और जब उनके त्याग का समय आता है तो पुनः उनका विसर्जन करता हुआ सविता निरन्तर चराचर का भरण किया करता है ।। ४१ ।। हरि हरित् तुरङ्गमों से ह्रियमाण होते हैं और सहस्रों प्रकार से हरियों के द्वारा जल का पान किया करते हैं । फिर इसके अनन्तर उनको यह हरि त्यागते हैं वह हरि हरि तुरङ्गमों से मुह्यमान होते हैं ।। ४२ ।। इस तरह से सूर्य एक चक्र (पहिया) वाले रथ के द्वारा उन भद्र अक्षत अश्वों से दिव में क्षय में सर्पण किया करता है अर्थात् दौड़ लगाता रहता है ।। ४३ ।। यह इस रथ से जो कि एक ही चक्र वाला है एक अहोरात्र में सात-सात अश्वों से सात द्वीप वाले समुद्रों के अन्त तक भ्रमण करता है ।। ४४ ।।

छन्दोभिरश्वरूपैस्तैर्यतश्चक्रन्ततः स्थितैः ।
कामरूपैः सकृद्युक्तै रमितैस्तैर्मनोजवैः ॥४५
हरितैरव्ययैः पिङ्गै रीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः ।
अशीति मण्डलशत भ्रमन्त्यब्देन ते हयाः ॥४६
बाह्यमभ्यन्तरञ्चैव मण्डलं दिवसक्रमात् ।
कल्पादौ सम्प्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसम्प्लवात् ।
आवृता वालखिल्यैस्ते भ्रमन्ते रात्र्यहानि तु ॥४७
प्रथितैर्वचोभिरग्र्यैः स्तूयमानो महर्षिभिः ।
सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वैरप्सरोगणैः ।
पतङ्गः पतगैरश्वैर्भ्रममाणो दिवस्पतिः ॥४८
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी ।
ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मीनां सूर्यवत् स्मृते ॥४९
त्रिचक्रोभयपार्श्वस्थो विज्ञेयः शशिनो रथः ।
अपां गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वः ससारथिः ।
शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ॥५०
दशभिस्तु कृशैर्दिव्यैरसंगैस्तैर्मनोजवैः ।
सकृद्युक्ते रथे तस्मिन् वहन्ते चायुगक्षयात् ॥५१

उन छन्द रूप अश्वों से जहाँ चक्र है वहाँ ही स्थित और काम रूप वाले, एकबार युक्त किये हुए, अमित मनोवेगों से युक्त, हरित, अव्यय, पिङ्ग, ब्रह्मवादी ईश्वर के अश्व हैं जो अब्द में अस्सी मण्डलों का भ्रमण किया करते हैं ॥ ४५-४६ ॥ दिनों के क्रम से बाह्य और अभ्यन्तर मण्डल को कल्प के आदि में सम्प्रतयुक्त वे भूत संप्लव तक वहन किया करते हैं । वालखिल्यों से आवृत हुए वे रात्रि और दिन वहन किया करते हैं ॥ ४७ ॥ परम प्रथित एवं उत्तम वचनों से महर्षियों के द्वारा स्तूयमान तथा गन्धर्व और अप्सराओं के द्वारा गीत एवं नृत्यों से सेव्यमान होते हैं । दिवस्पति पतङ्ग पतग अश्वों के द्वारा भ्रममाण होते हुए रहते हैं ॥ ४८ ॥ तथा चन्द्रमा वीथी के आश्रय स्वरूप नक्षत्रों का चरण किया करता है । सूर्य की भाँति इसकी किरणों का ह्रास

और वृद्धि उसी प्रकार से कही गई है ।। ४९ ।। तीन चक्र वाला उभय पार्श्वों में स्थित चन्द्रमा का रथ समझना चाहिए जो जल के गर्भ से अश्वों तथा सारथि के सहित उत्पन्न हुआ है । एक सौ अर वाला, तीन चक्रों से युक्त और शुक्ल अश्वों के सहित होता है ।। ५० ।। सङ्ग से रहित, कृश, दिव्य और मन के तुल्य वेग वाले दश अश्वों से एकबार उस रथ में युक्त करके युग के क्षय पर्यन्त उसका वहन होता है ।। ५१ ।।

संगृहीते रथे तस्मिन् श्वेतश्चक्षुःश्रवास्तु वै ।
अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शंखवर्च्चसम् ।।५२
ययुश्च त्रिमनाश्चैव वृषो राजीवलो हयः ।
अश्वो वामस्तुरण्यश्च हंसो व्योमी मृगस्तथा ।।५३
इत्येते नामभिः सर्वे दश चन्द्रमसो हयाः ।
एते चन्द्रमसं देवं वहन्ति दिवसक्षयात् ।।५४
देवैः परिवृतः सौम्यः पितृभिश्चैव गच्छति ।
सोमस्य शुक्ल पक्षादौ भास्करे पुरतः स्थिते ।
आपूर्यते पुरस्यान्तः सततं दिवसक्रमात् ।।५५
देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यदा ।
पीतं पञ्चदशाहन्तु रश्मिनैकेन भास्करः ।।५६
आपूरयन् सुषुम्नेन भागं भागमहःक्रमात् ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ला वर्द्धन्ति वै कलाः ।।५७
तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ल आप्याययन्ति च ।
इत्येवं सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ।।५८

उस संग्रहीत रथ में श्वेत चक्षुश्रवा एक वर्ण वाले अश्व उस शङ्ख वर्चस रथ का वहन किया करते हैं ।। ५२ ।। उनके नामों का यहाँ परिगणन किया जाता है । ययु, त्रिमना, वृष, राजीवल, हय, अश्व वाम, तुरण्य, हंस, व्योमी, मृग ये दश इन नामों वाले चन्द्रमा के अश्व हैं । ये चन्द्र देव दिवस के क्षय से वहन किया करते हैं ।। ५३ ।। देवों तथा पितरों के द्वारा परिवृत एवं सौम्य चन्द्र गमन करते हैं । शुक्लपक्ष के आदि में भास्कर के आगे स्थित होने पर

चन्द्रमा के पुर का अन्तर्भाग दिवस के क्रम से सतत आपूरित होता है ॥ ५५ ॥ क्षय में देवों के द्वारा पीत सोम को नित्य ही आप्यायित करता है । पन्द्रह दिन तक वह पीत होता है और भास्कर अपनी एक ही रश्मि से अहः क्रम के अनुसार भाग-भाग को आपूरित सुषुम्ना से करते हुए रहते हैं और सुषुम्ना से आप्यायमान चन्द्र की शुक्ल कलाऐं बढ़ा करती हैं ॥ ५६-५७ ॥ उससे कृष्ण-पक्ष में ह्रसित होती हैं और शुक्ल में आप्यायित हुआ करती है । इस प्रकार से सूर्य के वीर्य से चन्द्रमा का शरीर आप्यायित हुआ करता है ॥ ५८ ॥

पौर्णमास्यां स दृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ।
एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षे दिनक्रमात् ॥५९
ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी ।
अपां सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च ।
पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधु सौम्य सुधामयम् ॥६०
सम्भृतश्चार्द्धमासेन अमृतं सूर्यतेजसा ।
भक्षार्थममृतं सौम्यं पौर्णमास्यामुपासते ॥६१
एकरात्रं सुरैः सर्वैः पितृभिश्च महर्षिभिः ।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च ॥६२
प्रक्षीयते पुरस्यान्तः पोयमानाः कलाः क्रमात् ।
क्षीयन्ते तस्मात् कृष्णे याः शुक्ले ह्याप्याययन्तिताः ॥६३
एवं दिनक्रमातीते विबुधास्तु निशाकरम् ।
पीत्वाऽर्द्धमासङ्गच्छन्ति अमावास्यां सुरोत्तमाः ।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्यां निशाकरम् ॥६४
ततः पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके ।
अपराह्णे पितृगणैर्जघन्यः पर्युपास्यते ॥६५

पौर्णमासी तिथि में सम्पूर्ण मण्डल शुक्ल दिखलाई देता है । इस प्रकार से सोम (चन्द्र) शुक्लपक्ष में दिनों के क्रम से आप्यायित हुआ करता है ॥ ५९ ॥ फिर इसके उपरान्त में द्वितीया तिथि से चतुर्दशी तक जलों के सार-पूर्ण इन्दु का जो कि रस मात्रात्मक ही होता है, उसके अम्बुमय मधु सौम्य

और अमृतमय को देवता लोग पान किया करते हैं ॥ ६० ॥ सूर्य के तेज से अर्ध मास में वह अमृत पुनः सम्भृत हो जाता है। सौम्य जो अमृत है उसका भक्षण करने के लिये पूर्णमासी तिथि में उपासना की जाती है ॥ ६१ ॥ भास्कर के अभिमुख में स्थित चन्द्रमा की कृष्णपक्ष के आदि में एक रात्रि में देवता, समस्त पिता और महर्षियों के द्वारा पीई गयीं कलाऐं क्रम से पुर के अन्दर क्षीण हो जाया करती हैं। जो शुक्लपक्ष में आप्यायित होती हैं वे सब कृष्णपक्ष में क्षीण हो जाया करती हैं ॥ ६२ ॥ इस प्रकार से दिनों के क्रम के अतीत होने पर विबुध लोग निशाकर का पान करके अमावस्या तिथि में सुरोत्तम अर्द्ध का आसङ्ग मन किया करते हैं। अमावस्या में पितृगण निशा करके उपस्थान को करते हैं ।। ६३-६४ ॥ इसके अनन्तर कलात्मक पन्द्रहवें भाग के कुछ शेष रहने पर अपराह्ण में जघन्य वह पितृगणों के द्वारा पर्युपासित किया जाता है ॥ ६५ ॥

पिबन्ति द्विकलाकालं शिष्टा तस्य तु या कला।
नि सृत तदमावास्याङ्गभस्तिभ्यः स्वधामृतम्।
तां स्वधां मासतृप्त्यै तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम् ॥६६
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्तास्तथैव च।
कव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्व एव ते ॥६७
संवत्सरास्तु वै कव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः।
सौम्यास्तु ऋतवो ज्ञेया मासा बर्हिषदः स्मृताः।
अग्निष्वात्तार्तवश्चैव पितृसर्गा हि वै द्विजाः ॥६८
पितृभिः पीयमानस्य पंचदश्यां कला तु वै।
यावन्न क्षीयते तस्य भागः पंचदशस्तु सः ॥६९
अमावस्यान्तदा तस्य अन्तमापूर्यते परम्।
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ ॥७०
एवं सूर्यनिमित्तैषा क्षयवृद्धिर्निशाकरे।
ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोश्च रथं पुनः ॥७१
तोयतेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः।

युक्तो हयैः पिशङ्गैस्तु अष्टाभिर्वातरंहसैः ॥७२

उसकी जो कला शिष्ट होती है उसे दो कला के काल तक पान किया करते हैं। अमावस्या में किरणों के द्वारा जो स्वधामृत निःसृत होता है उस स्वधामृत को वे एक मास की तृप्ति के लिये पान कर जाते हैं ॥ ६६ ॥ सौम्य, बर्हिषद, अग्निष्वात्त और कव्य जो ये कहे गये हैं वे सभी पितर होते हैं ॥६७॥ सम्वत्सर कव्य होते हैं जो द्विजों ने पाँच अब्द बतलाये हैं। सौम्य ऋतुऐं जाननी चाहिए और मास बर्हिषद कहे गये हैं। अग्निष्वात्त आर्तव होते हैं। हे द्विजो ! ये सब पितृगण का सर्ग होता है ॥ ६८ ॥ पितृगणों के द्वारा पीयमान चन्द्र की पञ्चदशी (अमावस्या) में जब तक पंचदश भाग क्षीण नहीं होता है तब तक अमावस्या में उसके अन्दर पर आपूरित हो जाता है। शशि के षोडशी में पक्ष के आदि में वृद्धि और क्षय कहे गये हैं ॥ ७० ॥ इस प्रकार से निशाकर में जो भी क्षय एवं वृद्धि होती है सूर्य के निमित्त वाली ही हुआ करती है। ताराग्रहों को और स्वर्भानु के रथ को फिर बतलाया जायगा ॥ ७१ ॥ सोम पुत्र का रथ तोय (जल) और तेज से परिपूर्ण होता है और शुभ्र वर्ण वाला होता है। और वह रथ आठ वायु के तुल्य वेग वाले एवं पिशङ्ग अश्वों से युक्त होता है ॥ ७२ ॥

सवरूथः सानुकर्षः सूतो दिव्यो रथे महान् ।
सोपासङ्गपताकस्तु सध्वजो मेघसन्निभः ॥७३
भार्गवस्य रथः श्रीमांस्तेजसा सूर्यसन्निभः ।
पृथिवीसम्भवैर्युक्तो नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥७४
श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः ।
कृष्णश्च हरितश्चैव पृषतः पृष्णिरेव च ।
दशभिस्तैर्महाभागैरकृशैर्वातवेगितैः ॥७५
अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान् सोमस्यापि रथोऽभवत् ।
असंगैर्लोहितैरश्वैः सर्वगैरग्निसम्भवैः ।
सर्पतोऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुचक्रग ॥७६
ततस्त्वाङ्गिरसो विद्वान् देवाचार्यो बृहस्पतिः ।

शोणैरश्वैः कांचनेन स्यन्दनेन प्रसर्पति ।।७७
युक्तस्तु वाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातसम्मितैः ।
नक्षत्रेऽब्दन्निवसति सवेगस्तेन गच्छति ।।७८
ततः शनैश्चरोप्यश्वैः शबलैर्व्योमसम्भवैः ।
कार्ष्णायसं समारुह्य स्यन्दनं याति वै शनैः ।।७९

उस रथ में वरुथ के सहित, अनुकर्ष से युक्त महान्, दिव्य सूत होता है। और वह उपासङ्ग एवं पताका से अन्वित एव ध्वजा के सहित मेघ के तुल्य होता है ।। ७३ ।। भार्गव का रथ तेज से सूर्य के सदृश होता है। वह पृथ्वी में जन्म लेने वाले नाना प्रकार के वर्ण वाले उत्तम अश्वों से युक्त होता है ।। ७४ ।। अब उन अश्वों के नामों की यहाँ परिगणना की जाती है। श्वेत, पिशङ्ग, सारङ्ग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित पृशत और पृष्णि ये दश अकृश वायु के वेग वाले महाभाग अश्वों से युक्त रथ होता है ।। ७५ ।। आठ अश्वों वाला सुवर्ण का बना हुआ शोभा से युक्त सोम का रथ था। सर्वत्र जाने वाले, सङ्ग से रहित, अग्नि से समुत्पन्न लोहित अश्वों के द्वारा ऋजु और वक्र चक्र का अनुग यह कुमार सर्पण किया करता है।। ७६ ।। इसके आगे आङ्गिरस, देवों के आचार्य परम विद्वान बृहस्पति शोण अश्वों से युक्त सुवर्णमय रथ से प्रसर्पण करते हैं ।। ७७ ।। दिव्य और वायु के सदृश आठ अश्वों से युक्त होता हुआ नक्षत्र पर एक अब्द तक निवास किया करता है फिर वेग के साथ उससे हट जाता है ।।७८।। फिर इसके अनन्तर शनैश्चर व्योम से समुत्पन्न शवल अर्थात् रङ्ग-बिरंगे अश्वों से युक्त काले लौह से निर्मित रथ में चढ़कर धीरे से जाया करता है ।। ७९ ।।

स्वर्भानोस्तु तथवाश्वाः कृष्णा ह्यष्टौ मनोजवाः ।
रथन्तमोमयन्तस्य सकृद्युक्ता वहन्त्युत ।।८०
आदित्यान्निःसृतो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ।।८१
अथ केतुरथस्याश्वा अष्टाष्टौ वातरंहसः ।
पलालधूमसङ्काशाः शबला रासभारुणाः ।।८२

एते वाहा ग्रहाणां वै मया प्रोक्ता रथैः सह ।
सर्वे ध्रुवनिबद्धास्ते प्रबद्धा वातरश्मिभिः ॥८३

एते वै भ्राम्यमाणास्तु यथा योगं भ्रमन्ति वै ।
वायव्याभिरदृश्याभिः प्रबद्धा वातरश्मिभिः ॥८४
परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति ध्रुवन्ते ज्योतिषां गणाः ॥८५

यथा नद्युदके नौस्तु सलिलेन सहोह्यते ।
तथा देवालया ह्यते उह्यन्ते वातरश्मिभिः ।
तस्मात्सर्वेण दृश्यन्ते व्योम्नि देवगणास्तु ते ॥८६

स्वर्भानु के अश्व भी उसी प्रकार के होते हैं । वे काले और आठ होते हैं जिनका मन के तुल्य वेग होता है । उसके अन्धकारमय रथ में एक बार युक्त होते हुए उसका वहन किया करते हैं ॥ ८० ॥ आदित्य से निकला हुआ राहु पर्वों में चन्द्रमा को चला जाता है । पुनः सौर पर्वों में सोम से निकलकर आदित्य में जाया करता है ॥ ८१ ॥ इसके अनन्तर केतु के रथ के भी आठ अश्व होते हैं जिनका वेग वायु के तुल्य हुआ करता है । इनका रंग पलाल के धूँआँ के समान होता है, शबल और रासभारुण होता है ॥ ८२ ॥ ये ग्रहों के वाहन मैंने रथों के सहित बतला दिए हैं । ये सब ध्रुव से निबद्ध और वात रश्मियों से प्रबद्ध होते हैं ॥ ८३ ॥ ये भ्राम्यामाण होते हुए योग के अनुसार ही भ्रमण किया करते हैं । अदृश्य वायव्याओं से वातरश्मियों प्रबद्ध हैं ॥ ८४ ॥ उससे बद्ध चन्द्र, सूर्य और ग्रह दिव में परिभ्रमण किया करते हैं । भ्रमण करते हुए ध्रुव के पीछे ज्योतियों के गण अनुगमन किया करते हैं ॥ ८५ ॥ जिस प्रकार से नदी के जल में नौका सलिल के साथ ही उह्यमान होती है उसी प्रकार से ये देवालय भी वातरश्मियों से उह्यमान हुआ करते हैं । इसी से वे देवगण आकाश में सबके द्वारा दिखलाई दिया करते हैं ॥ ८६ ॥

यावन्त्यश्चैव तारास्तु तावन्तो वातरश्मयः ।
सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति तम् ॥८७

तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद्भ्रामयते यथा ।
तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः ।।८८
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु ।
तस्माज्ज्योतींषि वहते प्रवहस्तेन स स्मृतः ।।८९
एवं ध्रुवनिबद्धोऽसौ सर्पते ज्योतिषां गणः ।
सैष तारामयो ज्ञेयः शिशुमारो ध्रुवो दिवि ।
यदह्ना कुरुते पापं दृष्ट्वा तं निशि मुच्यते ।।९०
यावत्यश्चैव तारास्ताः शिशुमाराश्रिता दिवि ।
तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवन्त्यभ्यधिकानि तु ।।९१
शाश्वतः शिशुमारोऽसौ विज्ञेयः प्रविभागशः ।
उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयो ह्युत्तरो हनुः ।।९२
यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्द्धानमाश्रितः ।
हृदि नारायणः साध्यः अश्विनौ पूर्वपादयोः ।।९३

आकाश मण्डल में जितने तारागण हैं उतनी ही बात रश्मियाँ भी हैं । ये सभी ध्रुव के द्वारा निबद्ध होती हुई स्वयं भ्रमण किया करती हैं और उसको भ्रमण कराया भी करती हैं ।। ८७ ।। तैल पीड़ाकर चक्र (पहिया) जिस तरह भ्रमता हुआ भ्रमण कराया करता है उसी प्रकार सब ओर से बातबद्ध होकर ज्योतियाँ भी भ्रमण करती हैं ।। ८८ ।। बात चक्र मे ईरित होकर अलात के चक्र की भाँति ये जाया करते हैं । इससे वह ज्योतियों को प्रवहन करता हुआ स्वयं बहता है, ऐसा कहा गया है ।। ८९ ।। इस प्रकार से ध्रुव के द्वारा निबद्ध होता हुआ ज्योतियों का गण सर्पण किया करता है । वह यह दिव में तारामय शिशुमार ध्रुव जानना चाहिए । जो कि दिन में पाप किया करता हैं और उसको रात में देखकर उस पाप से छुटकारा पा जाता है ।। ९० ।। जितने ही वे तारा दिवि में शिशुमार के आश्रित होते हैं उतने ही अधिक वर्ष जीवित रहा करते हैं ।। ९१ ।। प्रविभाग से इस शिशुमार को शाश्वत जानना चाहिए । वह उत्तान पाद का उत्तर हनु हो ।। ९२ ।। यज्ञ को अधर और धर्म को मूर्द्धा का आश्रय लेने वाला जानना चाहिए । हृदय में भगवान् नारायण को साध्य करना चाहिए, अश्विनीकुमारों का पूर्वपादों में साधन करना चाहिए ।। ९३ ।।

वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनि ।
शिश्नः संवत्सरस्तस्य मित्रोऽपाने समाश्रितः ।।६४
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचिः कश्यपो ध्रुवः ।
तारकाः शिशुमारश्च नास्तमेत चतुष्टयम् ।।६५
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ।
उन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रीभूताश्रिता दिवि ।।६६
ध्रुवेणाधिष्ठिता सर्वे ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् ।
प्रत्यान्तीह वरं श्रेष्ठमेधीभूतं ध्रुवन्दिवि ।।६७
ध्रुवाग्निकश्यपानान्तु वरश्चासौ ध्रुवः स्मृतः ।
एक एव भ्रमत्येष मेरुपर्वतमूर्द्धनि ।।६८
ज्योतिषाञ्चक्रमेतद्धि सदा कर्षत्यवाङ्मुखः ।
मेरुमालोकयत्येष प्रयातीह प्रदक्षिणम् ।।६९

उसके पश्चिम सक्थि में वरुण तथा अर्यमा का साधन करना चाहिए। उसका शिश्न समर है। मित्र अपान में समाश्रित रहता है ।। ९४ ।। पुच्छ में अग्नि, महेन्द्र, मरीचि, कश्यप और ध्रुव-तारक और शिशुमार पद चतुष्टय अस्त नहीं होते हैं ।। ९५ ।। नक्षत्र, चन्द्र सूर्य, ग्रह, तारागणों के साथ उन्मुख तथा अभिमुख सब दिवि में चक्रीभूत होकर स्थित रहते हैं ।। ९६ ।। ये सब ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित हैं और ध्रुव ही प्रदक्षिण है। यहाँ वर-श्रेष्ठ और एकीभूत ध्रुव को दिवि में प्रमाण किया करते हैं ।। ९७ ।। ध्रुव, अग्नि और कश्यप इन तीनों में ध्रुव ही श्रेष्ठ कहा गया है। यह एक ही मेरु पर्वत के मूर्द्धा में भ्रमण किया करता है। यह ज्योतियों का चक्र अवाङ्मुख होता हुआ सदा कर्षण किया करता है। यह मेरु को देखता है और यहाँ प्रदक्षिण को जाता है ।। ९८-९९ ।।

।। प्रकर्ण ३५—ज्योतिमण्डल का विस्तार ।।

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पुनस्ते संशयान्विताः ।
पप्रच्छुरुत्तरं भूयस्तदा ते लोमहर्षणम् ।।१

यदेतद्बुक्तम्भवता गृहाण्येतानि विश्रुतम् ।
कथं देवगृहाणिस्युः कथं ज्योतींषि वर्णय ॥२
एतत्सर्वं समाचक्ष्व ज्योतिषाञ्चैव निश्चयम् ।
श्रुत्वा तु वचनं तेषां तदा सूतः समाहितः ॥३
अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं ज्ञानबुद्धिभिः ।
तद्बोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्भवम् ।
यथा देवगृहाणीह सूर्याचन्द्रमसोर्गृहम् ॥४
अतः परं त्रिविधाग्नेर्वक्ष्येऽहन्तु समुद्भवम् ।
दिव्यस्य भौतिकस्याग्नेरथाग्नेः पार्थिवस्य च ॥५
व्युष्टायान्तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
अव्याकृतमिदन्त्वासीन्नैशेन तमसावृतम् ॥६
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते ।
यश्चादौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृतः ॥७

श्री शांशपायन ने कहा—मुनिगण ने यह सुनकर पुनः संशय से युक्त होकर अपने प्रश्न का लोमहर्षण से उत्तर पूछा ॥१॥ ऋषियों ने कहा—आपने जो यह कहा कि ये विश्रुत ग्रह हैं तो देवग्रह किस प्रकार से हैं और ज्योतियाँ किस तरह से हैं ? कृपा कर यह वर्णन करिये ॥ २ ॥ यह सब ज्योतियों का निश्चय बताइये । यह उनका वचन सुनकर उस समय सूत जी समाहित हुए और उन्होंने ऋषियों से कहा—॥ ३ ॥ महान् पण्डित तथा ज्ञान और बुद्धि वाले आप ने इस विषय में जो कुछ कहा है वह अब मैं आपसे सूर्य, चन्द्र का जन्म कहता हूँ । यहाँ पर जिस प्रकार से देवगृह सूर्य, चन्द्र के ग्रह हैं ॥ ४ ॥ इसके आगे मैं तीन प्रकार की अग्नि का समुद्भव भी कहूँगा । दिव्य अग्नि, भौतिक अग्नि और पार्थिव अग्नि—इन तीनों प्रकार की अग्नियों की उत्पत्ति भलीभाँति बतलाई जाती है ॥ ५ ॥ व्युष्ट रात्रि में अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा को यह निशा के अन्धकार से आवृत अव्याकृत था ॥ ६ ॥ चार भूतों से अवशिष्ट इसमें वह पार्थिव अग्नि कहा जाता है । जो आदि में सूर्य में ताप देता है वह शुचि अग्नि कहा गया है ॥ ७ ॥

वैद्युताख्यस्तु विज्ञेयस्तेषां वक्ष्येऽथ लक्षणम् ।
वैद्युतो जाठरः सौरो ह्यपाङ्गर्भास्त्रयोऽग्नयः ।
तस्मादपः पिबन् सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ दिवि ।।८
वैद्युतेन समाविष्टो वार्क्षो नाद्भिः प्रशाम्यति ।
मानवानांच कुक्षिस्थो नाद्भिः शाम्यति पावकः ।।९
अर्च्चिष्मान् परमः सोऽग्निः प्रभवो जाठरः स्मृतः ।
यश्चायं मण्डली शुक्लो निरूष्मा संप्रकाशते ।।१०
प्रभा हि सौरी पादेन ह्यस्तं याति दिवाकरे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात् प्रकाशते ।।११
उद्यन्तंच पुनः सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशत् ।
पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ ।।१२
प्रकाशश्च तथौष्ण्यंच सौराग्नेये तु तेजसी ।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ।।१३
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तस्मादस्मिंश्च दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति पुनः सूर्ये रात्रिराविशते त्वपः ।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ।।१४

जो अग्नि वैद्युत–इस नाम वाला होता है उसका लक्षण बताया जायगा। तीन प्रकार की अग्नि होती हैं। एक वैद्युत, दूसरा जाठर और तीसरा अपाङ्गर्भ होता है। इससे जलों का पान करता हुआ सूर्य आकाश में किरणों से दीप्त हुआ करता है ।। ८ ।। वैद्युत से समाविष्ट अग्नि जलों से कभी शान्त नहीं करता है। जो मानवों की कुक्षि में स्थित रहने वाला जाठर अग्नि होता है वह भी जल से शमन को प्राप्त नहीं हुआ करता है ।। ९ ।। वह अग्नि परम अर्चियों वाला होता है जिसका प्रभव जाठर कहा गया है। जो यह मण्डली, शुक्ल और बिना ऊष्मा वाला संप्रकाशित होता है ।। १० ।। सौरी प्रभा पाद से दिवा करके अस्ताचलगामी हो जाने पर अग्नि में आविष्ट हो जाती है। रात्रि में वह दूर से प्रकाश देती है ।। ११ ।। वह आग्नेय उष्णता उगते हुए सूर्य में पुनः आविष्ट हो जाया करती है। पाद से पार्थिव अग्नि में है अतएव यह अग्नि ताप दिया

करती है ॥ १२ ॥ प्रकाश और उष्णता सौर तथा आग्नेय तेज रात-दिन परस्पर में अनुप्रवेश पाकर आप्यायित हुआ करते हैं ॥ १३ ॥ उत्तर के भूमि के अर्ध भाग में और उससे इस दक्षिण में पुनः सूर्य के उत्थित होने पर रात्रि अप में अर्थात् जल में प्रवेश करती है। इसी से जल ताम्र वर्ण वाले हो जाते हैं क्योंकि दिन और रात्रि में उनका प्रवेशन होता है ॥ १४ ॥

अस्तं याति पुनः सूर्ये अहर्वै प्रविशत्यपः ।
तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला आपो विश्यन्ति भास्करे ॥१५
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमये नित्यमहोरात्रं विशत्यपः ॥१६
यश्चासौ तपते सूर्ये पिबन्नम्भो गभस्तिभिः ।
पार्थिवो हि विमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः ॥१७
सहस्रपादः सोऽग्निस्तु वृत्तः कुम्भनिभः शुचिः ।
आदत्तो तत्तु रश्मीनां सहस्रेण समन्ततः ॥१८
नादेयीश्चैव सामुद्रीः कौप्याश्चैव सधान्वनीः ।
स्थावरा जङ्गमाश्चैव यश्व सूर्यो हिरण्मयः ।
तस्य रश्मिसहस्रन्तु वर्षशीतोष्णनिःस्रवम् ॥१९
तासांचतुःशता नाड्यो वर्षन्ति चित्रमूर्त्तयः ।
वन्दनाश्चैव वन्द्याश्च ऋतना नूतनास्तथा ।
अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ॥२०
हिमवाहाश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिशताः पुनः ।
दृश्या मेध्याश्च वाह्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः ॥२१
चन्द्रास्ता नामतः सर्वाः पीताभास्तु गभस्तयः ।
शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ॥२२

पुनः सूर्य के अस्ताचलगामी होने पर दिन जल में प्रवेश किया करता है। इसी से रात्रि में शुक्ल जल भास्कर में आविष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ इस क्रम के योग से दक्षिणोत्तर भूमि के अर्द्ध में उदयास्तमय में नित्य ही दिन-रात जल में प्रवेश किया करते हैं ॥ १६ ॥ जो यह सूर्य जलों का अपनी

किरणों के द्वारा पान करता हुआ तपता है यह निश्चय ही पार्थिव और विमिश्र दिव्य शुचि है—ऐसा कहा गया है ॥ १७ ॥ सहस्र चरणों वाला वह अग्नि कुम्भ के सदृश शुचि हो गया है जो कि सहस्र रश्मियों से सब ओर से उसे ग्रहण किया करता है ॥ १८ ॥ वे जल नादेयी, सामुद्री, कौप्य, सधान्वनी, स्थावर और जङ्गम होते हैं और जो सूर्य है वह हिरण्मय होता है। उसकी सहस्र रश्मियाँ, वर्षा, शीत और उष्णता का निःस्रव करने वाली होती हैं ॥ १९ ॥ उनकी चित्रमूर्त्ति वाली चार सौ नाड़ी वर्षती हैं। वन्दना, वन्द्या, ऋतना, नूतना, अमृता इन नामों वाली होती हैं। ये सब रश्मियाँ वृष्टि के सर्जन करने वाली हैं ॥ २० ॥ उनसे भी अन्य तीन सौ हिमवाहा रश्मियाँ होती हैं। ये दृश्या, मेघ्या, वाह्या, ह्लादिनी, हिमसर्जना और चन्द्रा नामों वाली हैं। ये सब पीत आभा वाली गभस्तियाँ (किरणें) होती हैं। शुक्ला, ककुभ, गावः, विश्वभृत होती हैं ॥ २२ ॥

शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशता घर्मसर्जनाः ।
समं विभर्ति ताभिस्तु मनुष्यपितृदेवताः ॥२३

मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितृनपि ।
अमृतेन सुरान् सर्वांस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ ॥२४

वसन्ते चैव ग्रीष्मे च स तैः सुतपते त्रिभिः ।
वर्षास्वथो शरदि चतुर्भिः सम्प्रकर्षति ॥२५

हेमन्ते शिशिरे चैव हिमं स सृजते त्रिभिः ।
ओषधीषु बलन्धत्ते स्वधया च पितृनपि ।
सूर्योऽमरत्वममृतत्रयन्त्रिषु नियच्छति ॥२६

एवं रश्मिसहस्रन्तत् सौरं लोकार्थ साधकम् ।
भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णनिःस्रवम् ॥२७

इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्वरं सूर्यसंज्ञितम् ।
नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च ।
ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः ॥२८

नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः ।
शेषाः पञ्चग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामरूपिणः ।।२६

जो नाम से शुक्ल है वे सब तीन सौ हैं और घर्म का सर्जन करने वाली हैं। उनसे समान रूप से मनुष्य, पितर और देवों का भरण किया जाता है ।।२३।। यहाँ मनुष्यों को औषध से, स्वधा से पितरों और अमृत से देवों को इन सब तीनों को यह तीनों से तृप्त किया करता है ।।२४।। वसन्त और ग्रीष्म में वह तीनों से भली प्रकार तपा करता है। बर्षा और शरद में चारों से अच्छी प्रकार से प्रकर्षण किया करता है ।।२५।। हेमन्त और शिशिर में वह तीनों से हिम का सृजन किया करता है। औषधियों में बल धारण करता है, स्वधासे पितरों को भी सूर्य तीनों में अमृतत्र्य अमरत्व को दिया करता है ।।२६।। इस प्रकार से सूर्य सम्बन्धी सहस्र रश्मियाँ लोक के अर्थ की साधक होती हैं। ऋतु को प्राप्तकर जल, शीत और उष्णता के स्रवण का भेदन करती हैं ।।२७।। इतना यह मण्डल शुक्ल एवं भास्वर सूर्य की संज्ञा वाला है और नक्षत्र, ग्रह और चन्द्र की प्रतिष्ठा का जन्म स्थान हो है। ऋक्ष-चन्द्रमा और ग्रह ये सब सूर्य से ही उत्पन्न होने वाले होते हैं—ऐसा जान लेना चाहिए ।।२८।। नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा है और ग्रहों का राजा सूर्य होता है। शेष पाँच ग्रह कामरूपी ईश्वर जानने चाहिए ।।२९।।

पठचते चाग्निरादित्य औदकश्चन्द्रमाः स्मृतः ।
शेषाणां प्रकृतिं सम्यग्वर्ण्यमानां निबोधत ।।३०
सुरसेनापति स्कन्दः पठचतेऽङ्गारको ग्रहः ।
नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो विदुः ।।३१
रुद्रो वैवस्वतः साक्षाद्धर्मो प्रभुः स्वयम् ।
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मन्दगामी शनैश्चरः ।।३२
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ ।
प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती ।
दैत्यो महेन्द्रश्च तयोराधिपत्ये विनिर्मितौ ।।३३
आदित्यमूलमखिलं त्रिलोकं नात्र संशयः ।

भवत्यस्य जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ।।३४
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रास्त्रिदिवौकसाम् ।
द्युतिद्युतिमतां कृत्स्ना यत्तेजः सार्वलौकिकम् ।।३५
सर्वात्मा सर्वलोकेशो मूलं परमदैवतम् ।
ततः संजायते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते ।।३६

आदित्य अग्नि पढा जाता है और चन्द्रमा औदक कहा गया है । शेषों की प्रकृति को जोकि भली भाँति वर्णन की जाने वाली है समझलो ।।३०।। देवताओं की सेना का स्वामी स्कन्द है और अङ्गारक ग्रह पढा जाता है । बुध को नारायण कहते हैं और देव को ज्ञान के वेत्ता जानते हैं ।।३१।। रुद्र वैवस्वत है जो लोक में साक्षात् धर्म एवं स्वयं प्रभु हैं । द्विजों में श्रेष्ठ मन्दगमन करने वाला महाग्रह शनैश्चर है ।।३२।। देवासुरगुरु (अर्थात् बृहस्पति और शुक्र) ये दोनों भानुमान् महाग्रह होते हैं । ये दोनों प्रजापति के पुत्र शुक्र और बृहस्पति नाम वाले हैं । दैत्य और महेन्द्र इन दोनों के आधिपत्य में विनिर्मित हुए हैं ।।३३।। यह समस्त त्रैलोक्य आदित्य के मूल वाला है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । सम्पूर्ण जगत् देव, असुर और मानवों के सहित इसका होता है ।।३४।। हे विप्रेन्द्र वृन्द । रुद्र इन्द्र उपेन्द्र च्रन्द्र देवों की जोकि द्युतिमान् है, समस्त द्युति और सार्वलौकिकतेज है उस सब की आत्मा समस्त लोकों के ईश मूल परम दैवत है अर्थात् सूर्य ही मूल और सबसे बड़ा देवता है । उससे ही सब उत्पन्न होता है सब कुछ उसी में प्रलीन हुआ करता है ।।३५।।३६।।

भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।
जगज्ज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान् सुग्रहो रविः ।।३७
यत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुनः पुनः ।
क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशाः पक्षाश्च कृत्स्नशः ।
मासाः संवत्सराश्चैव ऋतदोऽब्दयुगानि च ।।३८
तदादित्यादृते तेषां कालसंख्या न विद्यते ।
कालादृते न निगमो न दीक्षा नाह्निकक्रमः ।।३९

ऋतुनामविभागश्च पुष्पमूलफलं कुतः ।
कुतः सस्याभिनिष्पत्तिर्गुणौषधिगणादि वा ।।४०
अभावो व्यहाराणां देवानां दिवि चेह च ।
जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम् ।।४१
स एव कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः ।
तपत्येष द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।४२

समस्त लोकों के भाव और अभाव पहिले आदित्य से निकले थे । हे विप्रो ! यह जगत् ग्रह समझना चाहिए और दीप्तिमान रवि को सुग्रह जानना चाहिए ।।३७।। जहाँ पर क्षण, मुहूर्त-दिवसनिशा, पूर्णतया पक्ष, मास, सम्वसर, ऋतु, अयन और युग निधन को प्राप्त होते हैं अर्थात् समाप्त होते हैं और बार-बार उत्पन्न हुआ करते हैं ।।३८।। उस समय आदित्य के बिना उनकी काल संख्या नहीं होती है । काल के बिना निगम नहीं होता है, न दीक्षा होती है और न कोई आह्निक क्रम ही होता है ।।३९।। जब ऋतुओं का कोई विभाग ही नहीं है तो फिर पुष्प-मूल और फल कहाँ से कैसे हो सकते हैं ? सस्य की अभिनिव्यक्ति, गुण और ओषधिगणआदि भी कैसे हो सकेंगे ? ।।४०।। दिव और देवों का और यहाँ पर भी सभी व्यवहारों का अभाव हो जायगा । वारि के तस्कर अर्थात् अपहरण करने वाले भास्कर के बिना जगत का प्रतापन हो जायगा ।।४१।। हे द्विजश्रेष्ठो ! वह ही काल और अग्नि प्रजापति द्वादश स्वरूप वाला है । यह त्रैलोक्य में समस्त चराचर को तपता है ।।४२।।

स एष तेजसां राशिः समस्तः सार्वलौकिकः ।
उत्तमं मार्गमास्थाय वायोर्भाभिरिदञ्जगत् ।
पार्श्वमूर्द्धमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः ।।४३
रवेरश्मिसहस्रं यत् प्राङ्मया समुदाहृतम् ।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ।।४४
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च ।
विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः सम्पद्वसुरतः परम् ।
अर्वावसुः पुनश्चान्यो मया चात्र प्रकीर्त्तितः ।।४५

सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु क्षीणं शशिनमेधयन् ।
तिर्यगूर्द्धप्रभावोऽसौ सुषुम्नः परिकीर्त्यते ।।४६
हरिकेशः पुरस्त्वाद्या ऋक्षयोनिः प्रकीर्त्यते ।
दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिर्वर्द्धयते बुधम् ।।४७
विश्वश्रवास्तु यः पश्चात् शुक्रयोनिः स्मृतो बुधैः ।
सम्पद्वसुश्च यो रश्मिः सा योनिर्लोहितस्य च ।।४८
षष्ठस्त्वर्वावसू रश्मिर्योनिस्तु स बृहस्पतेः ।
शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट् ।।४९

वह यह ही समस्त एवं सार्वलौकिक तेजों की राशि है । वायु के उत्तम मार्ग में आस्थित होकर अपनी प्रभाओं से इस जगत् को पार्श्व में-ऊपर को और अधोभाग में सब ओर से यह ताप देता है ।।४३।। सूर्य की सहस्र रश्मियाँ जो प्राड्मय समुदाहृत हुई हैं उनमें भी फिर श्रेष्ठ ग्रहों की जन्मभूमि सात रश्मियाँ होती हैं ।।४४।। अब यहाँ कुछ रश्मियों के नाम और उनके काम बतलाये जाते हैं । सुषुम्ना,हरिकेश- विश्वकर्मा-विश्वश्रवा-फिर अन्य परम सम्पद्वसु रतः, अर्वावसु-ये रश्मियाँ प्रकीर्तित की गई हैं ।।४५।। सुषुम्ना नाम वाली जो सूर्य की रश्मि है वह क्षीण शशि की वृद्धि करती है । इसका प्रभाव तिर्यक् और ऊर्द्ध्व को हुआ करता है इसी लिये यह सुषुम्ना कही जाती है ।।४६।। हरिकेश नामक रश्मि आद्यारश्मि है और यह नक्षत्रों का जन्म स्थान कही जाती है । विश्वकर्मा नाम वाली जो रश्मि है वह दक्षिणमें बुध का वर्धन किया करती है ।।४७।। विश्वश्रवा नामक रश्मि जो है वह बुध के द्वारा पश्चात् शुक्र की योनि कही गई है । सम्पद्वसु जो रश्मि है वह लोहित की योनि होती है ।।४८।। षष्ठ रश्मि अर्वावसु होती है वह बृहस्पति का जन्म स्थान होती है । और स्वराट् रश्मि फिर शनैश्चर को आप्यायित किया करती है ।।४९।।

एवं सूर्यप्रभावेण ग्रहनक्षत्रतारताः ।
वर्द्धन्ते विदिताः सर्वा विश्वञ्चेदं पुनर्जगत् ।
न क्षीयन्ते पुनस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ।।५०

क्षेत्राण्येतानि वै पूर्वमापतन्ति गभस्तिभिः ।
तेषां क्षेत्राण्यथादत्ते सूर्यो नक्षत्रताङ्गतः ॥५१
तीर्णानि सुकृतेनेह सुकृतान्ते ग्रहाश्रयात् ।
ताराणां तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः ॥५२
दिव्यानां पार्थिवानाञ्च नैशानाञ्चैव सर्वशः ।
आदानान्नित्यमादित्यस्तमसां तेजसां महान् ॥५३
सुवति स्पन्दनार्थे च धातुरेष विभाव्यते ।
सवनात्तेजसोऽपाञ्च तेनासौ सविता मतः ॥५४
बह्वर्थश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरिष्यते ।
शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते ॥५५
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे ।
ज्वलत्तेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ॥५६

इस प्रकार से सूर्य के प्रभाव से सब ग्रह-नक्षत्र और तारागण बढते हैं । यह सर्व विदित है । यह विश्व और यह जगत् भी सूर्य के प्रभाव से ही वर्द्धित होता है । फिर वे क्षोण नहीं होते हैं इसी से नक्षत्रता कही गई है ॥५०॥ पहिले ये क्षेत्र गभस्तियों से आपतित होते हैं । उनके क्षेत्रों को सूर्य नक्षत्रता को प्राप्त हुआ ले लेता है ॥५१॥ इस संसार में सुकृत से तीर्ण और सुकृत के अन्त में ग्रहों के आश्रय से ताराओं में ये तारक हैं और शुक्ल होने से ही तारक होते हैं ॥५२॥ दिव्य-पार्थिव और नैश अर्थात् रात्रि में होने वाले अन्धकारों को तेजों के आदान करने से ही यह महान् अदित्य हुआ है अर्थात् आदान से आदित्य नाम पड़ा है ॥५६॥ स्पन्दन अर्थ में सुवति यह धातु विभावित होती है । तेजों के और जलों के सवन करने से यह सविता इस नाम वाला कहा गया है ॥५४॥ चन्द्र, यह बहुत अर्थ वाला है । ह्लादन में धातु होता है शुक्लत्व-अमृतत्व और शीतत्व में वह विभावित होता है ॥५५॥ सूर्य और चन्द्रमा के दिव्य आकाश व गमन करने वाले भास्वर मण्डल हैं, ये ज्वलन्त, तेजोमय, शुक्ल शुभ और वृत्त कुम्भ के तुल्य होते हैं ॥५६॥

घनतोयात्मकं तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम् ।

घनतेजोमयं शुक्लं मण्डलं भास्करस्य तु ॥५७॥
विशन्ति सर्वदेवास्तु स्थाना न्येतानि सर्वशः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः ॥५८
तानि देवगृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च ।
सौरं सूर्यो विशस्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ॥५६
शौक्रं शुक्रो विशस्थानं षोडशर्च्चिः प्रतापवान् ।
बृहद्बृहस्पतिश्चैव लोहितश्चैव लौहितः ।
शानैश्वरं तथा स्थानं देवश्चैव शनैश्चरः ॥६०
आदित्यरश्मिसंयोगात् संप्रकाशात्मिकाः स्मृताः ।
नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ॥६१
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलश्च प्रमाणतः ।
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ॥६२
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात् प्रसर्पति ।
उद्धृत्य पार्थिवच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः ॥६३

वहाँ घन तोयात्मक शशि का मण्डल कहा गया है और भास्कर का मण्डल घन तेजोमय शुक्ल कहा गया है ॥५७॥ समस्त देवता लोग सब ओर से इन स्थानों में प्रवेश किया करते हैं। समस्त मन्वन्तरों में नक्षत्र-सूर्य और ग्रहों के आश्रय होते हैं ॥५८॥ वे देवों के ग्रह ही हैं और उस आख्या अर्थात् नाम से वे होते हैं। सूर्य सौर-विशस्थान है और सोम सौम्य-विशस्थान होता है ॥५६॥ सोलह अर्चि वाला प्रताप से युक्त शुक्र शौक्र का प्रवेश स्थान है। बृहद् (बड़ा) बृहस्पति और लौहित ही लोहित तथा देव शनैश्चर शानैश्चर विशस्थान होता है ॥६०॥ ये सब आदित्य के रश्मियों के संयोग से सम्प्रकाशात्मिक कहे गये हैं। सविता का विष्कम्भ नौ सहस्र योजन वाला होता है—ऐसा कहा गया है ॥६१॥ उसका विस्तार तिगुना और प्रमाण से मण्डल होता है। सूर्य के विस्तार से दुगना शशि का विस्तार कहा गया है ॥६६॥ उन दोनों के तुल्य स्वर्भानु हो कर अधोभाग से प्रसर्पण किया करता है। पार्थिव अर्थात् पृथ्वी की छाया का उद्धरण करके यह मण्डल की आकृति वाला निर्मित हुआ करता है ॥६३॥

स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानन्निर्मितं यत्तमोयम् ।
आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु ।।६४
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सोमश्च पर्वसु ।
स्वर्भासा नुदते यस्मात्ततः स्वर्भानुरुच्यते ।।६५
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवश्च विधीयते ।
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रात् प्रमाणतः ।।६६
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ।
बृहस्पतेः पादहीनौ कुजसौरावुभौ स्मृतौ ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ।।६७
तारानक्षत्ररूपाणि स्वपुष्मन्तीह यानि वै ।
बुधेन समतुल्यानि विस्तारान्मण्डलादथ ।।६८
प्रायशश्चन्द्रयोगानि विद्यादृक्षाणि तत्ववित् ।
तारानक्षात्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ।।६९
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने ।
पूर्वापरनिकृष्टानि तारकामण्डलानि तु ।
योजनान्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ।।७०

स्वर्भानु का बृहत् स्थान जोकि तमोमय निर्मित हुआ है वह आदित्य से निकल कर पर्वों में चला जाया करता है ।।६४।। सोम से आदित्य में आता है और फिर पर्वों में सोम को जाया करता है । अपनी दीप्ति से नुदन क्रिया करता है इसी कारण से यह स्वर्भानु- ऐसा कहा जाया करता है ।।६५।। चन्द्रमा का सोलहवां भाग भृगु का होता है जोकि विषकम्भ-मण्डल और योजनाग्र के प्रमाण से होता है ।।६६।। भार्गव से एक पाद हीन बृहस्पति को जानना चाहिए और बृहस्पति से एक पाद कम वाले कुज और सौर दोनों कहे गये हैं । विस्तार और मण्डल से उन दोनों से एक पाद हीन बुध को कहा गया है ।।६७।। यहाँ जो अपने वपु वाले तारा नक्षत्र रूप से युक्त है वे सब विस्तार तथा मण्डल से बुध के समान ही होते हैं ।।६८।। तत्ववेत्ता को चाहिए कि प्रायः इन्हें चन्द्र के योग वाले जानें । तारा नक्षत्र रूप वाले परस्पर में हीन हैं ।।६९।। सौ-पाँच-

चार-तीन और दो योजन तारकमण्डल पूर्वापर में निकृष्ट होते हैं। उनमें आधे योजन से छोटा कोई भी नहीं होता है ॥७०॥

उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः ।
सौरोऽङ्गिराश्चवक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः ॥७१
तेभ्योधऽस्तात्तु चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः ।
सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः ॥७२
यावन्त्यस्तारकाः कोटयस्तावद्दक्षाणि सर्वशः ।
वीथीनां नियमाच्चैवमृक्षमार्गो व्यवस्थितः ॥७३
गतिस्तास्त्वेव सूर्यस्य नीचोच्चात्वेऽयनक्रमात् ।
उत्तरायण मार्गस्थो यदा पर्वसु चन्द्रमाः ।
बौधं बौधोऽथ स्वर्भानुः स्वर्भानो स्थानमास्थितः ॥७४
नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशन्त्युत ।
गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम् ॥७५
कल्पादौ संप्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयम्भुवा ।
स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥७६
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवतायतनानि वै ।
अभिमानिनोऽत्रतिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥७७

उनमें ऊपर से तीन ग्रह दूर सर्पी अर्थात् दूरतक सर्पण करने वाले होते हैं। और अङ्गिरा तथा वक्र ये मन्दचारी जानने के योग्य होते हैं ॥७१॥ उनके नीचे फिर चार अन्य महाग्रह होते हैं जो शीघ्र गमन करने वाले हैं ये सूर्य-सोम-बुध और भार्गव होते हैं ॥७२॥ जितने करोड़ तारका हैं उतने ही सब ओर नक्षत्र होते हैं। वीथियों के नियम से ही नक्षत्रों का मार्ग व्यवस्थित होता है ॥७३॥ सूर्य की वह गति नीच, उच्च अयन के क्रम से ही होती है। जब चन्द्रमा उत्तरायण मार्ग में स्थित पर्वों में होता है तब बौध-बौध का और स्वर्भानु स्वर्भानु के स्थान में आस्थित होता है ॥७४॥ समस्त नक्षत्र,नक्षत्रों में प्रवेश किया करते हैं। ये सब ज्योतियाँ सुकृतात्माओं के गृह होते हैं ॥७५॥ कल्प के आदि में सम्प्रवृत्त स्वयम्भू के द्वारा निर्मित ये स्थान हैं और भूत संप्लव पर्यन्त रहते

हैं ।।७६।। समस्त मन्वन्तरों में देवताओं के आयत अभिमान वाले जब तक भूत संल्पव होता है अवस्थित हुआ करते हैं ।।७७।।

अतीतैस्तु सहातीता भाव्याभाव्यैः सुरासुरैः ।
वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च स्थानानि स्वैः सुरैः सह ।।७८
अस्मिन् मन्वन्तरे चैव ग्रहा वैमानिकाः स्मृताः ।
विवस्वानदितेः पुत्रः सुर्यो वैवस्वतेऽन्तरे ।।७९
त्विषिमान्धर्मपुत्रस्तु सोमदेवो वसुः स्मृतः ।
शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरराजकः ।।८०
बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्योऽङ्गिरः सुतः ।
बुधो मनोहरश्चैव त्विषिपुत्रस्तु स स्मृतः ।।८१
अग्निर्विकल्पात् संजज्ञे युवाऽसौ लोहिताधिपः ।
नक्षत्रऋक्षागामिन्यो दाक्षायण्यः स्मृतास्तु ताः ।।८२
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसन्तापनोऽसुरः ।
सोमर्क्षग्रहसूर्ये तु कीर्तितास्त्वभिमानिनः ।।८३
स्थानान्येतान्यथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ।
शुक्लमग्निमयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः ।।८४
सहस्रांशोस्त्विषः स्थानमम्मयं शुक्लमेव च ।
अथ श्यामं मनोज्ञस्य पञ्चरश्मेर्गृहं स्मृतम् ।।८५
शुक्रस्याप्यम्मयं स्थानं सद्म षोडशरश्मिवत् ।
नवरश्मेस्तु यूनो हि लोहितस्थानमम्मयम् ।।८६
हरिश्चाप्यं बृहच्चापि द्वादशांशोर्बृहस्पतेः ।
अष्टरस्मेर्गृहं प्रोक्तं कृष्णं बुद्धस्य अम्मयम् ।।८७

अतीतों के साथ अतीत और भाव्यों के साथ भाव्य ये सुरासुर वर्त्तमानों के साथ अपने सुरों के साथ वर्त्तमान स्थान होते हैं ।।७८।। इस मन्वन्तर में ग्रह वैमानिक कहे गये हैं। वैवस्वत अन्तर में सूर्य अदिति का पुत्र कहा गया है ।।७९।। त्विषिमान् धर्म का पुत्र और सोमदेव वसु कहा गया है शुक्रदेव असुरराज भार्गव जानना चाहिए ।।८०।। अङ्गिरा के

पुत्र बृहत् तेज वाला देव बृहस्पति देवाचार्य कहा गया है। मनोहर बुध त्विषि पुत्र कहा गया है ॥८१॥ अग्नि विकल्प से उत्पन्न हुआ जोकि लोहिताधिप है। नक्षत्र ऋक्ष में गमन करने वाली वे दाक्षायणी कही गई हैं ॥८२॥ स्वर्भानु सिंहिका का पुत्र है जोकि प्राणियों को सन्ताप देने वाला असुर होता है। सोम ऋक्ष ग्रह सूर्य तो अभिमानी कीर्त्तित किये गये हैं ॥८३॥ ये सब स्थान जैसे बताये गये हैं और स्थानीय देवता जो बताये गये हैं उनमें विवस्वान् सूर्य का स्थान शुक्ल एवं अग्निमय स्थान होता है ॥८४॥ त्विषि सहस्रांश का स्थान जलमय और शुक्ल होता है। इसके अनन्तर पञ्चरश्मि मनोज्ञ का श्याम गृह कहा गया है ॥८५॥ शुक्र का भी स्थान जलमय तथा षोड़श रश्मि के तुल्य सद्म होता है। नवरश्मि युनकका अपमय लोहित स्थान होता है ॥८६ द्वादशांश बृहस्पति का हरि-आप्य और बृहत् स्थान होता है। अष्टरश्मि बुध का गृह कृष्ण और अपमय कहा गया है ॥८७॥

स्वर्भानोस्तामसं स्थानं भूतसन्तापनालयम् ।
विज्ञेयास्तारकाः सर्वास्त्वम्मयास्त्वेकरश्मयः ॥८८

आश्रयाः पुण्यकीर्त्तिनां सुशुक्लाश्चैव वर्णतः ।
घनतोयात्मिका ज्ञेयाः कल्पादौ वेदनिर्मिताः ॥८९

उच्चात्वाद्दृश्यते शीघ्रमभिव्यक्तैर्गभस्तिभिः ।
तथा दक्षिणमार्गस्थो नीविवीथोसमाश्रितः ॥९०
भूमिलेखावृतः सूर्यः पूर्णमावास्ययोस्तथा ।
न दृश्यते यथाकालं शीघ्रतोऽस्तमुपैति च ॥९१
तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्यां निशाकरः ।
दृश्यते दक्षिणे मार्गे नियमाद्दृश्यते न च ॥९२

ज्योतिषां गतियोगेन सूर्याचन्द्रमसावुभौ ।
समानकालास्तमयौ विषुवत्सु समोदयौ ॥९३

उत्तरासु च वीथीषु व्यन्तरास्तमयोदयौ ।
पूर्णमावास्ययोर्ज्ञेयौ ज्योतिश्चक्रानुवर्त्तिनौ ॥९४

स्वर्भानु का स्थान तामस होता है जोकि भूतों के सन्ताप देने वाला घर होता है । समस्त तारका जो हैं वे एक रश्मि वाले और अपमय जानने के योग्य होते हैं ॥८८॥ जो पुण्य कीर्त्ति होते हैं उनके आश्रय अच्छे वर्ण से शुक्ल हुआ करते हैं और वे धन–तोयात्मक होते हैं और उन्हें कल्पके आदि में ही वेद निर्मित जानना चाहिए ॥८९॥ उच्च होने से गभस्तियों के द्वारा अभिव्यक्ति होने के कारण शीघ्र दिखलाई दिया करते हैं तथा दक्षिण मार्ग में स्थित नीचि वीथी में समाश्रित होता है ॥९०॥ पूर्णिमा और अमावस्या में सूर्य भूमि लेखा से आवृत होता है । वह यथाकाल दिखलाई नहीं देता है और शीघ्र ही अस्तता को प्राप्त हो जाया करता है ॥९१॥ इससे उत्तर मार्ग में स्थित अमावस्या में निशाकर दक्षिण मार्ग में दिखाई देता है और नियम से दिखलाई नहीं दिया करता है ॥९२॥ ज्योतियों के ग्रह योग से सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों समान काल में अस्तमय तथा विषुवत् में समान काल में उदय वाले होते हैं ॥९३॥ उत्तरा वीथियों में अन्तर अस्त और उदय वाले होते हैं । पूर्णिमा और अमावस्या में इन्हें ज्योतिश्चक्र के अनुवर्त्ती जानना चाहिए ॥९४॥

दक्षिणायनमार्गस्थो यदा भवति रश्मिवान् ।
तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति ॥९५
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्द्ध्वञ्चरते शशी ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सीमादूर्द्ध्वं प्रसर्पतिः ॥९६
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्द्ध्वं बुधादूर्द्ध्वं बृहस्पतिः ।
तस्माच्छनैश्चरश्चोर्द्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम् ।
ऋषीणाञ्चैव सप्तानां ध्रुव ऊर्द्ध्वं व्यवस्थितः ॥९७
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च ।
ताराग्रहान्तराणि स्युरुपरिष्टाद्यथाक्रमम् ॥९८
ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यौ तु दिवि दिव्येन तेजसा ।
नित्यमृक्षेषु युज्यन्ति गच्छन्ति नियमक्रमात् ॥९९
ग्रहनक्षत्रसूर्यास्तु नीचोच्चमृद्धवस्थिताः ।
समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत् प्रजाः ॥१००

परस्परस्थिताः ह्येते युज्यन्ते च परस्परम् ।
असङ्करेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः ॥१०१

जिस समय रश्मिमान् दक्षिणायन मार्ग में स्थित होता है उस समय वह सूर्य समस्त ग्रहों के अधोभाग में प्रसर्पण किया करता है ॥९५॥ मण्डल को विस्तीर्ण करके उसके ऊर्द्ध भाग में चन्द्रमा सञ्चारण किया करता है। समस्त नक्षत्र मण्डल चन्द्र से ऊपर प्रसर्पण किया करता है ॥९६॥ नक्षत्रों से ऊपर बुध और बुध से भी ऊर्ध्वभाग में बृहस्पति चरण किया करता है। उससे ऊपर शनैश्चर और उससे ऊर्ध्वभाग में सप्तर्षियों का मण्डल चरण करता है। सातों ऋषियों के ऊपर ध्रुव व्यवस्थित है ॥९७॥ दो सौ सहस्र योजनों के ऊपर यथा-क्रम तारागृहों के अन्तर हैं ॥९८॥ समस्त ग्रह, चन्द्र और सूर्य दिव में दिव्य तेज से नित्य ही ऋक्षों में युक्त होते हैं और नियम के क्रम से जाते हैं ॥९९॥ ग्रह, नक्षत्र और सूर्य नीच-उच्च और मृदु अवस्थित होते हैं। ये समागम में और भेद में एकसाथ प्रजा को देखते हैं ॥१००॥ परस्पर स्थित ये परस्पर में युज्यमान होते हैं। विद्वान पुरुषों के द्वारा उन का योग असङ्कर रूप से जानना चाहिए ॥१०१॥

इत्येष सन्निवेशो वः पृथिव्यां ज्योतिषस्य च ।
द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानां तथैव च ॥१०२
वर्षाणां च नदीनाञ्च येषु तेषु वसन्ति वै ।
एते चैव ग्रहाः पूर्वं नक्षत्रेषु समुत्थिताः ॥१०३
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै चाक्षुषेऽन्तरे ।
विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो ग्रहः ॥१०४
त्विषिमान् धर्म्मपुत्रस्तु सोमो विश्वावसुस्तथा ।
शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासु निशाकरः ॥१०५
षोडशार्चिर्भृगोः पुत्रः शुक्रः सूर्यादन्तरम् ।
ताराग्रहाणां प्रवरस्तिष्यक्षेत्रे समुत्थितः ॥१०६
ग्रहश्चाङ्गिरसः पुत्रो द्वादशार्च्चिर्बृहस्पतिः ।
फाल्गुनीषु समुत्पन्नः सर्वासु च जगद्गुरुः ॥१०७

नवार्चिर्लोहिताङ्गस्तु प्रजापतिसुतो ग्रहः ।
आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति श्रुतिः ॥१०८

इतना यह आपका पृथिवी में सन्निवेश और ज्योतिष का सन्निवेश है । इसी प्रकार से द्वीपों का, समुद्रों का, पर्वतों का तथा वर्षों का और नदियों का है जिनमें वास किया करते हैं । ये सब ग्रह पहिले नक्षत्रों में समुत्थित होते हैं । ॥१०२॥१०३॥ चाक्षुष अन्तर में विवस्वान् सूर्य अदिति का पुत्र है और यह विशाखाओं में उत्पन्न हुआ है तथा समस्त ग्रहों में प्रथम ग्रह कहा जाता है ॥१०४॥ त्विषिमान् धर्म का पुत्र है और सोम विश्वावसु उसी प्रकार से है । यह शीतरश्मि निशाकर कृत्तिकाओं में समुत्पन्न हुआ है ॥१०५॥ षोड़शार्चि भृगुका पुत्र है अनन्तर में सूर्य से शुक्र है जो ताराग्रहों में प्रकट है और तिष्य में समुत्थित हुआ है ॥१०६॥ द्वादशार्चि बृहस्पति अङ्गिरा का पुत्र है और फाल्गुनी में उत्पन्न हुआ है तथा समस्त देवों में यह जगद्गुरु हैं ॥१०७॥ नवार्चि लोहिताङ्ग ग्रह प्रजापति का पुत्र है और यह पूर्वाषाढ में समुत्पन्न हुआ है ऐसा श्रुति है ॥१०८॥

रेवतीष्वेव सप्तार्चि स्तथा सौरशनैश्चरः ।
रोहिणीषु समुत्पन्नौ ग्रहौ चन्द्रार्कमर्द्दनौ ॥१०९
एते ताराग्रहाश्चैव बोद्धव्या भार्गवादय ।
जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतांयतः ।
स्पृशन्ते तेन दोषेण ततस्ता ग्रहभक्तिषु ॥११०
सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते ।
ताराग्रहाणां शक्रस्तु केतुनाञ्चैव धूमवान् ॥१११
ध्रुवः कालो ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम् ।
नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम् ॥११२
वर्षाणाञ्चापि पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः ।
ऋतूनां शिशिरञ्चापि मासानां माघ एव च ॥११३
पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तथा ।
अहोरात्रिविभागानामहश्चापि प्रकीर्तितम् ॥११४

मुहूर्त्तानां तथैवादिर्मुहूर्त्तो रुद्रदैवतः ।
अक्ष्णोश्चापि निमेषादिः कालः कालविदो मतः ।।११५

सप्तार्चि शनैश्चर सौर है और रेवती में ही समुत्पन्न हुआ है तथा चन्द्रार्क मर्दन ये दो ग्रह रोहिणी में समुत्पन्न हुए है ।।१०९।। ये भार्गवादि सब ताराग्रह जानने के योग्य हैं क्योंकि ये जन्म नक्षत्र पीड़ाओं में विगुणता को प्राप्त किया करते हैं। इसके पश्चात् ग्रहभक्ति में वे उस दोष से स्पर्श करते हैं ।।११०।। इन समस्त ग्रहों में आदित्य आदि कहा जाता है । ताराग्रहों में शुक्र और केतुओं में धूमवान् है ।।१११।। चारों दिशाओं में विभक्त ग्रहों का ध्रुव काल होता है, नक्षत्रों का श्रविष्ठा और अयनों का उत्तर होता है ।।११२।। पाँचों वर्षों में आद्य सम्वत्सर कहा गया है । समस्त ऋतुओं में शिशिर और सम्पूर्ण मासों में माघमास आद्य होता है ।।११३।। पक्षों में शुक्ल पक्ष, तिथियों में प्रतिपत् और अहोरात्र के विभागों में अह आदि कहा गया है ।।११४।।मुहूर्त्तों में आदि मुहूर्त्त रुद्र दैवत होता है तथा अक्षियों में निमेष और कालविदों में काल माना गया है ।।११५।।

श्रवणान्तं श्रविष्ठादियुगं स्यात् पञ्चवार्षिकम् ।
भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत् परिवर्त्तते ।।११६
दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्कालस्तं विद्धि चेश्वरम् ।
चतुर्विधानां भूतानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ।।११७
इत्येष ज्योतिषामेव सन्निवेशोऽर्थनिश्चयात् ।
लोकसंव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मितः ।।११८
उत्पन्नः श्रवणेनासौ संक्षिप्तश्च ध्रुवे तथा ।
सर्वतोऽन्तेषु विस्तीर्णो वृक्षाकार इति स्थितिः ।।११९
बुद्धिपूर्वाम्भगवता कल्पादौ संप्रकीर्तितः ।
साश्रयः सोऽभिमानी च सर्वस्य ज्योतिरात्मकः ।
विश्वरूपः प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः ।।१२०
नैव शक्यं प्रसंख्यातुं याथातथ्येन केनचित् ।
गतागतं मनुष्येषु ज्योतिषां मांसचक्षुषा ।।१२१

आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः ।
परीक्ष्य निपुणं भक्त्या श्रद्धातव्यं विपश्चिता ॥१२२
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं बुद्धिसत्तमाः ।
पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्यतिर्गणविचिन्तने ॥१२३

श्रविष्ठा के आदि से लेकर श्रवण के अन्त तक पाँच वर्ष का युग होता है । भानु की गति की विशेषता से चक्र की भाँति परिवर्त्तित होता है ॥११६॥ दिवाकर को काल कहा गया है और उस को ईश्वर जानो । चार प्रकार के प्राणियों का यह प्रवर्त्तक तथा निवर्त्तक होता है ॥११७॥ यह इतना अर्थ के निश्चय से ज्योतियों का ही सन्निवेश है और इसे लोक के सम्यक् प्रकार से व्यवहार के लिये ईश्वर ने निर्मित किया है ॥११८॥ यह श्रवण से उत्पन्न तथा ध्रुव में संक्षिप्त सब ओर से अन्तों में विस्तीर्ण वृक्ष के आकार जैसी इसकी स्थिति होती है ॥११९॥ भगवान् ने कल्प के आदि में बुद्धि के साथ इसे सम्प्रकीर्त्तित किया है । यह आश्रय के सहित-अभिमानी और सब का ज्योतिरात्मक है । विश्वरूप वाला यह प्रधान का एक अद्भुत परिणाम है ॥१२०॥ यह किसी के भी द्वारा यथार्थ रूप से प्रसंख्यात नहीं किया जा सकता है । मनुष्यों में ज्योतियों के गतागत को मांस-चक्षु से देखा भी नहीं जा सकता है ॥१११॥ आगम से-प्रत्यक्षमान से और उपपत्ति से विद्वान पुरुष को भलीभाँति परीक्षण करके भक्ति से श्रद्धा करनी चाहिए ॥१२२॥ चक्षु-शास्त्र-जल--लेख्य और गणित-बुद्धिसत्तमो ! ये पाँच हेतु ज्योतियों के गण के विचिन्तन में जानने के योग्य हैं ॥१२३॥

॥ प्रकर्ण ३२—नीलण्ठकस्तुति ॥

कस्मिन् देशे महापुण्यमेतदाख्यानमुत्तमम् ।
वृत्तं ब्रह्मपुरोगाणां कस्मिन् काले महाद्युते ।
एतदाख्याहि नः सम्यग् यथा वृत्तं तपोधनः ॥१
यथा श्रुतं मया पूर्वं वायुना जगदायुना ।
कथ्यमानं द्विजश्रेष्ठः सत्रे वर्षसहस्रके ॥२

नीलता येन कण्ठस्य देवदेवस्य शूलिनः ।
तदहं कीर्तयिष्यामि शृणुध्वं शंसितव्रताः ।।३
उत्तरे शैलराजस्य सरांसि सरितोह्रदाः ।
पुण्योद्यानेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ।
गिरिशृङ्गेषु तुङ्गेषु गह्वरोपवनेषु च ।।४
देवभक्ता महात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ।
स्तुवन्ति च महादेवं यत्र यत्र यथाविधि ।।५
ऋग्यजुः सामवेदैश्च नृत्यगीतार्च्चनादिभिः ।
ओङ्कारेण नमस्कारैरर्च्चयन्ति सदा शिवम् ।।६
प्रवृते ज्योतिषां चक्रे मध्यव्याप्ते दिवाकरे ।
देवता नियतात्मानः सर्वे तिष्ठन्ति तां कथाम् ।
अथ नियमप्रवृताश्च प्राणशेषव्यवस्थिताः ।।७

ऋषि लोग बोले किस देश में महान् पुण्य वाला यह उत्तम आख्यान हुआ ? हे महान् द्युतिवाले ! ब्रह्म-पुरोगों का यह आख्यान किस काल में हुआ है ? तपोधन ! यह सब हमसे भलीभाँति कहिए जैसे भी हुआ हो ।।१।। श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! एक सहस्र वर्ष वाले सत्र में इस जगत् की आयु वायु के द्वारा कथ्यमान पहले जैसा भी मैंने सुना है ।।२।। जिसके द्वारा देवों के भी देव भगवान् शूली के कण्ठ की नीलता हुई उसे मैं अब कहता हूँ आप शंसित व्रत वाले उसे श्रवण करो ।।३।। शैलराज के उत्तर में सरित्-सर और ह्रद हैं । पुण्योद्यानों में—तीर्थों में--देवताओं के आयतनों में पर्वतों के शिखरों में जो कि बहुत ऊँचे हैं और गह्वरउपवनों में देव के भक्त शंसित व्रत वाले महान् आत्मा वाले मुनि लोग जहाँ-जहाँ यथाविधि महादेव की स्तुति किया करते हैं ।।४।।५।। ऋक्-यजु और साम वेदों के द्वारा, नृत्य, गीत और अर्चन आदि से ओङ्कार से और नमस्कार से सदाशिव की अर्चा किया करते हैं ।।६।। ज्योतियों के चक्र के प्रवृत्त होने पर दिवाकर के मध्य में व्याप्त हो जाने पर नियत आत्मा वाले देवगण सब उस कथा को कहते हैं । इसके अनन्तर नियमों में वे प्रवृत्त होते हैं कि उनके केवल प्राण ही शेष व्यवस्थित होते हैं ।।७

नमस्ते नीलकण्ठाय इत्युवाच सदागतिः ।
तच्छ्रुत्वा भावितात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ।
वालखिल्येति विख्याताः पतङ्गसहचारिणः ॥८
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीना मूर्द्ध रेतसाम् ।
तस्मात् पृच्छन्ति वै वायुं वायुपर्णाम्बुभोजनाः ॥९
नीलकण्ठेति यत् प्रोक्तं त्वया पवनसत्तम ।
एतद्गुह्यं पवित्राणां पुण्यं पुण्यकृतां वराः ॥१०
तद्वयं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्प्रसादात्प्रभञ्जन ।
नीलता येन कण्ठस्य कारणेनाम्बिकापतेः ॥११
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक् तव वक्राद्विशेषतः ।
यावद्वाचः प्रवर्त्तन्ते सार्थास्ताश्च त्वयेरिताः ॥१२
वर्णस्थानगते वायौ वाग्विधिः संप्रवर्तते ।
ज्ञानं पूर्वमथोत्साहस्त्वत्तो वायो प्रवर्तते ॥१३
त्वयि निष्पन्दमाने तु शेषा वर्णप्रवृत्तयः ।
यत्र वाचो निवर्तन्ते देहबन्धाश्च दुर्लभाः ॥१४

सदागति अर्थात् वायु ने 'नीले कण्ठ वाले आपके लिये नमस्कार है'—यह कहा । यह सुनकर शसित व्रत वाले भावितात्मा मुनिगण जो कि वालखिल्य इस नाम से विख्यात हैं और पतङ्ग (सूर्य) के सहचारी हैं और ऊर्द्ध रेता मुनियों में अट्ठासी सहस्र हैं तथा केवल वायु, पत्ते और जल के भोजन करने वाले थे वे सब वायु से पूछते हैं ॥ ८-९ ॥ ऋषियों ने कहा—हे पवन सत्तम ! आपने अभी 'नीलकण्ठ'—यह जो कहा है—यह गुह्य विषय है जो पवित्रों का, पुण्यकृतों का पुण्य एवं श्रेष्ठ है । हे प्रभञ्जन ! इसे हम आपकी कृपा से सुनने की इच्छा करते हैं जिस कारण से अम्बिका के पति के कण्ठ की नीलता हुई थी, आपके मुख से विशेष रूप से उसे भली-भाँति श्रवण करने की इच्छा रखते हैं । जितनी भी वाणी प्रवृत्त होती है वह आपके द्वारा ईरित होती हुई सार्थ हुआ करती है ॥ १०-११-१२ ॥ वायु के वर्ण और स्थान पर जाने पर वाग् की विधि संप्रवृत्त होती है । हे वायो ! पहिले ज्ञान और इसके उपरान्त उत्साह

आपसे प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ आपके निष्पन्दमान होने पर ही शेष वर्णों की प्रवृत्ति हुआ करती है । जहाँ वाणी निवृत्त हो जाती है वहाँ देहबन्ध दुर्लभ होता है ॥ १४ ॥

तत्रापि तेऽस्ति सद्भावः सर्वगस्त्वं सदानिल ।
नान्यः सर्वगतो देवस्त्वदृतेऽस्ति समीरण ॥१५
एष वै जीवलोकस्ते प्रत्यक्षः सर्वतोऽनिल ।
वेत्थ वाचस्पतिं देवं मनोनायकमीश्वरम् ॥१६
ब्रूहि तत्कण्ठदेशस्य किं कृता रूपविक्रिया ।
श्रुत्वा वाक्यन्ततस्तेषामृषीणां भावितात्मानाम् ।
प्रत्युवाच महातेजा वायुर्लोक नमस्कृतः ॥१७
पुरा कृतयुगे विप्रो वेदनिर्णयतत्परः ।
वसिष्ठो नाम धर्मात्मा मानसो वै प्रजापतेः ॥१८
प्रपच्छ कार्तिकेयं वै मयूरवरवाहनम् ।
महिषासुरनारीणां नयनाञ्जनतस्करम् ॥१९
महासेनं महात्मानं मेघस्तनितनिःस्वनम् ।
उमामनःप्रहर्षेण बालकं छद्मरूपिणम् ॥२०
क्रौञ्चजीवितहर्त्तारं पार्वतीहृदि नन्दनम् ।
वसिष्ठः पृच्छते भक्त्या कार्तिकेयं महाबलम् ॥२१

वहाँ पर भी आपका सद्भाव रहता है हे अनिल ! आप सदा सर्वत्र गमन करने वाले हैं । हे समीरण ! आपके बिना अन्य कोई भी देव सर्वगत नहीं है ॥ १५ ॥ हे अनिल ! यह जीवों का लोक सब ओर से आपके लिये प्रत्यक्ष ही है । आप वाणी के पति और मन के नायक देव ईश्वर को जानते हैं ॥ १६ ॥ आप बतलाइये उनके कण्ठ देश के रूप की विक्रिया किस कारण से हुई है । इसके अनन्तर भावित आत्मा वाले उन ऋषियों के इस वचन को सुनकर लोकों के द्वारा नमस्कृत महान् तेज से युक्त वायुदेव कहने लगे ॥ १७ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—पहिले समय में कृतयुग में वेद के निर्णय करने में परायण वसिष्ठ नाम वाले ब्राह्मण बहुत ही धर्मात्मा तथा प्रजापति के मानस पुत्र थे

॥ १८ ॥ मयूर के श्रेष्ठ वाहन वाले कार्त्तिकेय से वसिष्ठ ने पूछा था जो कि महिषासुर की स्त्रियों के नयनों के अञ्जन के चुराने वाले तस्कर थे। जो महासेन—महात्मा और मेघ के गर्जित के समान ध्वनि वाले थे। उमा के मन के प्रहर्ष से बालक रूप वाले एवं छद्म रूपी थे तथा क्रौञ्च के जीवन का हरण करने वाले और पार्वती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले थे। ऐसे महान् बल वाले स्वामी कार्त्तिकेय से वसिष्ठ मुनि पूछते हैं और भक्ति के भाव के साथ पूछते हैं ॥ १९-२०-२१ ॥

नमस्ते हरनन्दाय उमागर्भ नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते अग्निगर्भाय गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ॥२२
नमस्ते शरगर्भाय नमस्ते कृत्तिकासुत ।
नमो द्वादशनेत्राय षण्मुखाय नमोऽस्तु ते ॥२३
नमस्ते शक्तिहस्ताय दिव्यघण्टापताकिने ।
एवं स्तुत्वा महासेनं पप्रच्छ शिखिवाहनम् ॥२४
यदेतद्दृश्यते वर्णं शुभ्रं शुभ्राञ्जनप्रभम् ।
तत्किमर्थं समुत्पन्नं कण्ठे कुन्देन्दुसंप्रभे ॥२५
एतदाप्ताय भक्ताय दान्ताय ब्रूहि पृच्छते ।
कथां मङ्गलसंयुक्तां पवित्रां पापनाशिनीम् ।
मत्प्रियार्थं महाभाग वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥२६
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
प्रत्युवाच महातेजाः सुरारिबलसूदनः ॥२७
शृणुष्व वदतां श्रेष्ठ कथ्यमानं वचो मम ।
उमोत्सङ्गनिविष्टेन मया पूर्वं यथाश्रुतम् ॥२८

वसिष्ठ जी ने कहा—महादेव को आनन्द प्रदान करने वाले हे उमागर्भ ! आपको हमारा नमस्कार है। अग्निगर्भ आपके लिये हे गङ्गागर्भ ! हमारा नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे कृत्तिका सुत ! शरगर्भ ! आपके लिये नमस्कार है। द्वादश नेत्रों वाले तथा षट् मुखों वाले आपके लिये नमस्कार है। शक्ति को हाथ में रखने वाले तथा दिव्य घण्टा और पताका वाले आपके लिये नमस्कार

है। इस प्रकार से स्तवन करके शिखी के वाहन वाले महासेन से पूछा ॥ २३-२४ ॥ जो यह शुभ्र अञ्जन की प्रभा के समान शुभ वर्ण है वह कुन्द एवं इन्दु के सदृश प्रभा वाले कण्ठ में नीलता कैसे उत्पन्न हुई है ॥२५॥ यह आप्त-भक्त-दान्त तथा मङ्गल से संयुक्त-पवित्र और पापों के नाश करने वाली कथा के पूछने वाले मुझे बतलाइये। हे महाभाग। मेरे प्रिय के लिये आप सम्पूर्ण रूप से कहने के योग्य होते हैं ॥२६॥ इसके अनन्तर महात्मा उस वशिष्ठ के वचन को सुनकर सुरों के शत्रुओं के बल के नाशक महान् तेज से युक्त वायु ने कहा है ॥२७॥ हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! कहे जाने वाले मेरे वचन का श्रवण करो जोकि उमा के गोद में बैठे हुए मैंने पहिले जैसा भी कुछ सुना है ॥२८॥

पार्वत्या सह संवादः शर्वस्य च महात्मनः।
तदहङ्कीर्त्तयिष्यामि त्वत्प्रियार्थं महामुने ॥२९
विशुद्धमुक्तामणिरत्नभूषिते शिलातले हेममये मनोरमे।
सुखोपविष्टं मदनाङ्गनाशन प्रोवाच वाक्यं गिरिराजपुत्री ॥३०
भगवन् भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन।
तव कण्ठे महादेव भ्राजतेऽम्बुदसन्निभम् ॥३१
नात्युल्बणं नातिशुभ्रं नीलाञ्जनचयोपमम्।
किमिदं दीप्यते देव कण्ठे कामाङ्ग नाशन ॥३२
को हेतुः कारणं किञ्च कण्ठे नीलत्वमीश्वर।
एतत्सर्वं यथान्यायं ब्रूहि कौतूहलं हि मे ॥३३
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्याः पार्वत्याः पार्वतीप्रियः।
कथां मङ्गलसंयुक्तां कथयामास शङ्करः ॥३४
मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीरोदे सुरदानवैः।
अग्रे समुत्थितं तस्मिन् विषं कालानलप्रभम् ॥३५
तं दृष्ट्वा सुरसङ्घाश्च दैत्याश्चैव वरानने।
विषण्णवदनाः सर्वे गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥३६

विशुद्ध मुक्ता और मणियों तथा रत्नों से भूषित-हेममय एवं परम सुन्दर शिलातल पर सुखपूर्वक विराजमान मदन के अंग को दग्ध करने वाले

शम्भु से गिरिराज पुत्री बोली ।।२९।। देवी ने कहा—हे भगवान् ! हे भूत भव्येश ! हे गो वृषाङ्कित शासन ! हे महादेव । आपके कण्ठ में अम्बुद के तुल्य भ्राजमान होता है । हे काम के अङ्ग के नाशन । यह न तो अत्यन्त उल्वण ही है और न शुभ्र ही है—यह नीले अञ्जन के ढेर के समान हे देव ! क्या कण्ठ दीप्यमान हो रहा है ।।३०-३१।। हे ईश्वर ! में नीलत्व होने का क्या हेतु है और क्या कारण है ? यह सभी यथान्याय बतलाइये, मुझे इस बात के सम्बन्ध में बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ।।३२।। इसके उपरान्त पार्वती के प्रिय ने उस अपनी प्रिया पार्वती का यह वचन सुनकर शङ्कर भगवान् ने मङ्गल से संयुक्त कथा को कहना आरम्भ किया था ।।३३।। पहिले समय में देव और दानवों के द्वारा क्षीर समुद्र के मथ्यमान होने पर अर्थात् अमृत के लिये उसका मन्थन किये जाने पर प्रथम उसमें काले अनल के प्रभा के समान विष उत्पन्न हुआ था ।।३४।. हे वर आनन वाली । उसको देख कर देवों के समुदाय और दैत्यों के समूह भी सभी बहुत ही विषाद से युक्त मुख वाले हो कर ब्रह्मा जी के समीप में गये ।।३५।।३६।।

दृष्ट्वा सुरगणान् भीतान् ब्रह्मोवाच महाद्युतिः ।
किमर्थं भो महाभागा भीता उद्विग्नचेतसः ।।३७

मयाष्टगुणमैश्वर्यं भवतां सम्प्रकल्पितम् ।
केन व्यावर्त्तितैश्वर्या यूयं वै सुरसत्तमाः ।।३८

त्रैलोक्यस्येश्वरा यूयं सर्वे वै विगतज्वराः ।
प्रजासर्गे न सोऽस्तीह आज्ञां यो मे निवर्त्तयेत् ।।३९

विमानगामिनः सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिनः ।
अध्यात्मे चाधिभूते च अधिदैवे च नित्यशः ।
प्रजाः कर्मविपाकेन शक्ता यूयं प्रवर्त्तितुम् ।।४०

तत्किमर्थं भयोद्विग्ना मृगाः सिंहार्दिता इव ।
किं दुःखं केन सन्तापः कुतो वा भयमागतम ।
एतत्सर्वं यथान्यायं शीघ्रमाख्यातुमर्हथ ।।४१

उस समय में समस्त देवों के गणों को बहुत ही भीत देख कर श्रीब्रह्मा-जी जो कि महान् द्युति वाले थे बोले—हे महान् भाग वालों। आप लोग किस लिये इतने भयभीत (डरे हुए) और उद्विग्न चित्त वाले हो रहे हैं ॥२७॥ मैंने आप लोगों को आठ गुण वाला ऐश्वर्य सम्प्रकल्पित किया है। अब किसके द्वारा वह ऐश्वर्य व्यावर्तित कर दिया गया है जो आप उससे रहित से हे सुरश्रेष्ठो! इस समय हो रहे हैं! ॥३७॥ आप सब तीनों लोकों के ईश्वर हैं और आप सब समस्त प्रकार के दुख से रहित हैं। इस प्रजा की सृष्टि में कोई भी ऐसा नहीं है जो कि मेरी आज्ञा को निवर्त्तन कर देवे ॥३८॥ आप सब तो वायु में उड़ कर जाने वाले विमानों से गमन करने वाले हैं और अत्यन्त स्वच्छन्द रूप से गमन करने वाले हैं। आप समस्त प्रजा को आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधि दैविक में नित्य ही कर्मों के विपाक से प्रवृत्त करने के लिये समर्थ हैं। ॥३९॥ फिर आप किस कारण से सिंह के द्वारा सताये गये मृगों के समान ऐसे भय से उद्विग्न हो रहे हैं? क्या दुःख है? किसके द्वारा सन्ताप प्राप्त हो रहा है? भय कहाँ से प्राप्त हो रहा है? यह सभी बात न्यायानुसार शीघ्र आप लोग बताने को योग्य होते हैं ॥४०॥४१॥

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य ब्रह्मणो वै महात्मनः।
ऊचुस्ते ऋषिभिः सार्द्धं सुरदैत्येन्द्रदानवाः ॥४२
सुरासुरैर्मथ्यमाने पाथोधौ च महात्मभिः।
भुजङ्गभृङ्गसङ्काशं नीलजीमूतसन्निभम्।
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम् ॥४३
कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम्।
त्रैलोक्योत्सादि सूर्याभं प्रस्फुरन्तं समन्ततः ॥४४
विषेणोत्तिष्ठमानेन कालानलसमत्विषा।
निर्दग्धो रक्तगौराङ्गः कृतकृष्णो जनार्दनः ॥४५
दृष्ट्वा तं रक्तगौराङ्गं कृतकृष्णं जनार्दनम्।
भीताः सर्वे वयं देवास्त्वामेव शरणं गताः ॥४६
सुराणामसुराणाञ्च श्रुत्वा वाक्यं पितामहः।

प्रत्युवाच महातेजा लोकानां हितकाम्यया ।।४७
शृणुध्वं देवताः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ।
यत्तदग्रे समुत्पन्नं मथ्यमाने महोदधौ ।।४८
विषं कालानलप्रख्यं कालकूटेति विश्रुतम् ।
येन प्रोद्भूतमात्रेण कृतकृष्णो जनार्दनः ।।४९

इस प्रकार से महान् आत्मा वाले ब्रह्मा जी के इस वाक्य को सुनकर उस समय ऋषियों के साथ में रहने वाले देव-असुर और दानव सभी ने कहा ।।४२।। महात्मा देव और असुरों के द्वारा पाथोधि के मन्थन किये जाने पर कृष्णसर्प तथा भौंरा के समान एवं नील वर्ण वाले मेघ के तुल्य सम्वर्ताग्नि की प्रभा वाला घोर विष उसमें से प्रादुर्भूत हुआ है ।।४३।। काल मृत्यु की भाँति उद्भूत वह है जोकि युग के अन्त समय में आदित्य के वर्चस के समान वर्चसवाला, त्रैलोक्य को उत्सादित करने वाले चारों ओर से प्रस्फुरित सूर्य की आभा वाला, है ।।४४।। उस कालानल के समान कान्ति वाले उत्तिष्ठमान विष से निर्दग्ध रक्त और अङ्ग वाले जनार्दन कृतकृष्ण हो गये हैं ।।४५।। उन रक्त और अङ्ग से युक्त जनार्दन को कृष्णीभूत देखकर हम सभी भीत होते हुए देवगण इस समय आपकी शरण में आये हुए हैं ।।४६।। तब तो पितामह श्रीब्रह्माजी ने सुर तथा असुरों के इस बचन को सुनकर महान् तेज से युक्त लोकों के हित की कामना से कहा—।। ४७ ।। हे समस्त देवताओं और हे तप के हो धन वाले समस्त ऋषिगणों ! सुनिये, जो सबसे पहिले समुद्र मन्थन करने पर उत्पन्न हुआ करता है वह काले अनल के समान विष कालकूट विश्रुत है जिसके उत्पन्न होने मात्र से ही जनार्दन कृत कृष्ण हो गये हैं ।।४८।।४९।।

तस्य विष्णुरहञ्चापि सर्वे ते सुरपुङ्गवाः ।
न शक्नुवन्ति वै सोढुं वेगमन्ये तु शङ्करात् ।।५०
इत्युक्त्वा पद्मगर्भाभः पद्मयोनिरयोनिजः ।
ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः ।।५१
ततः प्रीतो ह्यहं तस्मै ब्रह्मणे सुमहात्मने ।
ततोऽहं सूक्ष्मया वाचा पितामहमथाब्रुवम् ।।५२

भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ।
किं कार्यं ते मया ब्रह्मन् कर्त्तव्यं वद सुव्रत ॥५३
श्रुत्वा वाक्यं ततो ब्रह्मा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षण: ।
भूतभव्यभवन्नाथ श्रूयतां कारणेश्वर ॥५४
सुरासुरैर्मथ्यमाने पयोधावम्बुजेक्षण ।
भगवन्मेघ सङ्काशं नीलजीमूतसन्निभम् ॥५५
प्रादुर्भूतं विषङ्घोरं संवर्त्ताग्निसमप्रभम् ।
कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्च्चसम् ॥५६
त्रैलोक्योत्सादि सूर्याभं विस्फुरन्तं समन्तत: ।
अग्रे समुत्थितं तस्मिन् विषङ्कालानलप्रभम् ॥५७

उसके इस महान् वेग को भगवान् विष्णु—मैं और सभी सुरों में श्रेष्ठ आप लोग कोई सहन करने में समर्थ नहीं है केवल शङ्कर ही उसे सहन कर सकते हैं ॥५०॥ यह कह कर पद्मगर्भ की आभा वाले-अयोनिज और पद्मयोनि लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने स्तुति करने का आरम्भ कर दिया ॥५१॥ इसके अनन्तर उन सुमहात्मा ब्रह्मा पर मैं परम प्रसन्न हो गया और सूक्ष्म वाणी से मैंने पितामह से कहा ॥५२॥ हे भगवन् ! हे भूत और भव्य के स्वामिन् ! हे लोकों के नाथ ! हे जगत् के पति ! हे ब्रह्मन् ! आपको मुझसे क्या कराना है वह सुव्रत ! अब आप मुझे बतादेवें ॥५३॥ कमल के समान नेत्रों वाले ब्रह्मा जी ने मेरे इस वाक्य को सुन कर फिर कहा—॥५४॥ संवर्त्ताग्नि के समान प्रभा वाला महाघोर विष प्रादुर्भूत हो गया है । वह विष कालमृत्यु की भाँति उद्भूत हुआ है जो युग के अन्त में हो जाने वाले आदित्य के तुल्य वर्चस वाला और त्रैलोक्य के उत्सादन करने वाले सूर्य की अभावाला है, जोकि सभी ओर विशेष रूप से स्फुरित है । वह कालानल के समान प्रभा वाला सबसे आगे समुत्थित है ॥५५॥५६॥५७॥

तं दृष्ट्वा तु वयं सर्वे भीता: सम्भ्रान्तचेतस: ।
तत् पिबस्व महादेव लोकानां हितकाम्यया ।
भवानग्र्यस्य भोक्ता वै भवांश्चैव वर: प्रभु: ॥५८

त्वामृतेऽन्यो महादेव विषं सोढुं न विद्यते ।
नास्तिकश्चित् पुमान् शक्तस्त्रैलोक्येषु च गीयते ॥५६
एवं तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
बाढमित्येव तद्वाक्यं प्रतिगृह्य वरानने ॥६०
ततोऽहं पातुमारब्धो विषमन्तकसन्निभम् ।
पिवतो मे महाघोरं विषं सुरभयंकरम् ।
कण्ठः समभवत्तूर्णं कृष्णो मे वरवर्णिनि ॥६१
तं दृष्ट्वोत्पलपत्राभं कण्ठे सक्तमिवोरगम् ।
तक्षकं नागराजानं लेलिहानमिव स्थितम् ॥६२
अथोवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
शोभसे त्वं महादेव कण्ठेनानेन सुव्रत ॥६३
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मया गिरिवरात्मजे ।
पश्यतां देवसङ्घानां दैत्यानाञ्च वरानने ॥६४
यक्षगन्धर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् ।
धृतं कण्ठे विषं घोरं नीलकण्ठस्ततो ह्यहम् ॥६५

उसे देख कर हम सब सम्भ्रान्त चित्त वाले डरे हुए हैं सो उसे हे महादेव ! आप लोकों की हितकामना से पान कर जाइये । आप सबसे पूर्व में निकलने वाले का भोग करने वाले हैं और आप ही प्रभु वरदान हैं ॥५८॥ हे महादेव । आपको छोड़कर अन्य किसी की भी सामर्थ्य नहीं है जो उस विषको सहन कर सके । इस त्रैलोकी में ऐसा शक्तिशाली कोई पुरुष नहीं बताया जाता है ॥५६॥ हे वरानने ! परमेष्ठी ब्रह्माजी के इस प्रकार के वचन को सुनकर 'बहुत अच्छा'—यही वचन कह कर मैंने स्वीकार कर लिया था ॥६०॥ उस अन्तिक-सन्निभ विष को पीना आरम्भ कर दिया था । उस महान् घोर सुरों को भी भय देने वाले विष को पान करते हुए मेरा कण्ठ हे वर वर्णिनी ! तुरन्त ही कृष्ण हो गया था ॥६१॥ उत्पल की आभा वाले-कण्ठ में संसक्त उरग की भाँति-चाटते हुए नागराज तक्षक के समान स्थित उस को देख कर पितामह बोले॥६२॥ इसके उपरान्त महान् तेज से युक्त लोक पितामह ब्रह्माजी ने कहा— हे सुव्रत !

महादेव ! आप इस नील वर्ण वाले कण्ठ से परम शोभा को प्राप्त होते हैं ।।६३।। हे गिरिवर की आत्मजे ! इसके पश्चात् मैंने उनके इस वचन को सुन कर देवों के समूह—दैत्य—यक्ष-गन्धर्व भूत—पिशाच-उरग और राक्षस आदि सब के देखते हुए फिर उस महाविष को कण्ठ में ही धारण कर लिया था । तब से ही मैं नीलकण्ठ हो गया हूँ ।।६५।।

।। प्रकर्ण ३७ - लिङ्गोद्भव स्तुति ।।

गुणकर्मप्रभावैश्च कोऽधिको वदतां वरः ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यगाश्चर्यं गुणविस्तरम् ।।१
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
महादेवस्य माहात्म्यं विभुत्वञ्च महात्मनः ।।२
पूर्वं त्रैलोक्यविजये विष्णुना समुदाहृतम् ।
बलिं बद्धा महौजास्तु त्रैलोक्याधि पतिः पुराः ।।३
प्रणष्टेषु च दैत्येषु प्रहृष्टे च शचीपतौ ।
अथाजग्मुः प्रभुं द्रष्टुं देवाः सवासवाः ।।४
यत्रास्ते विश्वरूपात्मा क्षीरोदस्य समीपतः ।
सिद्धब्रह्मर्षयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ।।५
नागा देवर्षयश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः ।
अभिगम्य महात्मानं स्तुवन्ति पुरुषं हरिम् ।।६
त्वं धाता त्वञ्च कर्त्ताऽस्य त्वं लोकान् सृजसि प्रभो ।
त्वत्प्रसादाच्च कल्याण प्राप्तं त्रैलोक्यमव्ययम् ।
असुराश्च जिताः सर्वे बलिर्बद्धश्च वै त्वया ।।७

ऋषियों ने कहा—बोलने वालों में श्रेष्ठ गुण-कर्म और प्रभाव से कौन अधिक है । इस गुणों के विस्तार वाले आश्चर्य को हम सुनना चाहते हैं ।।१।। श्रीसूतजी ने कहा—यहाँ पर इस पुरातन इतिहास का उदाहरण देते हैं जिसमें महादेव का माहात्म्य और उन महान आत्मा वाले का विभुत्व वर्णित होता है ।।२।। पहिले त्रैलोक्य के विजय में भगवान् विष्णु ने समुदाहृत किया

है। ओज से युक्त त्रैलोक्य के अधिपति ने पहले समय में बलिराजा को बाँधकर ही यह उदाहृत किया था ।३। समस्त दैत्यों के नष्ट हो जाने पर शची के पति इन्द्रदेव के परम प्रसन्न होने पर इसके उपरान्त इन्द्र के सहित समस्त देवगण प्रभु के दर्शन करने के लिये आये थे ।।४।। वह विश्वरूपात्मा क्षीरसागर के समीप में जहाँ पर थे वहाँ सिद्ध—ब्रह्मर्षि—यक्ष—गन्धर्व—अप्सराओं के समूह-नाग-देवर्षि नदी-समस्त पर्वत आकर महान् आत्मा वाले पुरुष हरि का स्तवन करते हैं ।।५।। ।।६।। हे प्रभो ! इस समस्त विश्व के आप ही धाता है-आप ही कर्त्ता हैं और आप ही इन लोकों का सृजन किया करते हैं। आपके प्रसाद से ही यह अव्यय त्रैलोक्य कल्याण को प्राप्त होता है। आपने समस्त असुरों को जीत लिया है है और असुरों के राजा बलि को भी बद्ध कर लिया है ।।७।।

एवमुक्तः सुरैर्विष्णुः सिद्धैश्च परमर्षिभिः ।
प्रत्युवाच ततो देवान् सर्वास्तान् पुरुषोत्तमः ।।८
श्रूयतामभिधास्यामि कारणं सुरसत्तमाः ।
यः स्रष्टा सर्वभूतानां कालः कालकरः प्रभुः ।।९
येन हि ब्रह्मणा सार्द्धं सृष्टा लोकाश्च मायया ।
तस्यैव च प्रसादेन आदौ सिद्धत्वमागतम् ।।१०
पुरा तमसि चाव्यक्ते त्रैलोक्ये ग्रासिते मया ।
उदरस्थेषु भूतेषु लोकेऽहं शयितस्तदा ।।११
सहस्रशीर्षा भूत्वा च सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
शङ्खचक्रगदा पाणिः शयितो विमलेऽम्भसि ।।१२
एतस्मिन्नन्तरे दूरात् पश्यामि ह्यमितप्रभम् ।
शतसूर्यप्रतीकाशं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ।।१३
चतुर्वक्रं महायोगं पुरुषं काञ्चनप्रभम् ।
निमेषान्तरमात्रेण प्राप्तोऽसौ पुरुषोत्तमः ।।१४

इस प्रकार से कहे हुए सुर-सिद्ध और वह महर्षियों के द्वारा स्तुत भगवान् विष्णु पुरुषोत्तम समस्त देवों से कहने लगे ।।८।। हे सुरसत्तमो ! इसका कारण मैं बताऊँगा आप सब सुनिये। जो समस्त प्राणिओं का सृजन करने

वाला है वह काल को भी करने वाला प्रभु काल है ॥९॥ जिस ब्रह्मा के साथ माया से लोकों का सृजन किया गया है उसी के प्रसाद से आदि में सिद्धत्व को आया ॥१०॥ पहिले अव्यक्त तममे मेरे द्वारा त्रैलोक्य के ग्रासित होने पर उस समय समस्त प्राणियों के उदरस्थ होने पर मैं लोक में शयन करने वाला था ॥११॥ मैं उस समय सहस्र शीर्षों वाला-सहस्र नेत्रों से युक्त तथा सहस्र चरणों वाला शंख-चक्र-गदा हाथों में लिये हुए विमल जल में शयन करता था। ॥१२॥ इसी बीच में दूर से अमित प्रभा वाले तथा एक शत सूर्यों के प्रतीकाश अपने ही तेज से ज्वलन्त होते हुए चारमुखों वाले-महान् योग से युक्त सुवर्ण के जैसी प्रभा से परिपूर्ण-कृष्ण मृग चर्मधारी-कमण्डलु से भूषित देव पुरुष को देखता हूँ जोकि एक निमिष में ही यह पुरुषोत्तम प्राप्त हो गया ॥१४॥

ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोके नमस्कृतः ।
कस्त्वं कुतो वा किञ्चेह तिष्ठसे वद मे विभो ॥१५
अहं कर्त्ताऽस्मि लोकानां स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः ।
एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाहमुवाचतम् ॥१६
अहं कर्त्ता च लोकानां संहर्त्ता च पुनः पुनः ।
एवं सम्भाषमाणाभ्यां परस्परजयैषिणाम् ।
उत्तरां दिशमास्थाय ज्वाला दृष्टाप्यधिष्ठिता ॥१७
ज्वालान्ततस्तामालोक्य विस्मितौ च तदानयोः ।
तेजसा चैव तेनाथ सर्वं ज्योतिःकृतं जलम् ॥१८
वर्द्धमाने तदा वह्नावत्यन्तपरमाद्भुते ।
अतिदुद्राव तां ज्वालां ब्रह्मा चाहञ्च सत्वरः ॥१९
दिवं भूमिञ्च विष्टभ्य तिष्ठन्तं ज्वालमण्डलम् ।
तस्य ज्वालस्य मध्ये तु पश्यावो विपुलप्रभम् ॥२०
प्रादेशमात्रमव्यक्तं लिङ्गं परमदीपिम् ।
न च तत्काञ्चनं मध्ये न शैलं न च राजतम् ॥२१

इसके अनन्तर समस्त लोकों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्दित ब्रह्मा जी ने मुझसे कहा —हे विभो ! आप कौन हैं-कहाँ से और क्यों यहाँ स्थित हैं, मुझे

बतलाइये ॥१५॥ मैं तो समस्त लोकों का कर्त्ता हूँ और विश्वतोमुख स्वयम्भू हूँ। इस प्रकार से उस ब्रह्मा के द्वारा कहे गये मैंने उनसे कहा—॥१६॥ इन समस्त लोकों का सृजन करने वाला तथा संहार करने वाला और बार-बार ऐसा ही करते रहने वाला मैं हूँ। इस तरह से आपस में सम्भाषण करने वाले दोनों के, जोकि परस्पर में जय प्राप्त करने की इच्छा वाले थे उत्तर दिशा में आस्थित होकर अधिष्ठित ज्वाला देखी गई ॥१७॥ ज्वाला के मध्य से उसको देखकर विस्मित हुए। तव इनके तेज से सब जल ज्योतिकृत होगया ॥१८॥ उस समय अत्यन्त एवं परम अद्भुत वह्नि के बढ़जाने पर ब्रह्मा और मैंने शीघ्रता से उस ज्वाला का अति द्रवण किया ॥१९॥ दिव और भूमि को विष्टवन करके स्थित रहने वाले उस ज्वालाओं के मण्डल के मध्य में एक विपुल प्रभा वाले पुरुष को हम दोनों देखते हैं ॥२०॥ वह प्रादेश मात्र अत्यन्त दीपित अव्यक्त लिङ्ग था। न तो कंचन था, मध्य में न राजत (चाँदी का) शैल ही था ॥२१॥

अनिर्द्देश्यमचिन्त्यञ्च लक्ष्यालक्ष्यं पुनः पुनः।
महौजसं महाघोरं वर्द्धमानं भृशं तदा।
ज्वालामालायतं न्यस्तं सर्वभूतभयङ्करम् ॥२२
अस्य लिङ्गस्य योऽन्त ध गच्छते मन्त्रकारणम्।
घोर रूपिणमत्यर्थं भिन्दन्तमिव रोदसी ॥२३
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा अधो गच्छ त्वतन्द्रितः।
अन्तमस्य विजानीमो लिङ्गस्य तु महात्मनः ॥२४
अहं मूर्द्ध्वं गमिष्यामि यावदन्तोऽस्य दृश्यते।
तदा तौ समयं कृत्वा गतावूर्द्ध्वमधश्च ह ॥२५
ततो वर्षसहस्रन्तु अहं पुनरधो गतः।
न च पश्यामि तस्यान्तं भीतश्चाहं न संशयः ॥२६
तथा ब्रह्मा च श्रान्तश्च न चान्तन्तस्य पश्यति।
समागतो मया सार्द्धं तत्रैव च महाम्भसि ॥२७
ततो विस्मयमापन्नावुभौ तस्य महात्मनः।
मायया मोहितौ तेन नष्टसंज्ञौ व्यवस्थितौ ॥२८

वह अनिर्देश्य और न चिन्तन करने के योग्य तथा बार-बार लक्ष्य-लक्ष्य था। महान् ओज से युक्त- महाघोर और उस समय बहुत ही अधिक बढने वाला था। ज्वालामाला जैसा आयत एवं न्यस्त तथा समस्त प्राणियों को महा भयङ्कर था ॥२२ इस लिङ्ग के जो अन्त तक जाता है उसका कारण मंत्र ही है। वह अत्यन्त घोर रूप धारी ऐसा था मानों रोदसी का भेदन करता हुआ हो ॥२३॥ इस के अनन्तर ब्रह्मा ने मुझसे कहा कि आप अतन्द्रित होते हुए नीचे की ओर जावें। इस महात्मा लिङ्ग का अन्त हम जान लेवें ॥२४॥ मैं ऊपर के भाग में जाता हूँ जब तक कि इसका अन्त दिखाई देता है। तब उस समय बस प्रकार से वायदा करके ऊद्ध्र्वभाग में तथा अधोभाग में गये ॥२५॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक मैं वहाँ नीचे के भाग में गया था। वहाँ मैंने उसक कहीं अन्त नहीं देखा और मैं भीत हो गया—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२६॥ उसी प्रकार से ब्रह्मा भी श्रान्त हो गये और वह भी उसका अन्त नहीं देखते हैं और मेरे साथ उसी महाजल में बापिस आगये थे ॥२७॥ तब हम दोनों उस महात्मा के विषय में परम आश्चर्य को प्राप्त हुए और उसके द्वारा माया से मोहित हो गये एवं नष्ट संज्ञा वाले होकर व्यवस्थित हो गये थे ॥२८॥

ततो ध्यानगतन्तत्र ईश्वरं सर्वतोमुखम् ।
प्रभवं निधनञ्चैव लोकानां प्रभुमव्ययम् ॥२९
ब्रह्माञ्जलिपुटो भूत्वा तस्मै शर्वाय शूलिने ।
महाभैरवनादाय भीमरूपाय दंष्ट्रिणे ।
अव्यक्ताय महान्ताय नमस्कारं प्रकुर्महे ॥३०
नमोऽस्तु ते लोकसुरेश देव नमोऽस्तु ते भूतपते महांश्च ।
नमोऽस्तु ते शाश्वत सिद्धयोने नमोऽस्तु ते सर्वजगत्प्रतिष्ठ ॥३१
परमेष्ठी परं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम् :
श्रेष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कन्दः शिवः प्रभुः ॥३२
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परं पदम् ।
स्वाहाकारो नमस्कारः संस्कारः सर्वकर्मणाम् ॥३३
स्वधाकारश्च जाप्यश्च व्रतानि नियमास्तथा ।

वेदा लोकाश्च देवाश्चभगवानेव सर्वशः ॥३४
आकाशस्य च शब्दस्त्वं भूतानां प्रभवाव्ययम् ।
भूमेर्गन्धो रसश्चापां तेजोरूपं महेश्वर ॥३५

इसके अनन्तर वहाँ पर सर्वतोमुख ईश्वर के ध्यानगत हुए जो लोकों के प्रभव तथा निधन एवं अव्यष्ट प्रभु थे ॥२९॥ तब ब्रह्माजी अञ्जलिपुट वाले होकर उन शर्व—शूलधारण करने वाले—महान् भैरवनाद वाले—भीम रूप धारी- दंष्ट्रा वाले-अव्यक्त और महान्त के लिये नमस्कार करते हैं ॥३०॥ हे लोक सुरेश ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है । हे भूतों के पति । हे महान् । आपके लिये नमस्कार है । हे शाश्वत ! हे सिद्धयोनि ! आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥३१॥ आप परमेष्ठी-परब्रह्म-अक्षर और परम पद हैं । आप श्रेष्ठ है । वामदेव-रुद्र-स्कन्द-शिव और प्रभु हैं ॥३२॥ आप यज्ञ हैं-वषटकार हैं-ओङ्कार हैं और परम पद हैं । आप हो स्वाहाकार हैं । नमस्कार हैं । जाप्य हैं-आप ही व्रत हैं और नियम रूप हैं । वेद और लोक तथा देव और सब प्रकार से भगवान् ही आप हैं ॥३४॥ आप इन आकाश के शब्द हैं और आप प्राणियों के प्रभव तथा अव्यय हैं । भूमि के गन्ध,जलों के रस और तेज के रूप ! हे महेश्वर ! यह सब आप ही हैं ॥३५॥

वायोः स्पर्शश्च देवश्च वपुश्चन्द्रमस स्तथा ।
बुधो ज्ञानश्व देवेश प्रकृतो बीजमेव च ॥३६
त्वं कर्ता सर्वभूतानां कालो मृत्युर्यमोऽन्तकः ।
त्वं धारयसि लोकांस्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो ॥३७
पूर्वेण वदनेन त्वमिन्द्रत्वश्च प्रकाशसे ।
दक्षिणेन च वक्त्रेण लोकान् संक्षीयसे प्रभो ॥३८
पश्चिमेन तु वक्त्रेण वरुणत्वं करोषि वै ।
उत्तरेण तु वक्त्रेण सौम्यत्वञ्च व्यवस्थितम् ॥३९
राजसे बहुधा देव लोकानां प्रभवाव्ययः ।
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनीसुतौ ॥४०
साध्या विद्याधरा नागाश्चारणाश्च तपोधनाः ।

वालखिल्या महात्मानस्तपः सिद्धाश्च सुव्रताः ।।४१
त्वत्तः प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रताः ।
उमा सीता सिनी वाली कुहूर्गायत्रिरेव च ।।४२
लक्ष्मीः कीर्त्तिर्धृतिर्मेधा लज्जा क्षान्तिर्वपुः स्वधा ।
तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव वाचां देवी सरस्वती ।
त्वत्तः प्रसूता देवेश सन्ध्या रात्रिस्तथैव च ।।४३

वायु का स्पर्श, देव तथा चन्द्रमा का वपु आप ही हैं। बुध-ज्ञान और प्रकृति में बीज भी हे देवेश । आप ही हैं । ।।३६।। आप समस्त प्राणियों के कर्त्ता काल-मृत्यु-यम और अन्तक आप ही हैं । आप इन तीनों लोकों को धारण किया करते हैं और हे प्रभो ! आप ही इनका सृजन भी किया करते हैं ।।३७।। आप पूर्व वदन से इन्द्रत्व का प्रकाश करते हैं, दक्षिण वक्त्र से हे प्रभो ! आप लोकों का संक्षय किया करते हैं तथा पश्चिम वक्त्र से वरुणत्व को करते हैं और आप अपने उत्तार वक्त्र से सौम्यत्व की व्यवस्था करते हैं ।।३८।।३९।। हे देव ! बहुवा लोकों का प्रभवाव्यय आदित्य-वसु-मरुत और अश्विनी सुत हैं ।।४०।। तथा साध्य-विद्याधर-नाग-चारण, तपोधन वालखिल्य-महात्मा-तप-सिद्ध और सुव्रत ये सब हे देवेश ! तथा अन्य नियम व्रत वाले आपसे ही प्रसूत हुए हैं । उमा-सीता सिनीवाली-कुहू-गायत्री-लक्ष्मी-कीर्ति-धृति मेधा-लज्जा-वपु-स्वधा-तुष्टि-पुष्टि-क्रिया और वाणियों की देवी सरस्वती-सन्ध्या तथा रात्रि ये सभी हे देवेश ! आप से ही प्रसूत हैं ।।४१।।४२।।४३।।

सूर्यायुतानामयुतप्रभा च नमोऽस्तु ते चन्द्रसहस्रगोचर ।
नमोऽस्तु ते पर्वतरूपधारिणे नमोऽस्तु ते सर्वगुणा कराय ।।४४
नमोऽस्तु ते पट्टिशरूपधारिणे नमोऽस्तु चर्मविभूतिधारिणे ।
नमोऽस्तु ते रुद्रपिनाकपाणये नमोऽस्तु ते सहायकचक्रधारिणे ।।४५
नमोऽस्तु ते भस्मविभूषिताङ्ग नमोऽस्तु ते कामशरीरनाशन ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाससे नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहवे ।।४६
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरूप नमोस्तु ते देव हिरण्यनाभ ।
नमोऽस्तु ते नेत्रसहस्रचित्र नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरेतः ।।४७

नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्ण नमोऽस्तु ते देव हिरण्यगर्भ ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यचीर नमोऽस्तु ते देव हिरण्यदायिने ।।४८
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यमालिने नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाहिने ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्मने नमोऽस्तु ते भैरवनादनादिने ।।४९
नमोऽस्तु ते भैरववेगवेग नमोऽस्तु ते शङ्कर नीलकण्ठ ।
नमोऽस्तु ते दिव्यसहस्रबाहो नमोऽस्तु ते नर्त्तनवादनप्रिय ।।५०

हे चन्द्रसहस्र गोचर ! अयुत सूर्यो जैसी अयुत प्रभा है आपके लिये नमस्कार है । पर्वत के रूप को धारण करने वाले तथा समस्त के आकर आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है ।।४४।। पट्टिश रूप के धारी तथा चर्म और विभूति के धारण करने वाले आपके लिये नमस्कार है । रुद्र पिनाकपाणि के लिये नमस्कार है तथा सारे भस्म से विभूषित अङ्गों वाले हे देव ! हे हिरण्यनाभ ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे काम के शरीर को नाश करने वाले ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे देव ! हे नेत्र सहस्रचित्र ! हे हिरण्यरेतः ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है ।।४६।।४७।। हे हिरण्यवर्ण ! हे हिरण्यगर्भ ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है । हे हिरण्य चीरदेव ! हिरण्य के देने वाले आपके लिये नमस्कार है ।।४८।। हिरण्य की माला वाले और हिरण्यवाही आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है । भैरवनाद के नादी तथा हिरण्यवर्मा आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है ।।४९।। हे भैरव वेग ! हे नीलकण्ठ ! आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है । हे दिव्य सहस्रबाहु वाले ! हे नृत्य और वादन पर प्यार करने वाले ! आप के लिये नमस्कार है ।।५०।।

एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महामतिः ।
भाँतिदेवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभः ।।५१
अभिभाष्यस्तदा हृष्टो महादेवो महेश्वरः ।
वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवापरम् ।।५२
एकग्रीवस्त्वेकजटो नानाभूषणभूषितः ।
नानाचित्रविचित्राङ्गो नानामाल्यानुलेपनः ।।५३

पिनाकपाणिर्भगवान् वृषभासनशूलधृक् ।
दण्डकृष्णाजिनधरः कपालो घोररूपधृक् ॥५४
व्यालयज्ञोपवीती च सुराणामभयङ्करः ।
दुन्दुभिस्वननिर्घोषपर्जन्यनिनदोपमः ।
मुक्तो हासस्तदा तेन नभः सर्वं मपूरयत् ॥५५
तेन शब्देन महता वयं भीता महात्मनः ।
तदोवाच महायोगो प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ ॥५६
पश्येताञ्च महामायां भयं सर्वं प्रमुच्यत्ताम् ।
युवां प्रसूतौ गात्रेषु मम पूर्वसनातनौ ॥५७

इस प्रकार भली भाँति स्तुति किये जाने वाले महाभति व्यक्त हो कर महायोगी और करोड़ों सूर्य के समान प्रभावाले देव शोभा देते हैं ॥५१॥ उस समय में प्रसन्न महेश्वर महादेव अभिभाषण करने के योग्य थे । उस समय वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे सहस्रों करोड़ मुखों से अपर को ग्रसमान हो रहे हों ॥५२॥ एक ग्रीवा वाले-एक जटाधारी-अनेक भूषित-नाना चित्रों से विचित्र अङ्गों वाले और अनेक प्रकार की माल्य तथा अनुलेपन से युक्त -पिनाक को हाथ में लिये हुए- वृषभ के आसन पर शूल को धारण करने वाले तथा दण्ड और कृष्ण अजिन को धारण करने वाले, कपाली और घोर रूप को रखने वाले शिव हैं ॥५३॥५४॥ व्याल के यज्ञोपवीत को पहिने हुए और देवों को अभय का दान देने वाले तथा दुन्दुभि की ध्वनि के समान शब्द वाले एव मेघ की गर्जना के सदृश ध्वनि से युक्त उन शिवने उस समय हास छोड़ा था जिससे समस्त आकाशमण्डल पूरित हो गया था ॥५५॥ उस समय में उस हास के महान् शब्द से जोकि उन महात्मा ने किया था हम सब डर गये । तब महायोगी बोले- हे सुर सत्तमो ! मैं आपसे प्रसन्न हूँ ॥५६॥ महामाया को देखो और समस्त भय का त्याग करदो । तुम दोनों सनातन मेरे गात्रों में प्रसूत हुए हो ।५७।

अयं मे दक्षिणो बाहुर्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
वामो बाहुश्च मे विष्णुर्नित्यं युद्धेषु तिष्ठति ।
प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं ददमि यथेप्सितम् ॥५८

ततः प्रहृष्टमनसौ प्रणतौ पादयोः पुनः ।
ऊचतुश्च महात्मानौ पुनरेव तदानघौ ॥५६
यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर ॥६०
एवमस्तु महाभागौ सृजतां विविधाः प्रजाः ।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥६१
एवमेष मयोक्तो वः प्रभावस्तस्य योगिनः ।
तेन सर्वमिदं सृष्टं हेतुमात्रा वयन्त्विह ॥६२
एतद्धि रूपमज्ञातमव्यक्तं शिवसंज्ञितम् ।
अचिन्त्यं तददृश्यश्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥६३
तस्मै देवाधिपत्याय नमस्कारं प्रयुङ्क्त ह ।
येन सूक्ष्ममचिन्त्यश्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥६४

यह लोकपितामह ब्रह्मा मेरा दक्षिण बाहु है । विष्णु मेरा बाँया बाहु है जोकि नित्य ही युद्धों में वर्त्तमान रहा करते हैं । मैं आप दोनों से परम प्रसन्न हूँ और आपको यथोचित वरदान देता हूँ ॥५८॥ इसके अनन्तर दोनों ही प्रहृष्ट मन प्रणत हुए और फिर चरणों में गिरगये महान् आत्मा वाले और पाप रहित उन दोनों ने फिर कहा—॥५६॥ हे सुरेश्वर ! हे देव ! यदि आपके हृदय में हमारे प्रति प्रीति उत्पन्न हो गई है और हम दोनों को वरदान देना है तो हम यही चाहते हैं कि हम दोनों की आपके चरणों में नित्य भक्ति होवे ॥६०॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे महान् भाग वाले ! ऐसा ही होवे । अब आप दोनों अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन करो । ऐसा कह करके भगवान् वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥६१॥ इस प्रकार से मेरे द्वारा उन योगी का प्रभाव आपके सामने कहा गया है । उसने ही यह सब सृजन किया है, हम तो केवल हेतुमात्र ही हैं ॥६२॥ यह शिव इस संज्ञा वाला रूप अव्यक्त एवं अज्ञात होता है । वह रूप चिन्तन करने के योग्य नहीं है और अदृश्य भी है । ज्ञान के चक्षुवाले ही उसे देखा करते हैं ॥६३॥ उस देवों के अधिपति के लिये नमस्कार का प्रयोग करते हैं जिससे ज्ञान की चक्षु वाले उस सूक्ष्म तया चिन्तन न करने के लिये योग्य को देखा करते हैं ॥६४॥

महादेव नमस्तेऽस्तु महेश्वर नमोऽस्तु ते ।
सुरासुरवर श्रेष्ठ मनोहंस नमोऽस्तु ते ॥६५
एतच्छ्रुत्वा गताः सर्वे सुराः स्वं स्वं निवेशनम् ।
नमस्कारं प्रयुञ्जानाः शङ्कराय महात्मने ॥६६
इमं स्तवं पठेद्यस्तु ईश्वरस्य महात्मनः ।
कामांश्च लभते सर्वान् पापेभ्यस्तु विमुच्यते ॥६७
एतत्सर्वं सदा तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
महादेवप्रसादेन उक्तं ब्रह्म सनातनम् ।
एतद्वः सर्वमाख्यातं मया माहेश्वरं बलम् ॥६८

हे महादेव ! हे महेश्वर ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे सुरासुर वर ¡ हे श्रेष्ठ ! हे मनोहंस ! आपके लिये नमस्कार है ॥६५॥ श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके समस्त देवगण अपने-अपने निवास स्थान को चले गये और जाने के समय में सब महात्मा शङ्कर के लिये नमस्कार करते हुए गये थे ॥६६॥ महान् आत्मा वाले ईश्वर के इस स्तव को जो कोई पढ़ता है वह समस्त कामनाओं को प्राप्त किया करता है और सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता हैं ॥६०॥ उन सर्व सदा तत प्रभविष्णु ने महादेव के प्रसाद से सनातन ब्रह्म कहा है । यह सब माहेश्वर के बल से आपसे मैंने कह दिया है ॥६८॥

॥ प्रकर्ण ३८—पितर-वर्णन ॥

अगात्कथममावास्यां मासि मासि दिवं नृपः ।
ऐलः पुरूरवाः सूत कथं वाऽतर्पयत् पितॄन् ॥१
तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं शांशपायन ।
ऐलस्यादित्यसंयोगं सोमस्य च महात्मनः ॥२
अपांसारमयस्येन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
ह्रासवृद्धी पितृमतः पक्षस्य च विनिर्णयः ॥३
सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितॄणां तर्पणं तथा ।
कव्याग्नेश्चात्तसोमानां पितॄणाञ्चैव दर्शनम् ॥४

यथा पुरूरवाश्चैलस्तर्पयामास वै पितॄन् ।
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि पर्वाणि च यथाक्रमम् ।।५
यदा तु चन्द्रसूर्यौ तौ नक्षत्रेण समागतौ ।
अमावास्यान्निवसत एकरात्रै कमण्डले ।।६
सगच्छति तदा द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ ।
अमावस्याममावास्यां मातामहपितामहौ ।
अभिवाद्य तदा तत्र कालपेक्षः प्रतीक्ष्यते ।।७

श्री शांशपायन ने कहा—हे सूतजी ! राजा ऐल पुरुरवा मास-मास में अमावस्या में दिव में कैसे गया और किस प्रकार से वहाँ पितरों को तृप्त किया था । सूतजी ने कहा—हे शांशपायन ! मैं उसके प्रभाव को बतलाऊँगा। ऐल का आदित्य के साथ तथा महात्मा चन्द्र के साथ जो संयोग हुआ वह भी बताया जायगा ।।२।। जलों का सारमय जो चन्द्रमा है उसका कृष्ण और शुक्ल पक्षों में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है । यह पक्ष का विशेष निर्णय पितृमत है ।।३।। सोम से ही अमृत की प्राप्ति हुआ करती है तथा पितरों का दर्शन होता है ।।४।। इस प्रकार से पुरूरवा ऐल राजा पितरों की तृप्ति किया करता था । यह सब और क्रम के अनुसार पर्वों को मैं बतलाऊँगा ।।५।। जिस समय वे दोनों चन्द्र और सूर्य नक्षत्र से समागत होते हैं तो अमावस्या में एक रात्रि तक मण्डल में निवास किया करते हैं ।।६।। उस समय वह दिवाकर और निशाकर का दर्शन प्राप्त करने के लिये जाता है । अमावस्या में मातामह और पिता मह को अभिवादन करके उस समय वहाँ पर कालकी अपेक्षा वाला प्रतीक्षा किया जाया करता है ।।७।।

प्रसीदमानात् सोमाच्च पित्रर्थं तत्परिस्रवात् ।
ऐलः पुरूरवा विद्वान् मासि मासि प्रयत्नतः ।
उपास्ते पितृमन्तं तं ससोमं स दिवास्थितः ।।८
द्विलवं कुहुमात्रं तु ते उभे तु विचार्य सः ।
सिनीवालीप्रमाणेन सिनीवालीमुपासकः ।।९
कुहूमात्रां कलाञ्चैव ज्ञात्वोपास्ते कुहुं पुनः ।
स तदा भानुमत्येक कालावेक्षी प्रपश्यति ।।१०

सुधामृतं कुतः सोमात् प्रस्रवेन्मासतृप्तये ।
दशभिः पञ्चभिश्चैव सुधामृतपरिस्रवैः ॥११
कृष्णपक्षे तदा पीत्वा दुह्यमानं तथांशुभिः ।
सद्यः पक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः ॥१२
निर्वापणार्थं दत्तेन पित्रेण विधिना नृपः ।
सुधामृतेन राजेन्द्रस्तर्पयामास वै पितॄन् ।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥१३
ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स नु संवत्सरो मतः ।
जज्ञिरे ह्यृतवस्तस्माद्दतुभ्यश्चार्त्तवाश्च ये ॥१४

प्रसीदमान अर्थात् प्रसन्नता प्राप्त हुए सोम से पितरों के लिये उसके परिस्रव से ऐल पुरूरवा विद्वान् मास-मास में प्रयत्न के साथ वह दिव में आविस्थत होता हुआ ससोम पितृमान् उस की उपासना करता है ॥८॥ दो लव कुहुमात्र वे दोनों विचार करके वह सिनीवाली प्रमाण से सिनावाली का उपासक होता है ॥९॥ कुहूमात्रा और कला को जानकर फिर कुहू की उपासना करता है। वह उस समय में भानुमान में एक काल की अपेक्षा करने वाला प्रकर्ष रूप से देखता है ॥१०॥ मास तृप्ति के लिये वहाँ सोम से सुधामृत का प्रस्रव होता है। दश और पाँच सुधामृत परिस्रवों से प्राप्त करता है ॥११॥ उस समय कृष्ण पक्ष में अंशुओं से दुह्यमान को पीकर सद्यः वह उस सौम्य मधु से पक्षरत होता है ॥१२॥ वह राजा पित्र दिये हुए से जोकि निर्वारण के लिये ही दिया गया है, विधिपूर्वक राजेन्द्र सुधामृत के द्वारा पितरों को तृप्त किया करता था। उसमें सौम्य-वर्हिषद-काव्य और अग्निष्वात्त ये सभी हैं ॥१३॥ ऋतु अग्नि जो कहा गया है, उससे ऋतुएँ उत्पन्न हुईं और ऋतुओं से ये आर्त्तव उत्पन्न हुए हैं ॥१४॥

आर्त्तवा ह्यर्द्धमासाख्याः पितरो ह्यब्दसूनवः ।
ऋतुः पितामहा मासा ऋतुश्चैवाब्दसूनवः ॥१५
प्रपितामहास्तु वै देवाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ।
सौम्यास्तु सौम्यजा ज्ञेयाः काव्या ज्ञेयाः कवे सुताः ॥१६

उपहूताः स्मृताः देवाः सोमजाः सोमपास्तथा ।
आज्यपास्तु स्मृताः काव्यास्तृप्यन्ति पितृजातयः ।।१७
काव्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ।
गृहस्था ये च यज्वाना ऋतुर्बर्हिषदो ध्रुवम् ।।१८
गृहस्थाश्चापि यज्वाना अग्निष्वात्तास्तथार्त्तवाः ।
अष्टकापतयः काव्याः पञ्चाब्दास्तान्निबोधत ।।१९
एषां संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः ।
सोम इद्वत्सरः प्रोक्तो वायुश्चैवानुवत्सरः ।।२०

जो आर्त्तव हैं वे अर्धमास नाम वाले हैं । पितर अब्द के पुत्र हैं । ऋतु के पितामह मास हैं और ऋतु अब्द सूनु हैं ।।१५।। इनके प्रपितामह तो ब्रह्मा के पुत्र देव पञ्जा अब्द हैं । जो सौम्य हैं वे सौम्यज जानने चाहिए और जो काव्य हैं वे कवि के पुत्र समझने चाहिए ।।१६।। उपहूत देव सोमज तथा सौमज कहे गये हैं । जो आज्य है वे काव्य कहे गये हैं । ये पितृ जातियाँ हैं जोकि तृप्त हुआ करती हैं ।।१७।। वे काव्य बर्हिषद और अग्नि ष्वात्त तीन प्रकार के हुआ करते हैं । जो यज्वान गृहस्थ होते हैं उनका बर्हिषद ऋतु होता है । गृहस्थ यज्वान जो होते हैं अग्निष्वात्त उनके आर्त्तव होते हैं । अष्टका पति काव्य हैं । उनको पञ्चब्द जानना चाहिए ।।१८।।१९।। इनका सम्वत्सर अग्नि है और सूर्य परिवत्सर होता है । सोम इद्वत्सर कहा गया है और वायु ही अनुवत्सर होता है ।।२०।।

रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां पञ्चाब्दा ये युगात्मकाः ।
लेखाश्चैवोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः ।।२१
एते पिबन्त्यमावास्यां मासि मासि सुधां दिवि ।
तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत् पुरूरवाः ।।२२
यस्मात् प्रस्रवतो सोमान्मासि मासि निबोधत ।
तस्मात् सुधामृतं तद्वै पितॄणां सोमापायिनाम् ।।२३।।
एवं तदमृतं सौम्यं सुधा च मधु चैव ह ।
कृष्णपक्षे यथा चेन्दोः कलाः पञ्चदश क्रमात् ।।२४

पिवन्त्यम्बुमयीर्देवास्त्रयस्त्रिशत्तु छन्दजाः ।
पीत्वा च मासं गच्छन्ति चतुर्द्दश्यां सुधामृतम् ॥२५
इत्येवं पीयमानस्तु दैवतैश्च निशाकरः ।
समागच्छद्मावास्यां भागे पञ्चदशे स्थितः ॥२६
सुषुम्नाप्यायातिञ्चैव अमावास्यां यथाक्रमम् ।
पिबन्ति द्विकलं कालं पितरस्ते सुधामृतम् ॥२७
ततः पीतक्षये सोमे सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
आप्याययत्सुषुम्नेन पितॄणां सोमपायिनाम् ॥२८

रुद्र उनका वत्सर होता है ये युगात्मक पञ्चाब्द होते हैं । वे लेखा-उष्मपा और दिव्याकीर्त्या कहे गये हैं ॥२१। ये अमावस्या में मास-मास में दिवि में सुधा का पान किया करते हैं । उससे पुरूरवा जब तक है उनका तर्पण करता था ॥२२॥जिससे मास-मास में सोमों का प्रस्रवण करता है उसे जान लो । उससे सुधामृत सोमपायी पितरों का होता है ॥२३॥ इस प्रकार से वह सौम्य अमृत-सुधा और मधु होता है । जिस प्रकार से कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की क्रम से पन्द्रह कलाएं होती हैं ॥२४॥ देव अम्बुमयी का पान करते हैं और तेतीस छन्दज होते हैं और चतुर्दशी में मास तक सुधामृत को पीकर चले जाते हैं ॥२५॥ इस प्रकार से देवों के द्वारा पीयमान निशाकर अमावस्या को पञ्चदश भाग में स्थित आ गया था ॥२६॥ सुषुम्ना से आप्यायित अमावस्या को यथाक्रम द्विकल काल तक पितर सुधामृत का पान करते हैं ॥२७॥ इसके अनन्तर पीत होने से क्षय वाले सोम के होने पर यह सूर्य एक रश्मि से सुषुम्ना के द्वारा सोमपायी पितरों को आप्यायित करता है ॥२८॥

निःशेषायां कलायान्तु सोममाप्याययत् पुनः ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य भागं भाग महः क्रमात् ।
कलाः क्षीयन्ति ताः कृष्णाः शुक्लाश्चाप्याययन्ति च॥ २९
एवं सूर्यस्य वीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ।
दृश्यते पौर्णमास्यां वै शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ।

संसिद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।।३०
इत्येष पितृमान् सोमः स्मृत इद्वत्सरः क्रमात् ।
क्रान्तः पंचदशैः सार्द्धं सुधामृतपरिस्रवैः ।।३१
अतः पर्वाणि वक्ष्यामि पर्वणां सन्धयस्तथा ।
ग्रन्थिमन्ति यथा पर्वाणीक्षुवेण्वोर्भवन्त्युत ।।३२
तथार्द्धमासपर्वाणि शुक्लकृष्णानि वै विदुः ।
पूर्णामावास्ययोर्भेदैर्ग्रन्थिर्या सन्धयश्च वै ।
अर्द्धमासास्तु पर्वाणि तृतीयाप्रभृतीनि तु ।।३३
अग्न्याधानक्रिया यस्मात् क्रियते पर्वसन्धिषु ।
सायाह्ने प्रतिपच्चैव स कालः पौर्णमासिकः ।।३४
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखोर्द्धन्तु युगान्तरे ।
युगान्तरोदिते चैव लेखोर्द्धं शशिनः क्रमात् ।।३५

कला के नि.शेष होने पर भी फिर सोम को आप्यापित करता है । सुषुम्ना से आप्यायमान की भाग-भाग महा के क्रम से वे कृष्ण कलाक्षीण हो जाती हैं और शुक्ल को आप्यायित किया करती हैं ।।२९।। इस प्रकार से सूर्य के वीर्य से चन्द्र का शरीर भी आप्यायित होता है । पौर्णमासी में शुक्ल सम्पूर्ण मण्डल दिखलाई दिया करता है इस प्रकार से शुक्ल कृष्ण पक्षों में सोम की संसिद्ध होती है ।।३०।। यह पितृमान् सोम क्रम से इद्वत्सर कहा गया है । पन्द्रह सुधामृत परिस्रवों के साथ क्रान्त होता है ।।३१।। इस के आगे अब मैं पर्वों को तथा पर्व सन्धियों को बताऊँगा । जिस प्रकार से इक्षु वेणुओं के पर्व ग्रन्थिमान् होते हैं ।।३२।। उसी प्रकार से अर्धमास के पर्व शुक्ल कृष्ण जानने चाहिए । पूणिमा और अमावस्या के भेदों से जो ग्रन्थि और जो सन्धियाँ हैं । अर्धमास तृतीया प्रभृति हैं ।।३३।। जिसमें पर्वोपर अग्न्याधान की क्रिया की जाती है। सायाह्नमें प्रतिपद् ही वह पौर्णमासिक काल होता है ।।३४।। सूर्य के व्यतीपात में स्थित होने पर युगान्तर में लेखोद्ध्वं होता है और युगान्तर में उदित होने पर क्रम से लेखोद्ध्वं शशि का होता है ।।३५।।

पौर्णमासे व्यतीपाते यदीक्षेते परस्परम् ।
यस्मिन्काले स सीमान्ते स व्यतीपात एव तु ॥३६
कालं सूर्यस्य निर्द्देशं दृष्ट्वा सङ्ख्या तु सर्पति ।
स वै पथं क्रियाकालः कालात्सद्यो विधीयते ॥३७
पूर्णेन्दोः पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ।
यस्मात्तामनुपश्यन्ति पितरो दैवतैः सह ।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता ॥३८
अत्यर्थं भ्राजते यस्मात् पौर्णमास्यान्निशाकरः ।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ॥३९
अमा वसेतामृक्षे तु गदा चन्द्रदिवाकरौ ।
एकां पञ्चदशीं रात्रिममावास्या ततः स्मृता ॥४०
ततोऽपरस्य तैर्व्यक्तः पौर्णमास्यां निशाकरः ।
यदीक्षते व्यतीपाते दिवा पूर्णं परस्परम् ।
चन्द्रार्कावपराह्णे तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा ॥४१
विच्छिन्नांताममावास्यां पश्यतश्च समागतौ ।
अन्योन्यं चन्द्रसूर्यौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते ॥४२

पौर्णमास व्यतीपात में जो परस्पर में देखते हैं जिसकाल में वह सीमान्त में है वह व्यतीपात नहीं है ॥३६॥ सूर्य काल के निर्देश को देख कर संख्या सर्पण किया करती है वह ही निश्चय रूप से क्रिया का काल से तुरन्त ही पथ का विघान किया करता है ॥३७॥ पूर्ण चन्द्र के पूर्ण पक्ष में रात्रि की सन्धियों में पूर्णिमा है जिससे देवों के साथ पितर उसे देखते हैं। इससे अनुमति नाम वाली प्रथम पूर्णिमा कही गई ॥३८॥ जिससे पौर्णमासी में निशाकर अत्यधिक रूप से भ्राजमान होता है। चन्द्र के रञ्जन करने से पूर्णिमा की रात्रि का नाम राका—यह पड़ गया है जिसे कवि लोग जानते हैं ॥३९॥ अमा ऋक्ष में वास करती है जब कि चन्द्र और दिनकर दोनों एक पञ्चदशी की रात्रि को वास किया करते हैं। इसी से अमावस्या ही कही गई है ॥४०॥ फिर दूसरे का उनके द्वारा पौर्णमासी में निशाकर व्यतीपात में पूर्ण दिन में परस्पर में

दीखता है। अपराह्न में तो चन्द्र और सूर्य स्वरूप वाले होते हैं इसीलिये पूर्णिमा यह कही जाती है ।।४१।। समागत वे दोनों उस अमावस्या को विच्छिन्न देखते हैं। वे दोनों चन्द्र और सूर्य अन्योन्य में जब देखते हैं तो वह दर्श ऐसा कहा जाता ।।४२।।

द्वौ द्वौ लवावमावास्यां यः कालः पर्वसन्धिषु ।
द्व्याक्षरं कुहुमात्रं तु एवं कालस्तु स स्मृतः ।
नष्टचन्द्राप्यमावास्या मध्यसूर्येण सङ्गता । ४३
दिवसार्द्धेन रात्र्यर्द्धं सूर्यं प्राप्त तु चन्द्रमाः ।
सूर्येण सहसा मुक्ति गत्वा प्रातस्तनोत्सवौ ।
द्वौ कालौ सङ्गमश्चैव मध्याह्ने निष्पतेद्रविः ।।४४
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्यमण्डलात् ।
निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै ।।४५
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ।
एतदृतुमुखं ज्ञेयममावास्यास्य पर्वणः ।।४६
दिवा पर्वण्यमावास्यां क्षीणेन्दौ बहुले तु वै ।
तस्माद्दिवा ह्यमावास्यां गृह्यतेऽसौ दिवाकरः ।
गृह्यते वै दिवा ह्यस्मादमावास्यां दिविक्षयैः ।।४७
कलानामपि वै तासां बहुमान्याजडात्मकैः ।
तिथीनां नाम धेयानि विद्वद्भिः संज्ञितानि वै ।।४८
दर्शयेतामथान्योन्यं सूर्याचन्द्रमसावुभौ ।
निष्क्रामत्यथ तेनैव क्रमशः सूर्यमण्डलात् ।।४६

अमावस्या में दो-दो लव पर्वसन्धियों में जो काल होता है वह द्व्याक्षर कुहूमात्र इस प्रकार से काल कहा गया है। नष्ट चन्द्र वाली भी अमावस्या मध्य सूर्य के साथ सङ्गत होती है ।।४३।। दिवसार्ध के साथ रात्रि के अर्ध को चन्द्रमा सूर्य को प्राप्त कर, सूर्य से सहसा छुटकारा पाकर प्रातःकालीन उत्सव वाले दो काल हैं और सङ्गम है। मध्याह्न में सूर्य का निष्पतन होता है ।।४४।। शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् को चन्द्रमा सूर्य मण्डल से

उन निर्मुचमान मण्डलों के मध्य में होता है ।।४५।। उस समय में वह आहूति का काल तथा दर्श की वषटक्रिया होती है । इस पर्व की अमावस्या यह ऋतु मुख जानना चाहिए ।।४६।। दिवा पर्व में अमावस्या को अधिक चन्द्र के क्षीण हो जाने पर इससे दिवा में अमावस्या को यह दिवाकर ग्रहण किया जाता है। दिवा ग्रहण किया जाता है इससे दिविक्षयों से अमावस्या होती है ।।४७।। उन कलाओं की भी जडातमाओं के द्वारा वाहुमान्या होती है । विद्वानों ने तिथियों के भी नामों की संज्ञा की है ।।४८।। सूर्य और चन्द्रमा दोनों अन्योन्य को देखते हैं और क्रम से उसी के साथ सूर्य मण्डल से निकलता ।।४९।।

द्विलवेन ह्यहो रात्र भास्करं स्पृशते शशी ।
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ।।५०
कुहेति कोकिलेनोक्तो यः कालः परिचिह्नितः ।
तत्काल संज्ञिता यस्मादमावास्या कुहुः स्मृता ।।५१
सिनीवालीप्रमाणेन क्षीणशेषो निशाकरः ।
अमावास्यां विशत्यर्कं सिनीवाली ततः स्मृता ।।५२
पर्वणः पर्वकालस्तु तुल्यो वै तु वषट् क्रिया ।
चन्द्रसूर्यव्यतीपाते उभे ते पूर्णिमे स्मृते ।।५३
प्रतिपत्पञ्चदश्योश्च पर्वकालो द्विमात्रकः ।
कालः कुहुसिनीवाल्योःसमुद्रो द्विलवः स्मृतः ।।५४
अर्काग्निमण्डले सोमे पर्व कालः कलाश्रयः ।
एवं स शुक्लपक्षो वै रजन्याः पर्वसन्धिषु ।।५५
सम्पूर्णमण्डलः श्रीमांश्चन्द्रमा उपरज्यते ।
यस्मादाप्यायते सोमः पञ्चदश्यान्तु पूर्णिमा ।।५६

अहोरात्र में चन्द्रमा दो लव भास्कर का स्पर्श किया करता है । उस समय वह आहूति का तथा दर्श की वषट क्रिया काल होता है ।।५०।। कोकिल से उक्त जो काल कुहा ऐसा परिचिन्हत होता है उसकाल से संज्ञा वाली अमावस्या कुहू कही जाती है ।।५१।। सिनीवाली के प्रमाण से क्षीण शेष निशाकर अमावस्या के दिन सूर्य में प्रवेश किया करता है इसी से सिनीवाली कही गई है।

।।५२।। पर्वका पर्व काल तो वषट क्रिया के तुल्य ही होता है। चन्द्र और सूर्य के व्यतीपात में वे दोनों पूर्णिमा कही गई हैं ।।५३।। प्रतिपत् और पञ्चदशी का पर्वकाल द्विमात्रिक ही होता है। सिनीवाली और कुहू का समुद्र द्विलव कहा गया है ।।५४।। सोम के अर्काग्नि मण्डल में पर्व का काल कला के आश्रय वाला होता है। इस प्रकार से पर्व की सन्धियों में रात में शुक्ल पक्ष होता है ।।५५। सम्पूर्ण मण्डल वाला श्रीमान् चन्द्र उपरञ्जित होता है जिस से पञ्चदशी में सोम आप्यायित होता है इससे पूर्णिमा होती है ।।५६।।

दशभिः पञ्चभिश्चैवः कलाभिर्दिवसक्रमात् ।
तस्मात् कला पञ्चदशी सोमे नास्ति तु षोडशी ।
तस्मात्सोमस्य भवति पञ्चदश्यां महाक्षयः ।।५७
इत्येते पितरो देवाः सोमपाः सोमवर्द्धनाः ।
आर्त्तवा ऋतवो यस्मात्ते देवाः भावयन्ति च ।।५८
अतः पितॄन् प्रवक्ष्यामि मासश्राद्धभुजस्तु ये ।
तेषां गतिञ्च सत्त्वञ्च गतिं श्राद्धस्य चैव हि ।।५९
न मृतानां गतिः शक्या विज्ञातुं पुनरागतिः ।
तपसापि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा ।।६०
श्राद्धदेवान् पितॄनेतान् पितरो लौकिकाः स्मृताः ।
देवाः सौम्याश्च यज्वानः सर्वे चैव ह्ययोनिजाः ।।६१
देवास्ते पितरः सर्वे देवास्तान् भावयन्त्युत ।
मनुष्याः पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये लौकिकाः स्मृताः ।।६२
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
यज्वानो ये तु सोमेन सोमवन्तस्तु ते स्मृताः ।।६३

दश और पाँच कलाओं से दिवसों के क्रम से पन्द्रह कला सोम में होती हैं सोलहवीं नहीं होती है। इससे सोम का पञ्चदशी में महान् क्षय होता है। ।।५७।। इतने ये पितर थेव सोमप और सोमवर्द्धन हैं। जिससे आर्त्तक और ऋतुएँ हैं, वे देव भावित किया करते हैं ।।५८।। इसलिये पितृगण को बताऊँगा जोकि मास श्राद्ध के भोजी होते हैं। उनकी गति और सत्त्व तथा श्राद्धकी गति

को भी बताया जायगा ॥५६॥ त मृमनुष्यों की गति तथा पुनरागति बताई नहीं जा सकती है। यह प्रसिद्ध तप से भी नहीं बता सकते हैं इन माँस चक्षुओं की बात ही क्या है ॥६०॥ श्राद्धदेध व इन पितरों को लौकिक पितर कहा गया है। देवसौम्य और यज्वान ये सब आयोनिज होते हैं ॥६१॥ वे सब देव पितर हैं और उनको देव ही भावित किया करते हैं। मनुष्य और पितर उनसे अन्य लौकिक कहे गये हैं ॥६२॥ पिता-पितामह और प्रपितामह जो सोम के द्वारा यज्वान होते हैं वे सोमवन्त कहे गये हैं ॥६३॥

ये यज्वान: स्मृतास्तेषां ते वै बर्हिषदः स्मृताः।
कर्मस्वेतेषु युक्तास्ते तृप्यन्त्यादेहसम्भवात् ॥६४
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तेषां होमिनो याज्ययाजिनः।
ये वाप्याश्रमधर्मेण प्रस्थानेषु व्यवस्थिताः ॥६५
अन्ते च नैव सीदन्ति श्रद्धायुक्तेन कर्मणा।
ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया च वै ॥६६
श्रद्धया विद्यया चैव प्रदानेन च सप्तधा।
कर्मस्वेतेषु ये युक्ता भवन्त्या देहपातनात् ॥६७
देवैस्तैः पितृभिः सार्द्धं सूक्ष्मकैः, सौमपायकैः।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्तमुपासते ॥६८
प्रजावतां प्रशंसैव स्मृता सिद्धा क्रियावताम्।
तेषां निवापदत्तान्नं तत्कुलीनैश्च बान्धवैः ॥६९
मासं श्राद्धभुजस्तृप्तिं लभन्ते सोमलौकिकाः।
एते मनुष्याः पितरो मासि श्राद्धभुजस्तु ते ॥७०

जो यज्वान कहे गये हैं उनके वे बर्हिषद कहे गये हैं। इन कर्म्मों में युक्त वे देह-सम्भव तक तृप्त होते हैं ॥६४॥ उनके याज्ययाजी होमी अग्निष्वात्त कहे गये हैं। अथवा जो भी आश्रम धर्म से प्रस्थानों में व्यवस्थित हैं। ॥६५॥ श्रद्धा से युक्त कर्म के द्वारा अन्त समय में दुःखी नहीं होते हैं। इसी प्रकार जो ब्रह्मचर्य-तप-यज्ञ और प्रजा से युक्त होते हैं वे भी दुःखी नहीं होते

हैं ।।६६।। श्रद्धा से विद्या से और प्रदान से सात प्रकार से इन कर्मों में जो युक्त होते हैं और अपने देह के पातन तक इसी प्रकार से रहते हैं वे उन देवों के-पितरों के और सूक्ष्मक सोमपायकों के साथ स्वर्ग में गये हुए मोदयुक्त होते हैं तथा दिवि में पितृमान् की उपासना किया करते हैं ।।६८।। प्रजा वालों की प्रशंसा ही कही गई है और क्रिया वालों की वह सिद्ध है । उनके निवाप-दत्त अन्न को जो कि तत्कुलीनों के द्वारा एवं बान्धवों के द्वारा दिया गया है मास पर्यन्त श्राद्ध भोजी सोम लौकिक तृप्ति को प्राप्त किया करते हैं । ये जोकि मास में श्राद्ध-भोजी होते हैं वे मनुष्य पितर हैं ।।७०।।

तेभ्योऽपरे तु ये चान्ये सङ्कीर्णाः कर्मयोनिषु ।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्यः स्वधास्वाहाविवर्जिताः ।।७१
भिन्नदेहा दुरात्मनः प्रेतभूता यमक्षये ।
स्वकर्माण्येव शोचन्ति यातनास्थानमागताः ।।७२
दीर्घायुषोऽतिशुष्काश्च विवर्णाश्च विवाससः ।
क्षुत्पिपासापरीताश्च विद्रवन्ति इतस्ततः ।।७
सरित्सरस्तडागानि वापिश्चैव जलेप्सवः ।
परान्नानि च लिप्सन्ते कम्पमानास्ततस्ततः ।।७४
स्थानेषु पाच्यमानाश्च यातायातेषु तेषु वै ।
शाल्मली वैतरण्याञ्च कुम्भीपाकेषु तेषु च ।।७५
करम्भवालुकायाश्च असिपत्रवने तथा ।
शिलासम्पेषणे चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः ।।७६
तत्र स्थानानि तेषां वै दुःखानामप्यनाकवत् ।
लोकान्तरस्थानां विविधैर्नामगोत्रतः ।।७७

उनसे ऊपर जो अन्य हैं वे कर्मयोनियाँ सङ्कीर्ण हैं और आश्रमों के धर्मों से भ्रष्ट हुए स्वाहा तथा स्वधा से विवर्जित होते हैं ।।७१।। भिन्न देह वाले दुष्ट आत्मा से युक्त और यमक्षय में प्रेत भूत यातना के स्थानों में आये हुए अपने किये हुए कर्मों को ही शोचा करते हैं ।।७२।। दीर्घ आयुवाले, अत्यन्त शुष्क, विवर्ण और बिना वस्त्र वाले भूख और प्यास से परीत हुए इधर-उधर

विद्रवण किया करते हैं ॥७३॥ प्यास से व्याकुल जल प्राप्त करने की इच्छा वाले नदी सरोवर–तालाब और बावड़ी तथा पराये अन्न को इधर–उधर काँपते हुए चाहा करते हैं ॥७४॥ उन यातायातों के स्थानों में पाच्यमान-शालमली में और वैतरणी में और उन कुम्भीपाकों में-करम्भ बालुका में-असिपत्र वन में और शिल सम्पेषण में अपने कर्मों के द्वारा गिराये हुए होते हैं ॥७५॥७६॥ अनाक की भाँति वहाँ पर उन दुःखों के स्थान, अन्य लोकों में स्थित उनके विविध नाम और गोत्र से होते हैं ॥७७॥

भूम्यापसव्यदर्भेषु दत्त्वा पिण्डत्रयन्तु वै ।
पति तांस्तर्पयन्ते च प्रेतस्थानेष्वधिष्ठिताः ॥७८
अप्राप्ता यातनास्थानं सृष्टा ये भुव पंचधा ।
पश्वादिस्थावरान्तेषु भूतानां तेषु कर्मसु ॥७९
नानारूपासु जातीषु तिर्यग्योनिषु जातिषु ।
यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु ।
तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहारं श्राद्धदत्तोपतिष्ठति ॥८०
काले न्यायागतं पात्रं विधिना प्रतिपादितम् ।
प्राप्नोत्यन्नं यथा दत्तं बन्धुर्यत्रावतिष्ठते ॥८१
यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्धे तदिष्टानां मन्त्रः प्रापयते पितॄन् ॥८२
एवं ह्यविकलं श्राद्धदत्तन्तु मन्त्रतः ।
सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ।
गतागतिज्ञः प्रेतानां प्राप्तश्राद्धस्य चैव हि ॥८३
बह्लीकाश्चोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्चव ते स्मृताः ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥८४

भूमि से अपसव्य दर्भों में तीन पिण्ड देकर प्रेत स्थानों में अधिष्ठित उन पतितों का तर्पण किया करते हैं ॥७८॥ जो यातना के स्थान में अप्राप्त भूमि में सृष्ट है वे पाँच प्रकार के होते हैं । पशु आदि स्थावरान्तों में प्राणियों के उन-कर्मों में नाना प्रकार की जातियों में-तिर्यग्योनियों में यताहार होते हैं । उस-

इसमें उनका आहार श्राद्ध में दिया हुआ उपस्थित होता है ॥७९॥ ॥८०॥ काल में न्याय से आया हुआ पात्र विधि से प्रतिपादित तथा दत्त अन्त को प्राप्त किया करता है जहाँ कि बन्धु अवस्थित होता है ॥८१॥ जिस तरह से गायों के प्रविष्ट होने पर वत्स माता का लाभ किया करता है उसी प्रकार से श्राद्ध में तदिष्टों का मन्त्र पितरों को प्राप्त करता है ॥८२॥ मन्त्र से दिया हुआ श्राद्ध अविकल श्राद्ध होता है, इस बात को दिव्य चक्षु से देखते हुए सनत्कुमार ने कहा था जोकि गतागति के ज्ञान रखने वाले तथा प्रेतों के प्राप्त श्राद्ध के ज्ञाता थे ॥८३॥ बह्लीक-उष्मया ओ दिवाकीर्त्य वे कहे गये हैं। उनका कृष्ण पक्ष दिन होता है और शुक्ल पक्ष तो स्वप्न के लिये शर्वरी (रात्रि) होती है ॥८४॥

इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै।
ऋतार्त्तवा अनेके तु अन्योन्यपितरः स्मृताः ॥८५
एते तु पितरो देवा मानुषाः पितरश्च ये।
प्रीतेषु तेषु प्रीयन्ते श्रद्धायुक्तेन कर्मणा ॥८६
इत्येवं पितरः प्रोक्ताः पितृणां सोमपायिनाम्।
एतत् पितृमतत्वं हि पुराणे निश्चयो मतः ॥८७
इत्यर्क पितृ सोमानामैलस्य च समागमः।
सुधामृतस्य चावाप्तिः पितृणांचैव तर्पणम् ॥८८
पूर्णिमावास्ययोः कालः पितृणां स्थानमेव च।
समासात्कीर्त्तित स्तुभ्यमेष सर्गः सनातनः ॥८९
वैश्वरूप्यन्तु सर्वस्य कथितं चैकदेशिकम्।
न शक्यं परिसङ्ख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता ॥९०
स्वायम्भुवस्य हीत्येष सर्गः क्रान्तो मयात्र वै।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ॥९१

ये इतने पितर-देव और देव और पितर तथा ऋतार्तव ऐसे अनेक अन्योन्य पितर कहे गये हैं ॥८५॥ ये पितर देव और ये मानुष पितर हैं। श्रद्धा से युक्त कर्म के द्वारा उनके प्रसन्न होने पर प्रसन्नतायुक्त होते हैं ॥८६॥ इस

प्रकार से पितर कहे गये हैं। सोमपायी पितरों का यह पितृमतत्व निश्चय रूप से पुराण में माना गया है ।।८७।। यह अर्क पितृ सोमो का तथा ऐल का समागम और सुधामृत की अवाप्ति और पितरों का तर्पण पूर्णिमा और अमावस्या का काल और पितरों का स्थान ये सभी का संक्षेप से तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया है। यही सनातन अर्थात् सर्वदा से चले आने वाला सर्ग है ।।८८।। ।।८९।। सबका वैरूप्य और देशिक कह दिया है। यह परिसंख्या वाला नहीं हो सकता है। भूतिको चाहने वाले को श्रद्धा करने के योग्य होता है ।।९०।। यह मैंने स्वायम्भुव का सर्ग कहा है फिर आगे विस्तार के तथा आनुपूर्वी के साथ मैं क्या वर्णन करूँ ? ।।९१।।

।। प्रकर्ण ३९—यज्ञप्रथा वर्णन ।।

चतुर्युगानि यान्यासन् पूर्वं स्यायम्भुवेन्तरे ।
तेषां निसर्गं तत्त्वंच श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ।।१
पृथिव्यादिप्रसङ्गेन यन्मया प्रागुदाहृतम् ।
तेषाश्चतुर्युगं ह्येतत् प्रवक्ष्यामि निबोधत ।।२।।
सङ्ख्य्येह प्रसङ्ख्याय विस्ताराच्चैव सर्वशः ।
युगं च युगभेदं च युगधर्म्न्तिथैव च ।।३।।
युगसन्ध्यंशकं चैव युगसन्धानमेव च ।
षट्प्रकारयुगाख्यानां प्रवक्ष्यामीह तत्त्वतः ।।४
लौकिकेन प्रमाणेन विबुद्धोऽब्दस्तु मानुषः ।
तेनाब्देन प्रसङ्ख्याय वक्ष्यामीह चतुर्युगम् ।।५
निमेषकालः काष्ठा च कलाश्चापि मुहूर्त्तकाः ।
निमेषकालतुल्यं हि विद्याल्लध्वक्षरं चयत् ।।६
काष्ठा निमेषा दश पंच चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलास्ताः
त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तास्तत्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ।।७।।

ऋषियों ने कहा—स्वायम्भुव अन्तर में पहिले जो चार युग थे उनका निसर्ग और तत्व विस्तार पूर्वक हम श्रवण करना चाहते हैं ।।१।। श्री सूतजी ने

कहा—पृथिवी आदि के प्रसङ्ग से जो मैंने पहिले उदाहृत किया है उनका यह चतुर्युग अब बतलाऊँगा, उसे भली भाँति समझलो ॥२॥ यहाँ संख्या से प्रसंख्यान करके और सब प्रकार से एवं विस्तार से युगसन्ध्यंशक तथा युग सन्धान ऐसे इन छः प्रकार के युग नाम वालों को मैं तत्त्वपूर्वक अच्छी तरह बतलाऊँगा ॥३॥४॥ लौकिक प्रमाण से विबुद्ध अब्द तो मानुष होता है। उस अब्द से प्रसंख्या करके चतुर्युग को यहाँ बतलाया जायेगा ॥५॥ निमेष काल-काष्ठा-कला और मुहूर्त्तक होते हैं। निमेष काल के समान ही जो लघ्वक्षर होता है उसे जानना चाहिए ॥६॥ पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा है और तीस काष्ठा की एक कला गिननी चाहिए। तीस कला का मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्त की रात्रि और दिन होते हैं ॥७॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके।
तत्राहः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्प्यते ॥८
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः।
कृष्ण पक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥९
त्रिंशच्च मानुषा मासाः पित्र्यो मासश्च स स्मृतः।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥१०
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत्।
पितृणां त्रीणि वर्षाणि सङ्ख्यातानीह तानि वै।
चत्वारश्चाधिका मासाः पित्रे चैवेह कीर्त्तिताः ॥११
लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः।
एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रेऽस्मिन् निश्चयो मतः ॥१२
दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥१३
ये ते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसङ्ख्याते तयोः पुनः।
त्रिंशद्यानि वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ॥१४

मानुष और दैविक अहोरात्र का सूर्य ही विभाग किया करता है। उस में दिन तो कर्मों की चेष्टा के लिये और रात्रि स्वप्न के लिये कल्पित की जाती है ॥८॥ पित्र्य और रात्रि और दिन तथा मास उनका पुनः विभाग होता है। उनका दिन कृष्ण पक्ष होता है और मास का शुक्ल पक्ष रात्रि होती है जो शयन के लिये ही है ॥९॥ मानुषका तीस मास और पित्र्य अर्थात् पितरों का वह एक मास कहा गया है। तीन सौ साठ मासों का पितरों का सम्वत्सर यह मानुष से विभावित किया जाता है ॥१०॥ मानुष मान से ही वर्षों का जो एक सैकड़ा होता है वे पितरों के यहाँ पर तीन वर्ष संख्यात होते हैं। यहाँ पर चार अधिक मास पितृ के लिये ही कहे गये हैं ॥११॥ लौकिक मान से ही जो मानुष अब्द कहा गया है यह दिव्य अहो रात्र होता है। यह इस शास्त्र में निश्चय माना गया है ॥१२॥ दिव्य रात्रि और दिन और फिर उन दोनों का प्रविभाग कहते हैं। वहाँ उत्तरायण दिन होता है और दक्षिणायन रात्रि हुआ करती है ॥१३॥ जो ये रात्रि और दिन दिव्य प्रसंख्यात किये गए हैं उन दोनों के फिर तीस वे वर्ष दिव्य मास कहा गये हैं ॥१४॥

मानुषं च शतं विद्धि दिव्यमासास्त्रयस्तु ते।
दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥१५
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि च।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्त्तितः ॥१६
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः।
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः ॥१७
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु।
अन्यानि नवतिश्चैव क्रौञ्चः संवत्सरः स्मृतः ॥१८
षट् त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु।
वर्षाणान्तु शतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥१९
त्रीण्येव नियुतान्येव वर्षाणां मानुषाणि च।
षष्टिश्चैव सहस्राणि सङ्ख्यातानि तु सङ्ख्यया।
दिव्यवर्षसहस्रन्तु प्राहुः सङ्ख्याविदो जनाः ॥२०

इत्येवमृषिभिर्गीतं दिव्या सङ्ख्ययान्वितम् ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम् ॥२१

मानुष वर्ष तो सौ होते हैं किन्तु वे सौ वर्ष तीन दिव्यमास हुआ करते हैं और दश दिन यह दिव्य विधि कही गई है ॥१५॥ तीन सौ साठ वर्ष जो होते हैं यह दिव्य सम्वत्सर मानुष के द्वारा कीर्तित किया गया है ॥१६॥ मानुष प्रमाण से तीन सहस्र वर्ष और तीस जो वर्ष होते हैं वह सप्तर्षियों का वत्सर माना गया है ॥१७॥ मानुष के नौ सहस्र जो वर्ष होते हैं और नब्बे होते है वह क्रौंच सम्वत्सर कहा गया है ॥१८॥ मानुष छत्तीस हजार वर्षों का दिव्य वर्षों का एक सैकड़ा होता है यह विधि कही गई है ॥१९॥ मानुष के तीन नियुत वर्ष तथा साठ हजार वर्ष जो संख्या के संख्यात होते हैं उनको संख्या के ज्ञाता लोग दिव्य सहस्र वर्ष कहते हैं ॥२०॥ इसी प्रकार से दिव्य संख्या से अन्वित ऋषियों के द्वारा भी गया गया है । दिव्य प्रमाण से ही युग संख्या का प्रकल्पन होता है ॥२१॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः ।
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतानि कल्पयेत् ॥२२
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ।
तत्र तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२३
इत रासु च सन्ध्यासु सन्ध्यांशेषु च वै त्रिषु ।
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२४
त्रेता त्रीणि सहस्राणि सङ्ख्यैव परिकीर्त्यते ।
तस्यास्तु त्रिशती सन्ध्यांशश्च तथाविधिः ॥२५
द्वापरं द्वे सहस्रे तु युगमाहुर्मनीषिणः ।
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥२६
कलिं वर्षसहस्रन्तु युगमाहुर्मनीषिणः ।
तस्याप्येकशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥२७

एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या परिकीर्त्तिता ।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैव चतुष्टयम् ॥२८

भारतवर्ष में कविगण चार युग बतलाते हैं। पहिले कृतयुग अर्थात् सतयुग होता है इसके पश्चात् त्रेता का विधान किया जाता है। फिर द्वापर और कलियुग से युग कल्पित किये जाने चाहिए ॥२२॥ चार सहस्र वर्षों का कृतयुग होता है किन्तु यहाँ वर्ष दिव्य ही माने गये हैं। वहाँ पर उतनी ही शती सन्ध्या की होती है और सन्ध्यांश भी उसी प्रकार का हुआ करता है॥२३॥ इतर सन्ध्याओं में तथा तीन सन्ध्यांशों में एकापाय से सहस्र और शत होते हैं। ॥२४॥ त्रेता की संख्या तीन सहस्र संख्यात कर परिकीर्तित की जाती है। उसकी त्रिशती सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश भी हुआ करता है ॥२५॥ मनीषी लोग द्वापर को दो सहस्र वर्षों का युग कहते हैं। उसकी द्विशती सन्ध्या तथा सन्ध्या के बराबर ही सन्ध्यांश होता है ॥२६॥ कलियुग को एक सहस्र वाला मनीषी गण कहा करते हैं। उसकी भी सहस्र के हिसाब से एकशत वाली सन्ध्या होती है और सन्ध्या के तुल्य ही सन्ध्यांश होता है॥२७॥ यह बारह सहस्र की युगाख्या कही गई है इसमें कृत-त्रेता-द्वापर और कलियुग ये चार युग होते हैं ॥२८॥

अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ।
कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणां तत्प्रमाणतः ॥२९
सहस्राणां शतान्यत्र चतुर्दश तु संखयया ।
चत्वारिंशत् सहस्राणि कालिकालयुगस्य तु ॥३०
एवं संखयातकालश्च कालेष्विह विशेषतः ।
एवं चतुर्युगः कालो विना सन्ध्यांशकैः स्मृतः ॥३१
चत्वारिंशत्त्रीणि चैव नियुतानि च संखयया ।
त्रिंशतिश्च सहस्राणि ससन्ध्यांशश्चतुर्युगः ॥३२
एवं चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥३३

मन्वन्तरस्य संख्यातुवर्षाग्रेण निबोधत।
त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण प्रकीर्तिताः ॥३४
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु।
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकां विना ॥३५

यहाँ पर मानुष के द्वारा प्रमाण से संवत्सरों का सृजन किया गया है। तब तक कृत युग के वर्षों को उस प्रमाण से बतलाया जाता है ॥२९॥ सौ हजार चौदह संख्या से चालीस सहस्र कलि के युग का काल होता है ॥३०॥ यहाँ कालों में विशेष रूप से इस प्रकार का संख्यात काल है। इस तरह बिना संन्ध्यांश के चारों युगों का काल कहा गया है ॥३१॥ संख्या से तेतालीस नियुत बीस सहस्र चारों युगों का सन्ध्यांश होता है ॥३२॥ इस प्रकार से चारों युगों की नाम वाली इकहत्तर साधिका हैं। कृत और त्रेता आदि से युक्त वह मनु का अन्तर कहा जाता है ॥३३॥ मन्वन्तर की संख्या वर्षाग्र से जाननी चाहिए। मानुष के द्वारा तीस करोड़ वर्ष कहे गये हैं ॥३४॥ सड़सठ नियुत अन्य अधिक और बीस सहस्र का यह काल साधिका के बिना होता है ॥३५॥

मन्वन्तरस्य संख्यैषा संख्याविद्भिर्द्विजैः स्मृता।
मन्वन्तरस्य कालोऽयं युगैः सार्द्धं प्रकीर्तितः ॥३६
चतुः सहस्रयुक्तं वै प्रथमन्तत् कृतं युगम्।
त्रेतावशिष्टं वक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ॥३७
युगपत्समवेतार्थो द्विधा वक्तुं न शक्यते।
क्रमागतं मया ह्येतत्तुभ्यं प्रोक्तं युगद्वयम्।
ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथैव च ॥३८
तत्र त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ते।
श्रौतं स्मार्त्तञ्च धर्मञ्च ब्रह्मणा च प्रचोदितम् ॥३९
दाराग्निहोत्रसंयोगमृग्यजुः सामसंज्ञितम्।
इत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥४०
परस्परागतं धर्मं स्मार्त्तञ्चाचारलक्षणम्।

वर्णाश्रमाचारयुत मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।।४१
सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा च वै ।
तेषां सुतप्तपसामार्षेयेण क्रमेण तु ।।४२

संख्या के विद्वान् ब्राह्मणों ने मन्वन्तर की यह संख्या बतलाई है। मन्व-न्तर का यह काल युगों के साथ प्रकीर्त्तित किया गया है ।।३६।। चार सहस्र से युक्त प्रथम वह कृत युग है। त्रेता-द्वापर कलि जो अवशिष्ट हैं उन्हें बतलाया जायेगा ।।३७।। एक साथ समवेत अर्थ दो प्रकार से कहा नहीं जा सकता है। क्रम से आया हुआ यह मैंने तुम से दो युग कह दिये हैं। ऋषियों के प्रसङ्ग से व्याकुल होने से उसी प्रकार से कहे हैं ।।३८।। वहाँ पर त्रेता युग के आदि में मनु और वे सप्तर्षि थे। श्रौत और स्मार्त्त धर्म था जो कि ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित किया गया था ।।३९।। दाराग्निहोत्र संयोग-ऋग-यजु और साम संज्ञा से युक्त-इत्यादि लक्षण वाले श्रौत धर्म को सप्तर्षियों ने कहा था ।। ४० ।। परम्परा से आया हुआ आचार के लक्षण से युक्त तथा वर्णों और आश्रमों के आचार वाले स्मार्त धर्म को स्वायम्भुव मनु ने कहा था ।।४१।। सत्य-ब्रह्मचर्य-श्रुति और तप से भलीभाँति तप करने वाले उनके आर्षेय क्रम से कहा गया है ।।४२।।

सप्तर्षीणां मनोश्चैव आद्ये त्रेतायुगस्य तु ।
अबुद्धिपूर्वकं तेषाम क्रियापूर्वमेव च ।।४३
अभिव्यक्तास्तु ते मन्त्रास्तारकाद्यैर्निदर्शनै ।
आदिकल्पे तु देवानां प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम् ।।४४
प्रणाशे त्वथ सिद्धिनामभ्यासाच्च प्रवर्तनम् ।
आसन् मन्त्रा व्यतीतेषु ये कल्पेषु सहस्रशः ।
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिभाससमुत्थिताः ।। ५४
ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणानि च ।
सप्तर्षिभिस्तु ते प्रोक्ताः स्मार्तं धर्मं मनुर्जगौ ।।४६
त्रेतादौ संहिता वेदाः केवला धर्मशेषतः ।

संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरेषु ते ।।४७
ऋषयस्तपसा देवाः कलौ च द्वापरेषु वै ।
अनादिनिधना दिव्याः पूर्वं सृष्टाः स्वयम्भुवा ।। ४८
सधर्माः सप्रजाः साङ्गा यथाधर्मं युगे युगे ।
विक्रीडन्ते समानार्था वेदवादा यथायुगम् ।। ४६
आरम्भयज्ञा क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशाम्पतेः ।
परिचार यज्ञाशूद्रास्तु जपयज्ञा द्विजोत्तमाः ।। ५०

त्रेता युग आद्य में सप्तर्षियों के और मनु के उनके अबुद्धि पूर्वक तथा अक्रिया पूर्वक ही कहा गया है ।।४३।। तारकाद्य निदर्शनों से वे मन्त्र अभिव्यक्त हुए हैं. देवों के आदि कल्प में तो वे स्वयं ही प्रादुर्भूत हुए थे ।।४४।। इसके अनन्तर सिद्धियों के प्रणाश होने पर और इनका प्रवर्त्तन हुआ। व्यतीत कल्पों में जो सहस्रों मन्त्र थे वे मन्त्र पुनः उनके प्रतिमास से समुत्थित हुए हैं । ।।४५।। ऋग्-यजु साम और अथर्व के मन्त्रों को सप्तर्षियों ने कहा था और स्मार्त धर्म को मनु ने कहा था ।।४६।। त्रेता के आदि में केवल वेद संहिता थी धर्मशेप से ओर आयु के संरोध से वे द्वापर में व्यस्तमान होते हैं ।।४७।। कलियुग में और द्वापर में तप से ऋषिगण देव अनादि निधन अर्थात् आदि और निधान (मृत्यु) न होने वाले एवं दिव्य पहिले स्वयम्भू ने सृष्ट किये थे ।।४८।। धर्म के सहित प्रजा के सहित और सङ्गों के सहित युग युग में धर्म के अनुसार यथायुग वेद वाद समान अर्थ वाले विशेप क्रीड़ा किया करते हैं ।।४६। आरम्भयज्ञ क्षत्रिय-हविर्यज्ञ वाले वैश्य—परिचार के यज्ञ वाले शूद्र और जप के ही यज्ञ वाले ब्राह्मण थे ।।५०।।

तथा प्रामुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मपालिताः ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धाः सुखिनस्तथा ।।५१
ब्राह्मणाननुवर्त्तन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियान् विशः ।
वैश्यानुवर्तिनः शूद्राः परस्परमनुव्रताः ।।५२
शुभाः प्रवृत्तायस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमास्तथा ।
सङ्कल्पि तेन मनसा वाचोक्तेन स्वकर्मणा ।

त्रेतायुगे त्वविकलः कर्म्मारम्भः प्रसिद्धयति ॥५३
आयुर्मेधा बलं रूपमारोग्यं धर्मशीलता ।
सर्वसाधारणा ह्येते त्रेतायां वै भवन्त्युत ॥५४
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तेषां ब्रह्मा तथाकरोत् ।
पुनः प्रजास्तु ता मोहात्तान् धर्मान्न ह्यपालयन् ॥५५
परस्पर विरोधेन मनुन्ताः पुनरन्वयुः :
मनुः स्वायम्भुवो दृष्ट्वा याथातथ्यं प्रजापतिः ॥५६
धाता तु शतरूपायाः पुमान् स उदपादयत् ।
प्रियव्रतोत्ता नपादौ प्रथमन्तौ महीपती ॥५७

त्रेता युग में सभी वर्ण बहुत ही इस तरह प्रमुदितथे और धर्म से पालित थे। सभी क्रिया वाले प्रजा से युक्त, समृद्ध और सुखी थे ॥५१॥ क्षत्रिय लोग सर्वदा ब्राह्मणों का अनुवर्त्तन किया करते थे और वैश्य लोग सदा क्षत्रियों का अनुवर्त्तन करते थे तथा शूद्र परस्पर में एक दूसरे का अनुवर्त्तन करते थे ॥५२॥ उनकी जितनी और जो भी प्रवृत्तियाँ थीं-उनके धर्म-वर्ण और आश्रम सभी शुभ थे और सङ्कल्पित मन से तथा वाचोक्त कर्म से त्रेतायुग में अविकल कर्मों का आरम्भ प्रसिद्ध होता है ! ॥५३॥ आयु-मेधा-बल-रूप-आरोग्य-धर्म शीलता ये गुण त्रेता में सर्व साधारण थे अर्थात् सामान्य रूप से ही सब में रहा करते थे ॥५४॥ ब्रह्मा जी ने उनकी वर्ण और आश्रम की ऐसी व्यवस्था करदी थी तो भी फिर उस प्रजा ने उन धर्मों को मोह से पूर्ण तथा ॥५५॥ परस्पर में विरोध से वे फिर मनु को अन्वित हुईं। प्रजापति स्वायम्भुव मनु ने उनके याथातथ्य को देखा था ॥५६॥ धाता ने शतरूपा से वह पुमान् उत्पन्न कराया था। प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दो प्रथम महीपति थे ॥५७॥

ततः प्रभृति राजान उत्पन्ना दण्डधारिणः ।
प्रजानां रञ्जनाच्चैव राजानस्त्वभवन्नृपाः ॥५८
प्रच्छन्नपापा ये जेतुमशक्या मनुजा भुवि ।
धर्मसंस्थापनार्थाय तेषां शास्त्रे तपो मया ॥५९

वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायां संप्रकीर्तिताः ।
संहिताश्च ततो मन्त्रा ऋषिभिर्ब्राह्मणैस्तु ते ॥६०
यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा ह्येवन्तु दैवतैः ।
यामैः शुक्लैर्जपैश्चैव सर्वसम्भारसंवृतैः ॥६१
सार्द्धं विश्वभुजा चैव देवेन्द्रेण महौजसा ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे देवैर्यज्ञास्ते प्राक् प्रवर्तिताः ॥६२
सत्यं जपस्तपो दानं त्रेतायां धर्म उच्यते ।
क्रियाधर्मश्च ह्रसते सत्यधर्मः प्रवर्त्तते ॥६३
प्रजायन्ते ततः शूराः आयुष्मन्यो महाबलाः ।
न्यस्तदण्डमहाभागा यज्वानो ब्रह्मवादिनः ॥६४
पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथूरस्काः सुसंहिताः ।
सिंहान्तका महासत्त्वा मत्तमातङ्गगामिनः ॥६५
महाधनुर्द्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्तिनः ।
सर्वलक्षणसम्पन्नान्यग्रोधपरिमण्डलाः ॥६६

तब से लेकार दण्डधारी राजा लोग उत्पन्न हुए थे प्रजाओं के रञ्जन करने के कारण से ही नृप राजा हुए थे अर्थात् (राजा)-इस शब्द से नृपों को कहा जाने लगा था ॥५८॥ जो भूतमण्डल में प्रच्छन्न पाप वाले मनुष्य थे । उन के धर्म की संस्थापना करने के लिये शास्त्र में मैंने तप किया था ॥५६॥ त्रेता में वर्णों का प्रविभाग किया हुआ कीर्त्तित है । ऋषियों के तथा ब्राह्मणों के द्वारा वे संहिता और मन्त्र बतलाते हैं ॥६०॥ उस समय में यज्ञ इस प्रकार के सम्भार से संवृत याम शुक्ल और जपों के द्वारा तथा दैवतों से यज्ञ की प्रवर्त्तितता हुई ॥६१॥ विश्वभुज के और महान् ओज वाले देवेन्द्र के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवों ने वे यज्ञ पहिले प्रवर्तित किये थे ॥६२॥ त्रेता युग में सत्य-जप-तप-दान-धर्म कहा जाता था । क्रिया धर्म का ह्रास होता है और सत्य धर्म प्रवृत्त होता है । ६३॥ इसके अनन्तर आयुष्मान्-महाबल से युक्त शूर उत्पन्न होते हैं । न्यस्त दण्ड वाले महाभाग ब्रह्मवादी यज्वान-पद्मपत्र के समान नेत्रों वाले-पृथु वक्षः स्थल से युक्त-सुसंहित-सिंहान्तक महान् सत्व

वाले-मत्त मातङ्ग पर चढ़कर गमन करने वाले-महान् धनुधारी ऐसे विशेष गुणों से भूषित समस्त शुभ एवं सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न एवं न्यग्रोध परिमण्डल वाले त्रेता युग में चक्रवर्त्ती राजा थे ।।६४।।६५ ।६६।।

न्यग्रोधौ तौ स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते ।
व्यामेनैवोच्छ्रयाद्यस्य सम ऊर्द्ध्वन्तु देहिनः ।
समुच्छ्रयः परीणाहो ज्ञेयो न्यग्रोधमण्डलः ।।६७
चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वा गजास्तथा ।
सप्तातिशयरत्नानि सर्वेषाञ्चक्रवर्तिनाम् ।।६८
चक्र रथो मणिःखड्गं धनू रत्नञ्च पञ्चमम् ।
केतु निधिश्च सप्तैते प्राणहीनाः प्रकीर्त्तिताः ।।६९
भार्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च यः ।
मन्त्र्यश्वः कलभ श्चैव प्राणिनः सम्प्रकीर्त्तिताः ।।७०
रत्नान्येयानि दिव्यानि संसिद्धानि महात्मनाम् ।
चतुर्दश विधेयानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ।।७१
विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु वै ।।७२
भूतभव्यानि यानीह वर्त्तमानानि यानि च ।
त्रेतायुगादिकेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः ।।७३

वे दोनों न्यग्रोध बाहु कहे गये हैं और जो व्याम है वह न्यग्रोध कहा जाता है। जिस देहधारीका नाम से ही उच्छ्रय से ऊर्द्ध्व सम है। समुच्छ्रय परीणाह न्यग्रोध मण्डल जानने के योग्य होता है ।।६७। चक्र रथ-मणि पवङ्गा धनु यह पाँचवां रत्न था। केतु और निधिये सात रत्न प्राणों से हीन कहे गये हैं ।।६८।।६९।। भार्या-पुरोहित-सेनानी और रथकृत्-मन्त्री-अश्व कलभ ये साथ प्राण वाले अर्थात् प्राणधारी रत्न कहे गये हैं जोकि सर्वातिशय रत्न चक्रवर्त्तियों के होते थे ।।७०।। ये दिव्य रत्न महान् आत्मा वालों के संसिद्ध होते थे। और समस्त चक्रवर्त्तियों के ये चौदह वेधेय थे ।।७१।। समस्त मन्वन्तरों में जो अतीत हैं। तथा अनागत हैं पृथिवी में चक्रवर्त्ती विष्णु भगवान् के अंश से ही उत्पन्न

हुआ करते हैं ॥ ७२ ॥ भूत-भव्य और जो वर्त्तमान हैं यहाँ त्रेता युगादि में चक्रवर्ती उत्पन्न होते हैं । ७३॥

भद्राणीमानि तेषां वै भवन्तीह महीक्षिताम् ।
अद्भुतानि च चत्वारि बलं धर्मः सुखं धनम् ॥७४
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते वै नृपैः समम् ।
अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च ॥७५
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्त्या तथैव च ।
अन्येन तपसा चैव ऋषीनभिभवन्ति च ।
बलेन तपसा चैव देवदानवमानुषान् ॥७६
लक्षणैश्चापि जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः ।
केशस्थिता ललाटोर्णा जिह्वा चास्यप्रमार्जनी ।
ताम्रप्रभोष्ठदन्तोष्ठाः श्रीवत्साश्चोर्द्ध्वरोमशाः ॥७७
आजानुबाहवश्चैव जालहस्ता वृषाङ्किताः ।
न्यग्रोधपरिणाहाश्च सिंहस्कन्धाः सुमेहनाः ।
गजेन्द्रगतयश्चैव महाहनव एव च ॥७८
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मौ तु हस्तयोः ।
पञ्चाशीतिसहस्राणि ते भवन्त्यजरा नृपाः ॥७९
असङ्गा गतयस्तेषां च चतस्रश्चक्रवर्त्तिनाम् ।
अन्तरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च ॥८०

यहाँ उन राजाओं के ये परम भद्र और अत्यन्त अद्भुत चार बल-धर्म-सुख और धन होते हैं ॥७४॥ नृपों के द्वारा अन्योन्य के अविरोध से समान रूप में प्राप्त किये जाते हैं वे अर्थ-धर्म-काम-यश और विजय हैं ॥७५॥ वे अणिमादि ऐश्वर्य से तथा प्रभुशक्ति से और अन्य तप से ऋषियों का भी अभिभव किया करते हैं । बल और तप से समस्त देव दानव और मानवों को अभिभूत किया करते हैं ॥७६॥ शरीर में रहने वाले जो लक्षण होते हैं, उनसे भी युक्त वे उत्पन्न होते हैं । ये लक्षण भी ऐसे हैं जोकि अमानुषी हैं अर्थात् मनुष्यों में

नहीं होने वाले होते हैं। केशों पर स्थित ऊर्ण ललाट वाले और इसकी प्रमार्जन करने वाली जिह्वा थी। ताम्र के समान प्रभा वाले ओष्ठ एवं दन्तोष्ठ वाले श्रीवत्स तथा ऊर्ध्व रोमश थे ।।७७।। जानुपर्यन्त बाहुओं वाले जाल हस्त तथा वृषाङ्कित-न्यग्रोध के समान परिणाह से युक्त सिंह के सदृश स्कन्ध वाले और सुमेहन थे। गजेन्द्र के समान गति वाले तथा महान् हनु (ठोड़ी) वाले थे ।।७८।। जिनके पैरों में चक्र एवं मत्स्य के चिन्ह थे तथा हाथों मे शङ्ख और पद्म के चिन्ह थे ऐसे पिच्चासी सहस्र वे अजर अर्थात् वृद्धता से रहित नृप थे। ।।७९।। उन चक्रवर्त्तियों की चारों गतियाँ असङ्ग थीं ? अन्तरिक्ष में समुद्र में पाताल में और पर्वतों में सर्वत्र उनकी गति थी ।।८०।।

इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म उच्यते।
तदा प्रवर्त्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः। ८१
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्त्तते।
हृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्वा ह्यरोगाः पूर्णमानसाः ।।८२
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः।
त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः ।।८३
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण तु।
एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासन्धौ निबोधत ।।८४
त्रेतायुग स्वभावस्तु सन्ध्यापादेन वर्त्तते।
सन्ध्यायां वै स्वभावस्तु युगपादेन तिष्ठति ।।८५
कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम्।
पूर्वं स्वायम्भुवे सर्गे यथावत्तद्ब्रवीहि मे ।।८६
अन्तर्हितायां सन्ध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन वै।
कलाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृतवन्तश्च वै पुनः ।।८७

इज्या-दान-तप और सत्य ये चारों बातें त्रेता युग में धर्म कही जाती हैं। उस समय में वर्ण और आश्रमों के प्रविभाग से धर्म प्रवृत्त होता था ।।८१।। मर्यादा की स्थापना करने के लिये ही दण्डनीति की प्रवृत्ति होती है। समस्त

प्रजाजन परम प्रसन्न एवं पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण मानस वाले थे ॥८२॥ त्रेतायुग की विधि में चतुष्पाद एक वेद कहा गया है। उस समय में मानव तीन सहस्र वर्षों तक जीवित रहा करते हैं ॥८३॥ पुत्र और पौत्रों से पूर्ण तथा जब समाकीर्ण हो जाते थे तब क्रम से मृत्युगत हुआ करते थे। इस प्रकार से त्रेतायुग का यह धर्म है। अब त्रेता की सन्धि में जो धर्म था उसे जानलो। त्रेता युग का स्वभाव सन्ध्या पाद से होता है और सन्ध्या में स्वभाव युगपाद से रहता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ श्री शांशपायन ने कहा त्रेतायुग के मुख में यज्ञ का प्रवर्त्तन कैसे होता था ? पहिले स्वायम्भुव सर्ग में जिस प्रकार से है वह मुझे बतलाइये ॥८६॥ कृत युग के साथ सन्ध्या के अन्त हीन हो जाने पर उस समय में त्रेता युग के प्राप्त होने पर कलाख्या अर्थात् काल नाम वाली के प्रवृत्त होने पर फिर वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था की थी ॥८७॥

सम्भारांस्यांश्च सम्भृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः ।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्सूतः श्रूयतां शांशपायन ॥८८
यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम् ।
ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ।
प्रतिष्ठितायां वार्तायां गृहाश्रमपुरेषु च ॥८९
वर्णाश्रम व्यवस्थानं कृत्वा मन्त्रांश्च संहिताम् ।
मन्त्रान् संयोजयित्वाथ इहामुत्रेषु कर्मसु ॥९०
तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्तदा ।
दैवतैः सहितः सर्वैः सर्वसम्भारसम्भृतम् ॥९१
अथाश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ।
यजन्ते पशुभिर्मेध्यैर्हुत्वा सर्वे समागताः ॥९२
कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु सतते यज्ञकर्मणि ।
सम्प्रगीतेषु तेष्वेवमागमेष्वथ सत्वरम् ॥९३
परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युवृषभेषु च ।
आलब्धेषु च मेध्येषु तथा पशुगणेषु वै ॥९४

हविष्यग्नौ हूयमाने देवानां देवहोतृभिः ।
आहूतेषु च देवेषु यज्ञभाक्षु महात्मसु ॥६५
य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभाजस्तथा तु ये ।
तान् यजन्ते तदा देवाः कल्पादिषु भवन्ति ये ॥६६

उन सम्भारों को संभृत करके यज्ञ किस प्रकार से प्रवृत्त हुआ था यह बतलाइये । यह सुनकर श्री सूतजी बोले हे शांशपायन ! अब तुम मुझ से श्रवण करो ॥८८॥ जिस प्रकार से त्रेता युग के मुख में यज्ञ की प्रवृत्ति थी । वृष्टि के सर्जन होने से ओषधियों के उत्पन्न होने पर गृह और आश्रम तथा पुरों में वार्त्ता के प्रतिष्ठित होने पर वर्ण और आश्रमों की पूर्ण व्यवस्था करके तथा मन्त्रों और संहिता का व्यवस्थित बनाकर एवं यहाँ और परलोक के कर्मों में मन्त्रों का संयोजन करके तब विश्व का भोग करने वाले इन्द्र ने यज्ञ को प्रवृत्त कराया था जोकि समस्त देवों के साथ समस्त सम्भारों से सम्भृत था ॥८९॥९०।९१॥ इसके अनन्तर अश्वमेध के वितत होने पर महर्षिगण समागत हुए थे । और सबने समागमन करके मेध्यजंगमों तत्वों के द्वारा यजन किया था ॥९२॥ सतत होने वाले यज्ञों के कर्म-ऋत्विकों के कर्म करने में व्यस्त होने पर और सत्वर ही उन समस्त आगमों के सम्प्रगीत होने पर तथा लघु अध्वर्यु और बृषभों के परिक्रान्ति होने पर तथा मेध्यों के आलभन होजाने पर एवं अग्नि में हवियों के हूयमान हो जाने पर और देव होताओं के द्वारा देवों के आहूत किये जाने पर जोकि महान् आत्मा वाले देव यज्ञों के भाग को ग्रहण करने वाले थे, जो इन्द्रियात्मक देव यज्ञ के भाग लेने वाले थे उस समय जो कल्पादि में होते हैं उनका ही यजन किया करते हैं ॥९३॥९४॥ ॥९६॥

अध्वर्यवः प्रैषकाले व्युत्थिता ये महर्षयः ।
महर्षयस्तु तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणान् स्थितान् ।
पप्रच्छुरिन्द्रं सम्भूय कोऽयं यज्ञविधिस्तव ॥६७
अधर्मो बलवानेष हिंसाधर्मेप्सया तव ।
नेष्टाः पशुवधस्त्वेष तव यज्ञे सुरोत्तम ॥६८

अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया ।
नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते ।।९९
आगमेन भवान् यज्ञं करोतु यदिहेच्छसि ।
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्ययहेतुना ।
यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ येषु हिंसा न विद्यते ।।१००
त्रिवर्षपरमं कालमुषितैरप्ररोहिभिः ।
एष धर्मो महानिन्द्र स्वयम्भुविहितः पुरा ।।१०१
एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
जङ्गमैः स्थावरैर्वेति कैर्यष्टव्यमिहोच्यते ।।१०२
ते तु खिन्ना विवादेन तत्त्वयुक्ता महर्षयः ।
सन्धाय वाक्यमिन्द्रेण प्रपच्छुश्चेश्वरं वसुम् ।।१०३
महाप्राज्ञ कथं दृष्टस्त्वया यज्ञविधिर्नृप :
उत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं छिन्धि नः प्रभो ।।१०४

प्रौष्ट काल में जो महर्षि अव्यग्र व्युत्थित हुए थे तो उस समय में उन दीन एवं स्थित पशुगणों को देख कर महर्षियों ने सम्भूत हो कर इन्द्र से पूछा था कि यह आपके यज्ञ की क्या विधि है ? ।।९७।। आपकी हिंसा धर्म की इच्छा से यह बड़ा जबर्दस्त अधर्म किया जाता है ! हे सुरोत्तम ! आपके यज्ञ में यह पशुओं का वध तो इष्ट नहीं है ।।९८।। आपने पशुओं के द्वारा धर्म का नाश करने के लिये यह अधर्म आरम्भ कर दिया है । यह तो धर्म नहीं हैं । यह तो अधर्म ही है । हिंसा कभी धर्म नहीं कहा जाया करता है आप यदि चाहते ही हैं तो आगम के द्वारा यज्ञ करियेगा । हे सुरश्रेष्ठ ! धर्म मव्यय का हेतु विधिदृष्ट यज्ञसे तथा यज्ञ-बीजों के द्वारा यजन होना चाहिए जिसमें हिंसा न हो वे ।।१००। हे इन्द्र ! तीन वर्ष तक परमकाल में अप्ररोहियों के द्वारा उषित रहते हुए यह धर्म महान् स्वयभू के द्वारा विहित है जोकि पहिले किया गया है ।।१०१। इस प्रकार से विश्वभुक इन्द्र देव तत्त्व के द्रष्टा महर्षियों के द्वारा कहा जाता है कि स्थावरों से ही हमको यजन करना चाहिए ।।१०२। वे तत्त्वों से युक्त महर्षिगण विवाद से बहुत ही खिन्न

हुए और इन्द्र के द्वारा वाक्य का सन्धान करके ईश्वर वसु से उन्होंने पूछा था ॥१०३॥ ऋषियों ने कहा—हे महा प्राज्ञ! हे नृप! आपने यह कैसी और क्या यज्ञ की विधि देखी है? उत्तान पाद के विषय में बताइये हे प्रभो! हमारे इस संशय का छेदन करिये ॥१०४॥

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषामविचार्य बलाबलम् ।
वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ।
यथोपदिष्टं यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः ॥१०५
यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ बीजैः फलैस्तथा ।
हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शयत्यसौ ॥१०६
यथेह संहितामन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः ।
दीर्घेण तपसा युक्तैर्दर्शनैस्तारकादिभिः ।
तत्प्रामाण्यान्मया चोक्तं तस्मान्मा मन्तुमर्हथ ॥१०७
यदि प्रमाणं तान्येव मन्त्रवाक्यानि वै द्विजाः ।
तदा प्रावर्त्तनां यज्ञो ह्यन्यथा नोऽनृतं वचः ।
एवं हृतोत्तरास्ते वै युक्तात्मानस्तपोधनाः ॥१०८
अधश्च भवनं दृष्ट्वा तमर्थं वाग्यतो भव ।
मिथ्यावादी नृपो यस्मात् प्रविवेश रसातलम् ॥१०९
इत्युक्तमात्रे नृपतिः प्रविवेश रसातलम् ।
ऊर्द्ध्वचारी वसुर्भूत्वा रसातलचरोऽभवत् ॥११०
वसुधातलवासी तु तेन वाक्येन सोऽभवत् ।
धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरथागतः ॥११
तस्मान्न वाच्यमेकेन बहुज्ञेनापि संशयः ।
बहूद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्माद्दूरमुपागतिः ॥११२
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यस्तु केनचित् ।
देवानृषीनुपादाय स्वायम्भुवमृते मनुम् ॥११३
तस्मान्न हिंसाधर्मस्य द्वारमुक्तं महर्षिभिः ।
ऋषिकोटिसहस्राणि कर्मभिः स्वैर्दिवं ययुः ॥११४

इसके अनन्तर उनके वाक्य को सुनकर और बलाबल का विचार न कर के तथा वेद शास्त्र का अनुसरण करके यज्ञ के तत्त्व को बतलाया था। पार्थिव ने कहा जैसा भी उपदिष्ट है उसी से यजन करना चाहिए ॥१०५॥ मेध्य पशुओं द्वारा, बीजों के द्वारा और फलों के द्वारा यजन करना चाहिए। मुझे यह दिख लाई देता है कि यज्ञ का हिंसा स्वभाव होता है ॥१०६॥ यहाँ पर जैसा संहिता के मन्त्र हैं जिनका कि लिङ्ग ही हिंसा है दीर्घ तप से युक्त महर्षियों ने और तारिकादि दर्शनों ने कहा है। उसी के प्रामाण्य से मैंने कहा है इसलिए इस विषय में मुझे मत मानो। अर्थात् मुझे ही मानने के योग्य नहीं होते हैं ॥१०७॥ हे द्विज गणो ! यदि वे ही मन्त्र वाक्य प्रमाण हैं तो यज्ञ को प्रवृत करो अन्यथा हमारा वचन असत्य है। इस प्रकार से युक्तात्मा वे तपो धन हृतोत्तर हो गये अर्थात् चुप हो गये थे ॥१०८॥ नीचे भवन को देखकर उसके लिये वग्यत अर्थात् मौन हो जाओ। जिससे मिथ्यावादी नृप ने रसातल में प्रवेश किया था ॥१०९॥ इतना केवल कहने पर राजा ने रसातल में प्रवेश किया था और ऊर्ध्वचारी वसु होकर रसातल में चरण करने वाला हो गया था ॥११०॥ उस वाक्य से वह वसुधा तल का वासी हो गया था। धर्मों के संशय का छेदन करने वाला राजा बसु इसके अनन्तर आगया ॥१११॥ इसलिये चाहें बहुत कुछ जानने वाला भी क्यों न हो कभी भी किसी एक को संशय का निराकरण नहीं बोलना चाहिए। बहुत उद्धार वाले धर्म की सूक्ष्मता से दूर उपागति होती है ॥११२॥ इस कारण से किसी के द्वारा निश्चय पूर्वक धर्म का विषय बोला नहीं जा सकता है। केवल देवों को और ऋषियों को लेकर स्वायम्भुव मनु ही हो धर्म को जानते हैं। इनको छोडकर अन्य कोई नहीं जान सकता है ॥११३॥ इसलिये महर्षियों ने हिंसा को धर्म का द्वार नही कहा है। सहस्रों करोड़ ऋषि अपने कर्म्मों से स्वर्ग को गये थे ॥११४॥

तस्मान्न दानं यज्ञं वा प्रशंसन्ति महर्षयः।
तुच्छं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः।
एवं दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः ॥११५

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्दुरासदम् ॥११६
धर्ममन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्चानशनात्मकम्।
यज्ञेन देवानाप्नोति वैराग्यं तपसा पुनः ॥११७
ब्राह्मण्यं कर्मसंन्यासाद्वैराग्यात् प्रेक्षते लयम्।
ज्ञानात् प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयः स्मृताः ॥११८
एवं विवादः सुमहान् यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तने।
ऋषीणां देवतानाञ्च पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥११९
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वाद्भुतं वर्त्म बलेन तु।
वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागताः ॥१२०
गतेषु देवसङ्घेषु देवा यज्ञमवाप्नुयुः।
श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा ब्रह्मक्षत्रमया नृपाः ॥१२१

इससे महर्षिगण दान अथवा यज्ञ की प्रशंसा नहीं किया करते हैं। तपोधन अर्थात् तपस्वी लोग तुच्छ मूल-फल-शाक और उदकका पात्र देकर इस प्रकार से विभव से स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होते हैं ॥११५॥ अद्रोह-लोभ न करना-दम-प्राणियों पर दया-तपस्या-ब्रह्मचर्य-सत्य अनुक्रोश-क्षमा-धृति यह सब सनातन धर्म को दुरासह (दुर्लभ) मूल होता है ॥११६॥ धर्म मन्त्रात्मक यज्ञ होता है। और अनशन स्वरूप वाला तप होता है। यज्ञ से देवों को प्राप्त किया करता है और फिर तप से वैराग्य का लाभ करता है ॥११७॥ कर्मों के संन्यास (त्याग) से ब्रह्मण्य को और वैराग्य से तप को प्रेक्षण किया करता है। ज्ञान से कैवल्य (अपवर्ग] को प्राप्त करता है ये पाँच ही गतियाँ कही गई है ॥११८॥ पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर में इस प्रकार से देवताओं का और ऋषियों का यज्ञ के प्रवर्त्तन में बहुत बड़ा विवाद हुआ था ॥११९॥ इसके अनन्तर ऋषिगण बल से अद्भुत मार्ग देख कर और वसु के वाक्य का अनादर करके जैसे आये थे वैसे ही वे चले गये थे ॥१२०॥ देवों के सङ्घ के चले जाने पर देवों ने यज्ञ की प्राप्ति की और तप से सिद्ध ब्रह्मक्षत्रमय नृप भूयमाण होते हैं ॥१२१॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः ।
सुमेधा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रज एव च ।
प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्द्धानादयो नृपाः ।।१२२
एते चान्ये च बहवो नृपाः सिद्धा दिवं गता ।
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वेषु कारणैः ।
ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा ।।१२४
तस्मान्नात्येति तद्यज्ञं तपोमूलमिदं स्मृतम् ।
यज्ञप्रवर्त्तनं ह्येवमतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ततःप्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सह व्यवर्त्तत ।।१२५

प्रियव्रय-उत्तान वाव-ध्रुव मेधातिथि-वसु-सुमेधा- विरजा-शंख वाव रज-प्रस्वीनबर्हि पर्जन्य और दविर्धानि आदि राज -ये नृप तथा अन्य बहुत से राजा सिद्ध थे और वे स्वर्ग को गये थे। ये राजर्षिगण महान् संत्व से युक्त थे जितनी कि कीर्त्ति प्रतिष्ठित है ।।१२३।। इसलिये सबमें कारणों के द्वारा तप यज्ञ से विशिष्ट हुआ करता है। पहले श्री ब्रह्माजी ने तप से ही इस जगत् तथा विश्व को सृष्ट किया था ।।१२४।। इसलिये वह यज्ञ अधिक नहीं होना है । यह तप के मूल वाला कहा गया है इस प्रकार से स्वयम्भुव मन्वन्तर में यज्ञ का प्रवर्त्तन हुआ था । तव से लेकर यह यज्ञ युगों के साथ विशेष रूप से हुआ था ।।१२५।।

।। प्रकर्ण ४० —चारों युगों का आख्यान ।।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः ।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ।।१
द्वापरादौ प्रजानान्तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या ।
परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सा संप्रणश्यति ।।२
ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः ।
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ।।३
सम्भेदश्चैव वर्णानां कार्याणाञ्चा विनिर्णयः ।
यज्ञौषधैः पशौर्दण्डो मदो दम्भोऽक्षमा बलम् ।

एषां रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ॥ ४ ॥
आद्ये कृते च धर्मोऽस्ति त्रेतायां सम्प्रपद्यते ।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥
वर्णानां विपरिध्वंसः संकीर्त्यते तथाश्रमः ।
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन् श्रुतौ स्मृतौ ॥ ६ ॥
द्वैधात् श्रुतेः स्मृतेश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते ।
अनिश्चयाधिगमनाद्धर्मतत्त्वं निगद्यते ।
धर्मतत्त्वे तु भिन्नानां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ॥ ७ ॥

श्री सूतजी ने कहा इसके आगे पुनः द्वापर की विधि को कहूँगा। वहाँ पर त्रेतायुग के क्षीण हो जाने पर द्वापर युग प्रतिपन्न होता है ॥ १ ॥ प्रजा-जनों को त्रेतायुग में जो सिद्धि थी वह द्वापर के आदि में युग के परिवृत्त हो जाने पर उस द्वापर में वह फिर प्रनष्ट हो जाती है ॥ २ ॥ द्वापर में फिर उन प्रजाओं के लोभ, अधृति वणिग्युद्ध, तत्त्वों का अविनिश्चय, वर्णों का सम्भेद, कार्यों का अविनिर्णय, यज्ञौषधि पशु का दण्ड, मद, दम्भ, अक्षमा, बल से सब प्रवृत्त होते है और इनकी रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त द्वापर में प्रवृत्ति कही गई है ॥ ४ ॥ आद्य कृत युग में धर्म है त्रेता मे वह सम्प्रपन्न होता है और द्वापर में व्याकुली भूत होकर कलियुग में प्रनष्ट हो जाया करता है ॥ ५ ॥ वर्णों का विशेष रूप से परिध्वंस संकीर्त्तित किया जाता है। उस युग में श्रुति स्मृति में आश्रम भी उसी प्रकार से द्वैध भाव को प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥ श्रुति के और स्मृति के द्वैध भाव से किसी भी निश्चय का अधिगम नहीं किया जाता है। अनिश्चय के अधिगमन से धर्म का तत्त्व कहा जाया करता है। धर्म के तत्त्व में भिन्न मनुष्यों का मतभेद हो जाता है ॥ ७ ॥

परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण च ।
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाभिगम्यते ॥ ८ ॥
कारणानाञ्च वैकल्यात् कारणस्याप्यनिश्चयात् ।
मतिभेदे च तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत् ॥ ९ ॥

ततो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते ।। १० ।।
संरोधादायुषश्चैव दृश्यते द्वापरेषु च ।
वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।। ११ ।।
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टि-विभ्रमैः ।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ।। १२ ।।
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां सहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः ।
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित्क्वचित् ।। १३ ।।
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च ।
अन्ये तु प्रहितास्तीर्थैः केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ।। १४ ।।

परस्पर में विभिन्न उन मनुष्यों के द्वारा और दृष्टियों के विभ्रम के होने से—'यह धर्म है और यह धर्म नहीं है' यह निश्चय नहीं किया जाता है कि वस्तुतः धर्म क्या है ।। ८ ।। कारणों के वैकल्प होने से और कारण का भी निश्चय नहीं होने से और उन के मतिभेद होने से दृष्टियों का विभ्रम हो जाया करता है ।। ६ ।। इसके पश्चात् दृष्टि से विभिन्न उनके द्वारा यह शास्त्र कुल दिया गया है । इस त्रेता में यहाँ एक वेद चार पादों वाला विधान किया जाता है ।। १० ।। हृदयों में आपके संरोध से दिखलाई देता है । द्वापरादि में वेद व्यास के द्वारा चार प्रकार से व्यस्यमान किया जाता है ।। ११ ।। ऋषियों के पुत्रों के द्वारा दृष्टि के विभ्रमों से वेदों के पुनः भेद किये जाया करते हैं मन्त्र और ब्राह्मण भाग के विन्यासों के द्वारा तथा स्वर वर्ण के विपर्ययों के द्वारा भेद किये जाते हैं ।। १२ ।। ऋग्-यजु और साम वेदों की संहिता कहीं-कहीं पर दृष्टि से भिन्न श्रुतर्षियों के द्वारा सामान्य तथा वैकृत रूप से संहन्यमान होती हैं ।। १३ ।। ब्राह्मण, कल्पसूत्र और मन्त्र प्रवचन अन्य तीर्थों के द्वारा प्रहित हैं । कुछ लोग उनके प्रति अवस्थित हैं ।। १४ ।।

द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते भिन्नवृत्ताश्रमा द्विजाः ।
एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद्द्वैधं पुनस्ततः ।। १५ ।।
सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
आध्वर्यवस्य प्रस्तावैर्बहुधा व्याकुलं कृतम् ।। १६ ।।

तथैवाथर्वऋक्सामनां विकल्पैश्चाप्यसंक्षयैः ।
व्याकुलं द्वापरे भिन्ने क्रियते भिन्नदर्शनैः ॥ १७ ॥
तेषां भेदाः प्रभेदाश्च विकल्पैश्चाप्यसंक्षयाः ।
द्वापरे सम्प्रवर्तन्ते विनश्यन्ति पुनः कलौ ॥ १८ ॥
तेषां विपर्ययाश्चैव भवन्ति द्वापरे पुनः ।
अवृष्टिर्मरणञ्चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ॥ १९ ॥
वाङ्मनः ।कर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते पुनः ।
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्ष विचारणा ॥ २० ॥
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
दोषाणां दर्शनच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः ॥ २१ ॥

द्वापर में भिन्न वृत्त और आश्रमों वाले द्विज प्रवर्तित होते हैं। एक पहिले आध्वर्यव था वह फिर द्वैध हो गया ॥ १५ ॥ सामान्य और विपरीत अर्थों से यह शास्त्र कुल किया गया है। आध्वर्यव के प्रस्तावों से बहुधा व्याकुल कर दिया है ॥ १६ ॥ उसी प्रकार से अथर्व ऋक् और सामों के असंक्षय विकल्पों से भी भिन्न द्वापर में भिन्न दर्शनों से व्याकुल किया जाता है ॥ १७ ॥ उनके भेद और प्रभेद और विकल्पों से भी असंक्षय द्वापर में सम्प्रवृत्त होते हैं और फिर कलियुग में विनष्ट हो जाया करते हैं ॥ १८ ॥ द्वापर में फिर उन के विपर्यय भी होते हैं। अवृष्टि-मृत्यु और उसी प्रकार से व्याधियों के उपद्रव होते हैं ॥ १९ ॥ वाणी-मन और कर्म से उत्पन्न दुःखों से फिर निर्वेद (वैराग्य) हो जाता है। निर्वेद हो जाने से उनको दुःख से छुटकारा पाने की विचारणा होती है ॥ २० ॥ विचारणा से वैराग्य होता है और वैराग्य से सांसारिक वस्तुओं में दोषों का दर्शन होने लगता है और दोषों के देखने से द्वापर में ज्ञान की उत्पत्ति होती है ॥ २१ ॥

तेषाञ्च मानिनां पूर्वमाद्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
उत्पद्यन्ते हि शास्त्राणां द्वापरे परिपन्थिनः ॥ २२ ॥

आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानां ज्योतिषस्य च ।
अर्थशास्त्रविकल्पश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥ २३ ॥
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक् पृथक् ।
द्वापरेष्वभिवर्त्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ॥ २४ ॥
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्रा द्वार्त्ता प्रसिद्ध्यति ।
द्वापरे सर्वभूतानां कायक्लेशपुरस्कृता ॥ २५ ॥
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ।
वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां सङ्करस्तथा ॥ २६ ॥
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रोगो लोभो वधस्तथा ।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च ॥ २७ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तथा नृणाम् ।
निःशेषे द्वापरे तस्मिन् तस्य सन्ध्या तु पादतः ॥ २८ ॥

पहले आद्य स्वायम्भुव मन्वन्तर में उन मानी शास्त्रों के द्वापर में परिपन्थी उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥ अङ्गों के और ज्योतिष के आयुर्वेद विकल्प हैं। अर्थशास्त्र विकल्प और हेतुशास्त्र विकल्प हैं ॥ २३ ॥ स्मृतिशास्त्र के प्रभेद पृथक् पृथक् प्रस्थान हैं। द्वापर में उस प्रकार से मनुष्यों के मतिभेद अभिवर्तित होते हैं ॥ २४ ॥ मन से, वाणी से, कर्म से, कष्ट से वार्त्ता प्रसिद्ध होती है। द्वापर में समस्त प्राणियों की वार्ता कायक्लेश से पुरस्कृता होती है ॥ २५ ॥ लोभ, अधैर्य, वणिज्युद्ध, तत्वों का निश्चय न होना, वेद शास्त्रों का प्रणयन और धर्मों का सङ्कट, रोग, लोभ, वध, वर्णों और आश्रमों का परिध्वंस, काम और द्वेष ये सब द्वापर में प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ मनुष्यों की परमायु पूर्ण दो सहस्र वर्ष होती है। उस द्वापर के निःशेष होने पर उसकी सन्ध्या एक पाद से होती है ॥ २८ ॥

प्रतिष्ठते गुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ।
तथैव सन्ध्यापादेन अंशस्तस्यावतिष्ठते ॥ २९ ॥
द्वापरस्य च वर्षे या तिष्यस्य तु निबोधत ।
द्वापरस्यांशशेषेतु प्रतिपत्तिः कलेरतः ॥ ३० ॥

हिंसासूयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयन्ति च वै प्रजाः ॥ ३१ ॥
एष धर्मः कृतः कृत्स्नो धमश्च परिहीयते ।
मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्त्ता सिद्ध्यति वा न वा ॥ ३२ ॥
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयानि वै ।
अनावृष्टिभयं घोरं दर्शनञ्च विपर्ययम् ॥ ६३ ॥
न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोके युगे युगे ।
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्तथापरः ।
स्थाविरे मध्यकौमारे म्रियन्ते वं कलौ प्रजा ॥ ३४ ॥
अधार्मिकास्त्वनाचारास्तीक्ष्ण कोपाल्पतेजसः ।
अनृतब्रुवश्च सतत तिष्ये जायन्ति वैं प्रजाः ॥ ३५ ॥

द्वापर का यह धर्म गुणों से हीन प्रतिष्ठित होता है। उसी प्रकार से सन्ध्यापाद से उसका अंश अवस्थित होता है ॥ २९ ॥ द्वापर के वर्ष में जो तिष्य की है उसे समझ लो। द्वापर के अंश शेष में इससे कलियुग की प्रतिपत्ति हो जाती है ॥ ३० ॥ हिंसा, असूया, अनृत, माया और तपस्वियों का बध ये स्वभाव तिष्य के हुआ करते हैं। उस समय प्रजा इनका साधन किया करती है ॥ ३१ ॥ यह किया हुआ पूर्ण धर्म है और धर्म परिहीन हो जाता है। मन से, कर्म से और वाणी से (वाणी का ही पर्याय स्तुति है) वार्त्ता सिद्ध होती है और नहीं भी होती है ॥ ३२ ॥ कलियुग में जो रोग होता है वह प्रकर्ष रूप से मारक हुआ करता है और निरन्तर क्षुधा के शान्त करने का भय बना रहा करता है। वर्षा के बिलकुल न होने का भय तथा घोर दर्शन एवं विपर्यय होता है ॥ ३३ ॥ तिष्य लोक में युग-युग में स्मृति का प्रमाण नहीं होता है। कोई गर्भ में स्थिति ही मर जाता है और दूसरा पूर्ण यौवनावस्था में स्थित ही मृत्युगत हो जाता है। कलियुग में स्थाविर में मध्य कौमार प्रजा मर जाया करती है ॥ ३४ ॥ तिष्य में प्रजा अधार्मिक, अनाचार से युक्त, तीक्ष्ण कोप वाली, अल्प तेज से युक्त और मिथ्या बोलने वाली निरन्तर उत्पन्न हुआ करती है ॥ ३५ ॥

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भवम् ।। ३६ ।।
हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाक्षमानृतम् ।
तिष्ये भवन्ति जन्तूनां रागो लोभश्च सर्वशः ।। ३७ ।।
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ।
नाधीयन्ते तदा वेदा न यजन्ते द्विजातयः ।
उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाः सविशः क्रमात् ।। ३८ ।।
क्षुद्राणामन्ययोनेस्तु सम्बन्धा ब्राह्मणैः सह ।
भवन्तीह कलौ तस्मिन् शयनासनभोजनैः ।। ३९ ।।
राजानः शूद्रभूयिष्ठा पाषण्डानां प्रवर्तकाः ।
भ्रूणहत्याः प्रजास्तत्र प्रजा एवं प्रवर्त्तते ।। ४० ।।
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलञ्चैव प्रहीयते ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ।। ४१ ।।
राजवृत्ते स्थिताश्चौराश्चौरवृत्ताश्च पार्थिवाः ।
भृत्याश्च नष्टसुहृदो युगान्ते पर्युपस्थिते ।। ४२ ।।

बुरे इष्ट वाले, बुरा अध्ययन करने वाले, बुरे आचार वाले और बुरे आगम वाले ब्राह्मणों के इन कर्म दोषों से प्रजा जनों को भय उत्पन्न हुआ करता है ।। ३६ ।। हिंसा, माया, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, अक्षमा, अनृत, राग और लोभ तिष्य में सब ओर से जन्तुओं को हुआ करते हैं ।। ३७ ।। कलियुग प्राप्त करके जीवों को अत्यन्त संक्षोभ हुआ करता है । उस कलि के समय में द्विजाति वेदों को नहीं पढ़ा करते हैं और न वे भजन ही किया करते हैं । इससे मनुष्य और वैश्यों के सहित क्षत्रिय क्रम से उत्पीड़ित हुआ करते हैं ।। ३८ ।। क्षुद्रों का और अन्य योनि का सम्बन्ध ब्राह्मणों के साथ इस कलियुग में शयन, आसन और भोजन के द्वारा हुआ करते हैं ।। ३९ ।। राजा लोग शूद्रों की अधिकता वाले प्रायः हुआ करता है और पाषण्डों के प्रवर्त्तक होते हैं । उनमें प्रजा ऐसी होती है जो भ्रूण हत्या वाली होती है ।। ४० ।। आयु, मेधा, बल, रूप और कुल परिहीन होता है । जो शूद्र होते हैं उनके तो ब्राह्मणों जैसे आचार होते हैं और जो ब्राह्मण होते हैं उनके शूद्रों के समान आचार हुआ करते हैं

॥ ४१ ॥ राजा के वृत में चोर रहा करते हैं और चोर वृत्त वाले राजा लोग होते हैं। युगान्त के पर्युपस्थित होने पर जो भृत्य होते हैं वे सौहार्द को खोने वाले हुआ करते हैं ॥ ४२ ॥

अशीलिन्योऽव्रताश्चापि स्त्रियो मद्यामिषप्रियाः ।
मायामात्रा भविष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ॥ ४३ ॥
श्वापदप्रबलत्वञ्च गवाञ्चैवाप्युपक्षयः ।
साधूनां विनिवृत्तिश्च विद्यात्तस्मिन कलौ युगे ॥ ४४ ॥
तदा सूक्ष्मे महोदर्को दुर्लभो भोगिनां तथा ।
चतुराश्रमशैथिल्याद्धर्मः प्रविचलिष्यति ॥ ४५ ॥
तदा ह्यल्पफला देवी भवेद्भूमिर्महीयसी ।
शूद्रास्तपश्चरिष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ॥ ४६ ॥
तदाह्यकाहिको धर्मो द्वापरे पक्ष मासिकः ।
त्रेतायां वत्सरस्थश्च एकाहादतिरिच्यते ॥ ४७ ॥
अरक्षितारो हतारी बलिभागस्य पार्थिवा ।
युगान्तेषु भविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ॥ ४८ ॥
अक्षत्रियाश्च राजानो विशः शूद्रोपजीविनः ।
शूद्राभिवादिनः सर्वे युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥ ४९ ॥

कलियुग में युगान्त के प्रत्युपस्थित होने पर स्त्रियाँ शील से रहित, बिना व्रत वाली और मद्य तथा मांस से प्यार करने वाली, माया से परिपूर्ण हो जाँयगी ॥ ४३ ॥ श्वापदों की प्रबलता तथा गौओं का उपक्षय उस कलियुग में साधुओं की विनिवृत्ति हो जायगी ऐसा जान लेना चाहिए ॥ ४४ ॥ उस समय सूक्ष्म में भोगियों का महोदर्क दुर्लभ होगा। चारों आश्रमों की शिथिलता से धर्म प्रविचलित हो जायगा ॥ ४५ ॥ यह महीयसी देवी भूमि भी अल्प फल देने वाली होगी। युगान्त के उपस्थित होने पर जो शूद्र वर्ण वाले व्यक्ति हैं वे तपस्या करेंगे ॥ ४६ ॥ जो धर्म द्वापर युग में मासिक था वह कलियुग के समय में एकाहिक अर्थात् एक दिन में पूर्ण होने वाला है, यही धर्म त्रेता में एक वर्ष में होने वाला होता था जो कि प्रमाद से अतिरिक्त हुआ करता है।

॥ ४७ ॥ युगान्तों में राजा लोग प्रजा की रक्षा न करने वाले और अपने ही संरक्षण में परायण रहने वाले केवल बलि भाग के हरण करने वाले होंगे ॥४८॥ राजा लोग अक्षत्रिय अर्थात् क्षत्रिय वर्ण के न रहने वाले तथा वैश्य शूद्रों से अपनी रोजी कमाने वाले होंगे तथा युगान्त में श्रेष्ठ द्विज भी शूद्रों को अभिवादन करने वाले होंगे ॥ ४९ ॥

पतयश्च भविष्यन्ति बहवोऽस्मिन् कलौ युगे।
चित्रवर्षी तदा देवो यदा स्यात्तु युगक्षयः ॥ ५० ॥
सर्वे वाणिजकाश्चापि भविष्यन्त्यधमे युगे।
भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यविक्रीततेजनैः ॥ ५१ ॥
कुशीलचर्या पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृतम्।
पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ५२ ॥
बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम्।
क्रव्यादनः क्रूरवाक्यो नार्जवो नानसूयकः ॥ ५३ ॥
न कृते प्रतिकर्ता च क्षीणो लोको भविष्यति।
अशङ्का चैव पतिते तद्युगान्तस्य लक्षणम् ॥ ५४ ॥
नरशून्या वसुमती शून्या चैव भविष्यति।
मण्डलानि भवन्त्यत्र देशेषु नगरेषु च ॥ ५५ ॥
अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुन्धरा।
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्त्यशासनाः ॥ ५६ ॥

इस कलियुग में बहुत-से पति होंगे। उस समय में देव भी चित्र-वर्षा वाला होगा, जबकि युगक्षय होगा ॥ ५० ॥ इस अधम युग में सभी वाणिजक अर्थात् वाणिज्य करने वाले होंगे जो कि अधिकता से कूट-मान और पण्य विक्रीत तेजनों से जीविकोपार्जन किया करेंगे ॥ ५१ ॥ कुशीलचर्या होगी और वृथा रूप पाषण्डों से समावृत थोड़े पुरुष तथा अधिक स्त्रियों से युक्त समाज युगान्त के पर्युपस्थित काल में हो जायगा ॥५२॥ लोक बहुत से याचकों से परिपूर्ण आपस में हो जायगा। मांसभोजी, क्रूर वचन बोलने वाले असरल और निन्दा करने वाले लोग होंगे ॥५३॥ किये हुए उपकार का प्रतिकर्त्ता न होकर

क्षीण-लोक हो जायगा। युगान्त का यह लक्षण है कि पतित में अशङ्का हुआ करती है ॥५४॥ वसुमती नरों से रहित एवं शून्य हो जायगी। देशों मे और नगरों में यहाँ मंडल होगे ॥५५॥ वसुन्धरा यह थोड़े जल वाली और थोड़ा ही फल देने वाली हो जायगी। जो रक्षा करने वाले हैं वे ही अरक्षक और शासन रहित होंगे ॥५६॥

हर्त्तारः पररत्नानां परदारप्रधर्षकाः।
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधर्मात् साहसप्रियाः ॥ ५७ ॥
अनष्टचेतनाः पुन्सो मुक्तकेशास्तु चूलिकाः।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ॥ ५८ ॥
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मश्चरिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ५६ ॥
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्शनाः।
चौराश्चौरस्य हर्त्तारो हन्तुर्हर्त्तार एव च ॥ ६० ॥
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियताङ्गते।
कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥ ६१ ॥
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं भवेत्।
कौशिकाः प्रतिवत्स्यन्ति देशान् क्षुद्भयपीडितान् ॥ ६२ ॥
दुःखेनाभिप्लुतानाञ्च परमायुः शतं भवेत्।
दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः ॥ ६३ ॥

दूसरों के रत्नों का हरण करने वाले और पराई स्त्री का प्रधर्षण करने वाले कामात्मा और दुष्ट आत्मा वाले और अधर्म के काम में साहस दिखाने वाले तथा चेतना नष्ट न होने वाले पुरुष के केश खुले हुए तथा चुटिया खुली रखने वाले और सोलह वर्ष से भी कम उम्र वाले युग के क्षय में उत्पन्न होते हैं ॥५७-॥५८॥ शुक्ल दन्त-जिताक्ष-मुण्ड और काषाय वस्त्रों के धारण करने वाले शूद्र युगान्त के पर्युपस्थित होने पर धर्म का आचरण किया करेंगे ॥५६॥ सस्य के चुराने वाले तथा चैल (वस्त्र) के अभिमर्शन करने वाले, चोर के हरण करने वाले चोर तथा हनन करने वाले का हरण करने वाले लोग होंगे ॥६०॥ ज्ञान

के कर्म में उपरत लोक में जबकि वह सर्वथा निष्क्रयता को प्राप्त हो जायगा, कीट, मूषक और सर्प मनुष्यों का धर्षण किया करेंगे ॥६१॥ सुभिक्ष-क्षेम और आरोग्य एवं सामर्थ्य यह सब दुर्लभ हो जायेंगे। भूख और प्यास के भय से पीड़ित देशों में कौए निवास किया करेंगे ॥६२॥ दुःख से अभिप्लुत लोगों की परमायु सौ वर्ष की हो जायगी। कलियुग में सम्पूर्ण वेद दिखलाई देते हैं और नहीं भी दिखलाई दिया करते हैं ॥६३॥

उत्सीदन्ति तथा यज्ञाः केवला धर्मपीडिताः।
कषायिणश्च निर्ग्रन्थास्तथा कापालिनश्च ह ॥ ६४ ॥
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे।
वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिनः ॥ ६५ ॥
उत्पद्यन्ते तथा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे।
नाधीयन्ते तदा वेदाः शूद्रा धर्मार्थकोविदाः ॥ ६६ ॥
यजन्ते नाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः।
स्त्रीवधं गोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्।
उपहन्युस्तदान्योन्यं साधयन्ति तथा प्रजाः ॥ ६७ ॥
दुःखप्रचारतोऽल्पायुर्देशोत्सादः सरोगता।
मोहो ग्लानिस्तथासौख्यं तमोवृत्तं कलौ स्मृतम् ॥ ६८ ॥
प्रजा तु भ्रूणहत्यायामथ वै सम्प्रवर्त्तते।
तस्मादायुर्बलं रूप कलिं प्राप्य प्रहीयते।
दुःखेनाभिप्लुतानां वै परमायुः नृणाम् ॥ ६९ ॥
दृश्यन्ते नाभिदृश्यन्ते वेदाः कलियुऽखिलाः।
उत्सीतन्ते तदा यज्ञाः केवला धर्मपीडिताः॥ ७० ॥

केवल धर्म पीड़ित यज्ञ उत्सन्न होते हैं। कषाय वस्त्रधारी तथा निर्गन्थ कपाली, दूसरे वेदों के बेचने वाले तथा तीर्थों के विक्रय करने वाले और वर्णाश्रमों के पाषण्ड प्रकट करने वाले परिपन्थी लोग इस कलियुग के सम्प्राप्त होने पर उत्पन्न होंगे। उस समय कोई भी वेदों का अध्ययन नहीं किया करेंगे केवल शूद्र ही धर्मार्थ के पण्डित होंगे ॥६४॥६५॥६६॥ शूद्र योनि राजा लोग अश्वमेध

का यजन नहीं किया करते हैं तथा स्त्री का वध-गौ का वध करके और परस्पर में हनन करके तब एक दूसरे का उपहनन करेंगे और इस तरह से प्रजा का साधन किया करते हैं ॥६७॥ दुःखों के प्रचार से अल्प आयु-देशोत्साद-मोह-सरोगत ग्लानि तथा असौख्य इस तरह से कलियुग में तमोवृत्त कहा गया है ॥६८॥ प्रजा सब भ्रूण हत्या में सम्प्रवृत्त होती है, इसी से कलियुग को प्राप्त करके आयु बल और रूप सभी कुछ नष्ट हो जाते हैं और सब ओर से दुःखों में डूबे हुए मनुष्यों की आयु सबमे अधिक सौ वर्ष की हो जाती है ।६९॥ समस्त वेद तो इस कलियुग में दिखलाई देते हैं और नहीं भी दिखलाई दिया करते हैं। उस समय केवल धर्म पीड़ित यज्ञ उत्पन्न हुआ करते हैं ॥७०॥

तदा त्वल्पेन कालेन सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः ।
धन्या धर्मञ्चरिष्यन्ति युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥ ७१ ॥
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं ये चरन्त्यनसूयकाः ।
त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः ।
यथाशक्ति चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात् कलौ ॥ ७२ ॥
एषा कलियुगेऽवस्था सन्ध्यांशन्तु निबोध मे ।
युगे-युगे तु हीयन्ते त्रींस्त्रीन् पादांश्च सिद्धयः ॥ ७३ ॥
युगस्वभावात्सन्ध्यास्तु तिष्ठन्तीमास्तु पादशः ।
सन्ध्यास्वभावाच्चांशेषु पादशस्ते प्रतिष्ठिताः ॥ ७४ ॥
एवं सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भृगूणां निधनोत्थितः ॥ ७५ ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते ।
माधवस्य तु सोंशेन पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ६ ॥
समाः स विंशतिं पूर्णाः पर्यटन् वै वसुन्धराम् ।
आचकर्ष स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम् ॥ ७७ ॥
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान् हन्ति सहस्रशः ॥ ७८ ॥
स हत्वा सर्वगश्चैव राज्ञस्तान् शूद्रयोनिजान् ।
पाषण्डान् स ततः सर्वान्निःशेषान् कृतवान् प्रभुः ॥ ७८ ॥

नात्यर्थं धार्मिका ये च तान् सर्वान् हन्ति सर्वशः ।
वर्णव्यत्यासजातांश्च ये च तानुपजीविनः ।। ८० ।।

उस युगान्त में जो श्रेष्ठ द्विज धर्म का आचरण किया करते हैं वे मानव अल्प काल में ही सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं । जो अनसूयक अर्थात् असूया न करने वाले लोग श्रुति स्मृति में कहे हुए धर्म का आचरण किया करते हैं । त्रेता में वार्षिक धर्म होता था—द्वापर में वह मासिक कहा गया है और कलियुग में प्राज्ञ तथा शक्ति करता हुआ एक दिन में प्राप्त कर लेता है ।७१।।७२।। यह तो कलियुग की अवस्था है अब इसका सन्ध्यांश भी समझ लो । युग-युग में तीन-तीन पाद सिद्धियाँ हीन होती हैं ।।७३।। युग के स्वभाव से ये सन्ध्या पाद से रहा करती हैं । सन्ध्या के स्वभाव से अंशों में पाद में प्रतिष्ठित होते हैं ।।७४।। इस तरह से युगान्त में सन्ध्यांश काल के सम्प्राप्त होने पर उन असाधू भृगुओं का शास्ता निधन से उत्थित होता है ।।७५।। गोत्र से चन्द्रमा के नाम से प्रमिति कही जाती है । स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले वह माधव के अंश से होती है ।७६।। पूरे तीस वर्ष तक इस वसुन्धरा पर पर्यटन करते हुए उसने घोड़े हाथियों से युक्त सेना का आकर्षण किया ।।७७।। आयुध ग्रहण करने वाले विप्रों के द्वारा जो संख्या में सैकड़ों और हजारों थे, उनसे परिवृत होकर हजारों ही म्लेच्छों का हनन करता है ।।७८।। वह सर्वत्र जाने वाला उन शूद्र योनियों में समुत्पन्न राजाओं को तथा समस्त पाषण्डों को वह प्रभु निःशेष कर देते हैं ।।७९।। जो अत्यर्थ धार्मिक नहीं है उन सबको सब ओर में मार देते हैं जो भी वर्ण के व्यत्या से उत्पन्न हुए हैं और अनुताप देने वाले हैं ।।८०।।

उदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्वतीयांस्तथैव च ।
प्राच्यान् प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ।। ८१ ।।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ।
गान्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनांस्तथा ।। ८२ ।।
तुषारान् बर्बराश्चीनान् शूलिकान् दर दान् खसान् ।
लम्पाकानथ केतांश्च किरातानाञ्च जातयः ।। ८३ ।।
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्विभुः ।

अधृष्यः सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम् ॥ ८४ ॥
माधवस्य तु सोंशेन देवस्य हि विजज्ञिवान् ।
पूर्वजन्मविधिज्ञैश्च प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥ ८५ ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः ।
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्ते विंशतिं समाः ॥ ८६ ॥
विनिघ्नन् सर्वभूतानि मानवानि सहस्रशः ।
कृत्वा वीर्यविशेषान्तु पृथ्वीं रूढेन कर्मणा ।
परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेनतु ॥ ८७ ॥
स साधयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्तः सहानुगः ॥ ८८ ॥

उत्तर में रहने वाले मध्य देश वाले पर्वतीय-प्राच्य तथा प्रतीच्य अर्थात् पश्चिम में रहने वाले एवं विन्ध्य पृष्ठ परान्तिक, दाक्षिणात्य और सिंहलों के साथ द्रविड़-गान्धार-पारद-पह्लव तथा यवन-तुषार-वर्वर चीन-शूलिक-दरद-खस-लम्पक-केत और किरात जाति वाले इन सबका म्लेच्छों का प्रवृत्त चक्र बलवान् विभु अन्त करने वाले थे जोकि समस्त प्राणियों के अधृष्य थे, उनने इस वसुन्धरा पर चरण किया था ॥८१॥८२॥८३॥८४॥ उसने अपने को माधव देव के अंश से विज्ञप्त किया था। पूर्व जन्म की विधि को जानने वालों के द्वारा वीर्यवान् प्रमिति नाम कहा गया है। पूर्व कलियुग में चन्द्रमा के गोत्र से प्रभु ने बत्तीस वर्ष के अभ्युदित होने पर बीस वर्ष पर्यन्त समस्त प्राणी तथा सहस्रों मानवों का हनन करते हुए रूढ़ कर्म से पृथ्वी को वीर्यविशेष करके परस्पर निमित्त वाले आकस्मिक कोप से उसमें वृषलों की, जोकि प्रायः अधार्मिक थे साधना करके अपने अनुग के साथ गङ्गा यमुना के मध्य में निष्ठा प्राप्त की थी ॥८५॥ ॥८६॥८७॥८८॥ ।

ततो व्यतीते तस्मिंस्तु अमात्ये सत्यसैनिके ।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः ॥ ८९ ॥
तत्र सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्-कचित् ॥ ९०॥

अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोकचेष्टास्तु वृन्दशः ।
उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रपद्यन्ते परस्परम् ॥ ९१ ॥
अराजके युगवशात् संशये समुपस्थिते ।
प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः ॥ ९२ ॥
व्याकुलाश्च परिश्रान्तास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च ।
स्वान् प्राणान् समवेक्षन्तो निष्ठां प्राप्ताः सुदुःखिता ॥ ९३ ॥
नष्टे श्रौते स्मृते धर्मे परस्परहतास्तदा ।
निर्मर्यादा निराक्रन्दा निःस्नेहा निरपत्रपाः ॥ ९४ ॥
नष्टे वर्षे प्रतिहता ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः ।
हित्वा दारांश्च विषादव्याकुलेन्द्रियाः ॥ ९५ ॥

इसके पश्चात् उस सत्य सैनिक अमात्य के व्यतीत हो जाने पर समस्त पार्थिवों का तथा सहस्रों म्लेच्छों का उत्सादन करके वहाँ सन्ध्यांश काल में युगान्त के सम्प्राप्त होने पर कहीं-कहीं पर अत्यन्त अल्प प्रजाओं के अवशिष्ट रहजाने पर वे इसके अनन्तर प्रग्रह रहित और वृन्दों में लोक चेष्टा से युक्त होकर एक दूसरे को आपस में उपहिंसन करते हैं ॥८९॥९०॥९१॥ युग-वश से अराजकता के संशय के समुपस्थित हो जाने पर वह समस्त प्रजा आपस में भय से परम दुखित थी ।९२।। अत्यन्त व्याकुल–परिश्रान्त होते हुए अपनी स्त्रियों को तथा घरों को छोड़कर अपने ही प्राणों को देखते हुए सुदुःखित होते हुए निष्ठा को प्राप्त हुए ॥९३॥ श्रौत तथा स्मार्त्त धर्म के नष्ट हो जाने पर उस समय में परस्पर में हत होते हुए बिना मर्यादा वाले–निराक्रन्द–निःस्नेह और निरपत्रप होगये थे ॥९४॥ वर्ष के नष्ट होने पर प्रतिहत ह्रस्वके तथा पञ्च विंशक अपनी स्त्रियों एवं पुत्रों का त्याग करके विषाद से व्याकुलित इन्द्रियों वाले थे ॥९५॥

अनावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।
प्रत्यन्तांस्तान्निषेवन्ते हित्वा जनपदान् स्वकान् ॥ ९६ ॥
सरितः सागरान् कूपान् सेवन्ते पर्वतांस्तदा ।
मधुमांसैमूलफलैर्वर्त्तयन्ति सुदुःखिताः ॥ ९७ ॥

चीरवस्त्राजिनधरा निष्पत्रा निष्परिग्रहाः ।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्करं घोरमास्थिताः ॥ ९८ ॥

एताः काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषास्तथा प्रजाः ।
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखन्निर्वेदमागमन् ॥ ९९ ॥

विचारणन्तु निर्वेदात् साम्यावस्था विचारणात् ।
साम्या वस्थासु सम्बोधः सम्बोधाद्धर्मशीलता ॥ १०० ॥

तासूपगमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम् ।
अहोरात्रं तदा तासां युगन्तु परिवर्त्तते ॥ १०१ ॥

चित्तसम्मोहनं कृत्वा तासान्तैः सप्तमन्तु तत् ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत ॥ १०२ ॥

प्रवृत्ते तु पुनस्तस्मिस्ततः कृतयुगे तु वै ।
उत्पन्नाः कलिशिष्टास्तु कार्तयुग्यः प्रजास्तदा ॥ १०३ ॥

वे सब उस समय में अनावृष्टि से आहत थे और वार्ता का त्याग कर बहुत ही दुःखित होरहे थे । अपने-अपने जन पदों को त्याग कर प्रत्यन्तों का सेवन करते थे । नदियाँ—सागर कूप और पर्वतों का सेवन करते थे । अत्यन्त दुःखित होते हुए मधुमांस तथा मूल फलों से जीवित रहते थे ॥९६॥९७॥ चीर वस्त्र तथा अजिन के धारण करने वाले--निष्पत्र एवं निष्परिग्रह वर्णाश्रम से परिभ्रष्ट घोर संकर में आस्थित थे ॥९८॥ ऐसी काष्ठा को प्राप्त होने वाले वह थोड़ी सी बची हुई प्रजा जरा-व्याधि और क्षुधा से आविष्ट होती हुई दुःख से निर्वेद को प्राप्त हुई थी ॥९९॥ निर्वेद से विचारणा हुई और विचारणा से साम्यावस्था हुई । साम्यावस्थाओं में कुछ सम्बोध हुआ और फिर सम्बोध से धर्मशीलता उत्पन्न हुई ॥१००॥ कलियुग में अव शिष्ट और उपगम से युक्त उन में स्वयं उस समय अहोरात्र उनके युग परिवर्त्तित होते हैं ॥१०१॥ उनके चित्त का सम्मोहन करके उनके द्वारा भावी अर्थ के बल से फिर सप्तम कृत हुआ था ॥१०२॥ फिर उसके पश्चात उस कृत युग के प्रवृत्त होने पर उस समय में कलिशिष्ट कार्तयुग्य प्रजा समुत्पन्न हुई थी ॥१०३॥

तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धाः सुदृष्टा विचरन्ति च ।
सदा सप्तर्षयश्चैव तत्र ते च व्यवस्तिाः ।। १०४ ।।
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह ।
कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाभवन् ।। १०५ ।।
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीतरेषु च ।
वर्णा श्रमाचारयुक्तः श्रौतः स्मार्तो द्विधा तु सः ।। १०६ ।।
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्त्तन्ते वै प्रजाः कृते ।
श्रौनः स्मार्त्तः कृतानान्तु धर्मः सप्तर्षिदर्शितः ।। १०७ ।।
तासु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीहायुगक्षयात् ।
मन्वतराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै ।। १०८ ।।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपे ऋतौ ।
नवानां प्रथमं दृष्टस्तेषां मूले तु सम्भवः ।। १०९ ।।
एवं युगाद्युगस्येह सन्तानस्तु परस्परम् ।
वर्त्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः ।। ११० ।।

यहां पर जो सिद्ध स्थित हैं वे सुदष्ट होते हुए विचरण करते हैं और सदा वे सप्तर्षि लोग भी व्यवस्थित होते हैं ।।१०४।। ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य तथा शूद्र जो यहाँ बीज के लिये कहे गये हैं वे सब कलि में समुत्पन्न होने वालों के साथ उस समय में निर्विशेष होगये थे ।।१०५।। उनके धर्म को और इतरों में सप्तर्षि कहते हैं। वर्ण और आश्रम के आचार से युक्त वह धर्म दो प्रकार का था ।।१०६।। इसके अनन्तर कृत में क्रियावान उनमें प्रजाकृती हैं और सप्तर्षियों के द्वारा दिखाया हुआ श्रौत्व तथा स्मार्त्त धर्म करने वाले हैं ।१०७।। यहाँ पर युग के क्षय से उनमें धर्म की व्यवस्था के लिये मन्वन्तराधिकारों में मुनिगण स्थित रहते हैं ।।१०८।। जिस तरह से दावाग्नि से जले हुए तृणों पर तप ऋतु में उनके मूल में सम्भव नवीन तृणों का प्रथम दिखाई दिया हुआ होता है ।।१०९।। इसी भाँति यहाँ युग का युग से परस्पर में सन्तान होता है। जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है, तब तक वह अव्यवच्छेद से रहा करता है ।।११०।

सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च ।
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रीणि पादक्रमेण तु ॥ १११ ॥
ससन्ध्यंशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः ।
इत्येष प्रतिसन्धिर्वः कीर्त्तितस्तु मया द्विजाः ॥ ११२ ॥
चतुर्युगानां सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम् ।
एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्रात् प्रवर्त्तते ॥ ११३ ॥
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्च तावती स्मृता ।
अत्रार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात् ॥ १४

एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ।
एषा चतुर्युगानान्तु गणना ह्येकसप्ततिः ।
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते ॥११५
चतुर्युगे तथैकस्मिन् भवतीह यथाश्रुतम् ।
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ॥११६

सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु ।
पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा ॥११७

सुख—आयु--बल--रूप- धर्म--अर्थ और काम ये सब तीन युगों में पाद क्रम से हीयमान होते हैं ॥१११॥ ससन्ध्यांशों में युगों की धर्म सिद्धियाँ हीन होती हैं। हे द्विजो ! इस प्रकार से यह आपको प्रतिसन्धि मैंने कीर्त्तित कर दिया है। चारों युगों का इससे ही प्रसाधन होता है। यह चतुर्युगों की आवृत्ति सहस्र पर्यन्त हुआ करती है ॥११३॥ब्रह्मा का वह दिन कहा गया है और उतनी रात्रि भी कही गई है। यहाँ पर प्राणियों का युग क्षय बक जड़ीभाव होता है ॥११४॥यह ही समस्त युगों का लक्षण कहा गया है। यह चारों युगों की गणना इकहत्तर होती है। क्रम से परिवृत्त वह होती हुई मनु का अन्तर कहा जाता है ॥११५॥ यहाँ एक चतुर्युग में उस प्रकार से यथाश्रुत होती है। उसी प्रकार से अन्यों में भी वह फिर यथाक्रम हुआ करती है ॥११६॥ सर्ग-सर्ग में जिस प्रकार से भेद उत्पन्न होते हैं उस प्रकार से वे पच्चीस की संख्या में परिमित होते है। न कम हैं और न अधिक ही होते हैं ॥११७॥

तथा कल्पयुगैः सार्द्धं भवन्ति समलक्षणाः ।
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ।।११८
तथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
तथा न सन्तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ।।११६।।
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ।
अतीतानागतानां वै सर्वमन्वन्तरेष्विह ।।१२०
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।।१२१
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
व्याख्यातानि विजानीध्वं कल्पे कल्पेन चैव हि ।।१२२
अस्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत ।
देवा ह्यष्टविधा ये च इह मन्वन्तरेश्वराः ।।१२३

उस प्रकार से कल्प युगों के साथ समान लक्षण वाले होते हैं । समस्त मन्वन्तरों का यह ही लक्षण होता है ।।११८।। उस प्रकार से युगों के परिवर्त्तन युगों के स्वभाव से चिर प्रवृत्त होते हैं । उस प्रकार से यह जीव लोक क्षय एवं उदय से परिवर्तमान होता हुआ नहीं संस्थित रहा करता है ।।११६।। इतना यह युगों का संक्षेप से लक्षण मैंने कह दिया है जो कि अतीत हो गये हैं, अनागत हैं और यहाँ समस्त मन्वन्तरों में होते हैं ।।१२०।। जो अनागत हैं और समस्त मन्वन्तरों में जो अतीत एवं अनागत हैं उनमें विज्ञ व्यक्ति को उसी भाँति से तर्क करना चाहिए ।।१२१।। एक मन्वन्तर से समस्त मन्वन्तरों की व्याख्या करदी गई है । कल्प में कल्प से उसे जान लेना चाहिए ।।१२२।। इसके अभिमानी सब नाम और रूपों से यहाँ मन्वन्तर में आठ प्रकार के मन्वन्तरेश्वर देव होते हैं ।।१२३।।

ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजनैः ।
एवं वर्णाश्रमाणान्तु प्रविभागो युगे युगे ।।१२४
युगस्वभावाच्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः ।
वर्णाश्रमविभागश्च युगानि युगानि युगसिद्धये ।।१२५

अनुषंगः समाख्यातः सृष्टिसर्गन्निबोधत ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च स्थितिं वक्ष्ये युगेष्विह ।।१२६

ऋषिगण और मुनि वृन्द सब प्रयोजनों से तुल्य ही हुआ करते हैं। इसी प्रकार से युग-युग में वर्णों और आश्रमों का प्रविभाग हुआ करता है ।।१२४।। युग के स्वभाव से प्रभु उसी प्रकार का किया करते हैं। वर्णों और आश्रमों का विभाग तथा युग की सिद्धि के लिये युगों को करते हैं ।।१२५।। अनुषङ्ग की तो व्याख्या करदी गई है। अब सृष्टि के सर्ग को समझ लो। मैं विस्तार से तथा अनुपूर्वी से यहाँ पर युगों में जो स्थिति है उसको बतलाऊँगा ।।१२६।।

प्रकर्ण ४१— ऋषिलक्षण

युगेषु यास्तु जायन्ते प्रजास्ता त्रै निबोधत ।
आसुरी सर्पगोपक्षिपैशाची यक्षराक्षसी ।
यस्मिन् युगे च सम्भूतिस्तासां थावत्तु जीवितम् ।।१
पिशाचासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
युगमात्रन्तु जीवन्ति ऋते मृत्युवधेन ते ।।२
मानुषाणां पशूनाञ्च पक्षिणां स्थावरैः सह ।
तेषामायुः परिक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः ।।३
अस्थितिस्तु कलौ दृष्टा भूतानामायुषस्तु वै ।
परमायुः शतन्त्वेतन्मनुष्याणां कलौ स्मृतम् ।।४
देवासुरप्रमाणात्तु सप्तसप्तांगुलं ह्रसत् ।
अंगुलानां शतं पूर्णमष्टपञ्चाशदुत्तरम् ।।५
देवासुरप्रमाणन्तदुच्छ्रायं कलिजैः स्मृतम् ।
चत्वारश्चाप्यशीतिश्च कलिजैरंगुलैः स्मृतम् ।।६
स्वेनांगुलप्रमाणेन ऊर्द्ध्वमापादमस्तकम् ।
इत्येष मानुषोत्सेधो ह्रसतीह युगान्तिके ।।७

श्री सूत जी ने कहा—युगों में जो प्रजा उत्पन्न होती हैं उनको जानलो। वह प्रजा आसुरी--सर्प-गो-पक्षी-पैशाची और यक्ष राक्षसी हुआ करती है। जिस

युग में जिसकी सम्भूति होती है और उनका जितना भी जीवित काल होता है वह सब बतलाया जाता है ॥१॥ पिशाच-असुर-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नग ये सब युग मात्र जीवित रहा करते हैं। मृत्यु वध के बिना ही इनका उक्त जीवन होता है ॥२॥ मनुष्यों की पशुओं की और स्थावरों के साथ पक्षियों की इन सबकी आयु सब प्रकार से युग के धर्मों में परिक्रान्त हुआ करती है ॥३॥ कलियुग में प्राणियों की आयु की अस्थिति देखी गई है। कलियुग में मनुष्यों की परमायु सौ वर्ष की कही गई है ॥४॥ देव और असुरों के प्रमाण से सात-सात अंगुल कम होता हुआ है। एक सौ अट्ठावन पूर्ण प्रमाण होता है ॥५॥ देवासुरों का प्रमाण और उनका उच्छ्राय कलि में जन्म लेने वालों के द्वारा कहा गया है। ॥६॥ अपने अंगुल के प्रमाण से ऊपर पैरों से मस्तक तक यह मानुष उत्सध होता है किन्तु यहाँ युगान्तिक में यह ह्रासयुक्त होता है ॥७॥

सर्वेषु युगकालेषु अतीतानागतेष्विह।
स्वेनांगुलप्रमाणेन अष्टतालः स्मृतो नरः ॥८
आपादतो मस्तकं तु नवतालो भवेत्तु यः।
संहताजानुबाहुस्तु स सुरैरपि पूज्यते ॥९
गवाश्वहस्तिनाञ्चैव महिष स्थावरात्मनाम्।
क्रमेणैतेन योगेन ह्रासवृद्धी युगे युगे ॥१०
षट्सप्तत्यंगुलोत्सेधः पशूनां ककुदस्तु वै।
अंगुलाष्टशतं पूर्णमुत्सेधः करिणां स्मृतः ॥११
अंगुलानां सहस्रन्तु चत्वारिंशांगुलं विना।
पञ्चाशतं हयानाञ्च उत्सेधः शाखिनां स्मृतः १२
मानुषस्य शरीरस्य सन्निवेशस्तु यादृशः।
तल्लक्षणस्तु देवानां दृश्यते तत्त्वदर्शनात् ॥ १३ ॥
बुद्ध्यातिशययुक्तश्च देवानां कायमुच्यते।
देवानतिशयञ्चैव मानुषं कायमुच्यते ॥ १४ ॥

समस्त युगों के कालों में जो अतीत हैं तथा अनागत हैं अपने अँगुल के प्रमाण से मनुष्य अष्ट ताल कहा गया है ॥ ८ ॥ जो पैरों से लेकर मस्तक

पर्यन्त नवताल होता है और जो आजानु बाहु वाला होता है वह सुरों के द्वारा भी पूजित हुआ करता है ॥ ९ ॥ गौ-अश्व-हस्ती-महिष और स्थावर स्वरूप वालों की क्रम से इस योग से युग-युग में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है ॥१०॥ पशुओं की ऊँचाई सडसठ अँगुल और ककुद की होती है। हाथियों का उत्सेध हर एक सौ आठ अँगुल का पूर्ण कहा गया है ॥ ११ ॥ चत्वारिंशत् (चालीस) अँगुल के बिना एक सहस्र अँगुल और पश्चात् हयों (अश्वों) का शाखियों (वृक्षों) का उत्सेध कहा गया है ॥ १२ ॥ मनुष्य के शरीर का सन्निवेश जैसा है उसी लक्षण वाला तत्त्व दर्शन से देवों का दिखलाई देता है ॥१३॥ देवों का शरीर बुद्धि के अतिशय से युक्त हुआ करता है—ऐसा कहा जाता है। देवों के अनतिशय वाला मनुष्य-काय कहा जाता है ॥ १४ ॥

इत्येते वै परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषाः ।
पशूनां पक्षिणाञ्चैव स्थावराणां निबोधत ॥ १५ ॥
गावो ह्यजा महिष्योऽश्वा हस्तिनः पक्षिणो नगाः ।
उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्विह सर्वशः ॥ १६ ॥
देवस्थानेषु जायन्ते तद्रूपा एव ते पुनः ।
यथाशयोपभोगास्तु देवानां शुभमूर्त्तयः ॥ १७ ॥
तेषां रूपानुरूपैस्तैः प्रमाणैः स्थाणुजङ्गमैः ।
मनोज्ञैस्तत्त्वभावज्ञैः सुखिनो ह्युपपेदिरे ॥ १८ ॥
अतः शिष्टान् प्रवक्ष्यामि सतः साधूंस्तथैव च ।
सदिति ब्रह्मणः शब्दस्तद्वन्तो ये भवन्त्युत ।
सायुज्यं ब्रह्मणोऽत्यन्तं तेन सन्तः प्रचक्ष्यते ॥ १९ ॥
दशात्मके ये विषये कारणे चाष्टलक्षणे ।
न क्रुध्यन्ति न हृष्यन्ति जितात्मानस्तु ते स्मृताः ॥ २० ॥
सामान्येषु च धर्मेषु तथा वैशेषिकेषु च ।
ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ता यस्मात्तस्माद्द्विजातयः ॥ २१ ॥

ये इतने दिव्य मानुष भाव परिक्रांत किये हैं। अब पशुओं का—पक्षियों का और स्थावरों का भाव समझ लो ॥ १५ ॥ गौ-अजा (बकरी) महिषी

(भैंस) अश्व-हाथी-पक्षीगण और नग ये क्रियाओं में उपयुक्त होते हैं। यहाँ पर ये सब प्रकार से यज्ञीय कहे जाते हैं ।। १६ ।। देवस्थानों में जो उत्पन्न होते हैं वे फिर तद्रूप ही होते हैं। यथाशयोपभोग वाले देवों की ही शुभ मूर्तियाँ होती हैं ।। १७ ।। उसके रूप के अनुरूप स्थाणु जङ्गम उन प्रमाणों से जो कि मनोज्ञ और तत्त्वभाव के ज्ञाता हैं सुखी होते हैं ।। १८ ।। इससे आगे शिष्टों तथा सत् और साधुओं को बताऊँगा। सत्-पद-ब्रह्म का शब्द है उसके रखने वाले जो होते हैं ब्रह्म का अत्यन्त सायुज्य होता है इसी से वे (सन्त)—ऐसे कहे जाते हैं ।। १९ ।। जो दशात्मक विषय में और आठ लक्षणों वाले कारण में न तो क्रोधित होते हैं और न प्रसन्न ही होते हैं वे जितात्म कहे जाते हैं ।।२०।। सामान्य धर्मों में तथा वैशेषिकों में क्योंकि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य युक्त होते हैं इसी लिए ये द्विजाति कहे जाते हैं ।। २१ ।।

वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गगोमुखचारिणः !
श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्मः स उच्यते ।। २२ ।।
विद्यायाः साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः ।
क्रियाणां साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते ।। २३ ।।
साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः ।
यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात् ।। २४ ।।
एवमाश्रमधर्माणां साधनात् साधवः स्मृताः ।
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।। २५ ।।
न च देवा न पितरो मुनयो न च मानवाः ।
अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवन्तोऽभिन्नदर्शनाः ।। २६ ।।
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ ।
कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ ।। २७ ।।
धारणा धृतिरित्यर्थाद्धातोर्धर्मः प्रकीर्त्तितः ।
अधारणेऽमहत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते ।। २८ ।।

वर्णाश्रमों में युक्त तथा स्वर्ग गोमुख के चरण करने वाले श्रौतस्मार्त धर्म का ज्ञान होने से वह धर्म कहा जाता है ।। २२ ।। विद्या के साधन से

साधु—गुरु का हित ब्रह्मचारी और क्रियाओं के साधन से ही गृहस्थ साधु कहा जाता है ॥ २३ ॥ जङ्गल में तप के साधन से साधु वैखानस कहा गया है। जो यज्ञमान साधु यति योग के साधन से कहा गया है ॥२४॥ इस प्रकार से आश्रम के धर्मों के साधन से साधु कहे गये हैं। गृहस्थ-ब्रह्मचारी-वानप्रस्थ और भिक्षुक ये चार आश्रम हैं ॥ २५ ॥ न देव-न पित र-न मुनिगण और न मानव यह धर्म है और यह नहीं है—यह बोलते हुए अभिन्न दर्शन होते हैं ॥ २६ ॥ यहाँ पर धर्म और अधर्म कहे गये हैं। ये दोनों ही शब्द क्रियात्मक होते हैं। कुशल कर्म धर्म है और अकुशल कर्म अधर्म है ऐसा कहा गया है ॥ २७ ॥ धातु का धृति यह अर्थ होने से धारण धर्म कहा गया है। अधारण और अमहत्त्व होने में यह अधर्म ऐसा कहा जाता है ॥ २८ ॥

अत्रेष्टप्रापका धर्मा आचार्यैरुपदिश्यते ।
वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भकाः ।
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते ॥ २९ ॥
स्वयमाचरते यस्मादाचारं स्थापयत्यपि ।
आचिनोति च शास्त्रार्थान्यमैः सन्नियमैर्युतः ॥ ३० ॥
पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौतं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ।
ऋचो यजूंषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानि च श्रुतिः ॥ ३१ ॥
मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वाचारं पुनर्जगौ ,
तस्मात्स्मार्तः स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभागजः ॥ ३२ ॥
स एष द्विविधो धर्मः शिष्टाचार इहोच्यते ।
शेषशब्दात् शिष्ट इति शिष्टाचारः प्रचक्ष्यते ॥ ३३ ॥
मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः ।
मनुः सप्तर्षयश्चैव लोकसन्तानकारणात् ।
धर्मार्थं ये च शिष्टा वै याथातथ्यं प्रचक्ष्यते ॥ ३४ ॥
मन्वादयश्च ये शिष्टा ये मया प्रागुदीरिताः ।
तैः शिष्टैश्चरितो धर्मः सम्यगेव युगे युगे ॥ ३५ ॥

यहाँ पर आचार्यों के द्वारा जो इष्ट के प्रापक है उन्हें धर्म उपदेश

किया जाता है। वृद्ध, अलोलुप आत्मा वाले दम्भ से रहित, भली भाँति विनीत और जो सरल-सीधे होते हैं उनको आचार्य कहते हैं ॥२६॥ स्वयं भी आचरण करता है और आचार की स्थापना भी किया करता है। यज्ञ और अच्छे नियमों से युक्त होता हुआ शास्त्रों के अर्थों का चारों ओर से चयन किया करता है इसी कारण से आचार्य कहा जाता है ॥३०॥ पूर्व में होने वालों से जानकर यहाँ पर सप्तर्षियों ने श्रौत को बतलाया था। ऋग्–यजु–साम–ब्रह्म के अङ्गों को और श्रुति उन्होंने बतलाये थे ॥३१॥ जो मन्वन्तर व्यतीत हो गया उसका स्मरण करके आधार को फिर गाया था। इससे वर्ण और आश्रम के विभाग से जन्मने वाला स्मृत धर्म स्मार्त कहा गया है ॥३२॥ वह यह धर्म दो प्रकार का है। यहाँ पर शिष्टाचार कहा जाता है। शेष शब्द से शिष्ट यह होता है और इससे शिष्टाचार कहा जाता है ॥३३॥ मन्वन्तरों जो शिष्ट हैं यहाँ धार्मिक होते हैं जो कि मनु और सप्तर्षि लोक सन्तान के कारण से होते हैं। धर्म के लिए जो शिष्ट हैं उनका यथातथ्य कहा ॥३४॥ मन्वादि जो शिष्ट हैं और जो मैंने पहिले कहे हैं, उन शिष्टों के द्वारा चरित्र-धर्म युग-युग में अच्छा ही होता है ॥३५॥

त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिज्या वर्णाश्रमास्तथा ।
शिष्टैराचर्यंते यस्मान्मनुना च पुनः पुनः ।
पूर्वैः पूर्वगतत्वाच्च शिष्टाचारः स शाश्वतः ॥३६॥
दानं सत्यन्तपोऽलोभो विद्येज्याप्रजनी दया ।
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥३७॥

शिष्टा यस्माच्चरन्त्येनं मनुः सप्तर्षयश्च वै ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृतः ॥३८॥
विज्ञेयः श्रवणात् श्रौतः स्मरणात् स्मार्त्त उच्यते ।
इज्या वेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः ।
प्रत्यङ्गानि च वक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम् ॥३९॥
दृष्ट्वा प्रभूतमर्थं यः पृष्टो वै न निगूहति ।
यथा भूतप्रवादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम् ॥४०॥

ब्रह्मचर्यं जपो मौनं निराहारत्वमेव च।
इत्येतत् तपसो मूलं सुघोरं तद्दुरासम् ॥४१॥
पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा।
ऋत्विजां दक्षिणानाञ्च संयोगो योग उच्यते ॥४२॥

त्रयी-वार्त्ता—दण्ड नीति—इज्या तथा वर्ण और आश्रम जिस कारण से शिष्टों के द्वारा बार-बार आचरित होते हैं, पूर्वगत होने से पूर्वों के द्वारा वह शाश्वत शिष्टाचार कहा गया है ॥३६॥ दान—सत्य—तप—अलोभ—विद्या,—इज्या—प्रजनी और दया—ये आठ वे चरित्र हैं जो कि शिष्टाचार का लक्षण होते हैं ॥३७॥ क्योंकि इसका शिष्ट चरण करते हैं, मनु और सप्तर्षि गण चरण किया करते हैं ऐसा सभी मन्वन्तरों में किया जाता है, इसलिये यह शिष्टाचार कहा गया है ॥३८॥ श्रवण करने से श्रौत जानना चाहिए और स्मरण से स्मार्त कहा जाता है। इज्या वेदात्मक होने से श्रौत है और वर्णाश्रमात्मक स्मार्त होता है। अब उस धर्म का लक्षण और यहाँ प्रत्यङ्गों को बताऊँगा ॥३९॥ बहुत-सा अर्थ देखकर जो पूछा गया है वह कुछ भी छिपाता नहीं है। जैसा भूत प्रवाह है यही सत्य का लक्षण होता है ॥४०॥ ब्रह्मचर्य—जप—मौन—निराहारत्व यह इतना तपका सुघोर और दुरासद मूल होता है ॥४१॥ पशुओं का, द्रव्य-हवियों का, ऋक्, साम और यजु का, ऋत्विजों का और दक्षिणाओं का जो संयोग होता है वही योग कहा जाता है ॥४२॥

आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हितायाहिताय च।
समा प्रवर्त्तते दृष्टिः कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता ॥४३॥
आक्रुष्टोऽभिहतो वापि नाक्रोशेद्यो न हन्ति वा।
वाङ्मनःकर्मभिः क्षान्तिस्तितिक्षैषा क्षमा स्मृता ॥४४॥
स्वामिनारक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानाञ्च मृत्सु च।
परस्वानामनादानमलोभ इह कीर्त्यते ॥४५॥
मैथुनस्यासमाचारो ह्यचिन्तनमकल्पनम्।
निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं तदच्छिद्रं दम उच्यते ॥४६॥
आत्मार्थं वा परार्थं वा इन्द्रियाणीह यस्य वै।
न मिथ्या सम्प्रवर्तन्ते शमस्यै तत्तु लक्षणम् ॥३७॥

दशात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे ।
न क्रुध्येत्तु प्रतिहतः स जितात्मा विभाव्यते ॥४८॥
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनोपागतश्च येत् ।
तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥४९॥

जो हित और अहित के लिये समस्त प्राणियों में अपने ही समान दृष्टि को प्रवृत्त किया करता है वह पूर्ण दया कही गई है ॥४३॥ बुरा-भला कहा जाने वाला और अभिहत अर्थात् मारा-पीटा हुआ भी न तो बुरा-भला कह कर क्रोधित होता है और न मारता ही है, वाणी, मन और कर्म से जो क्षान्ति होती है वह तितिक्षा क्षमा कही गई है ॥४४॥ स्वामी के द्वारा अरक्षित और मिट्टी में यों ही उत्सृष्ट पराये धनों का न ग्रहण करना ही यहाँ पर अलोभ कहा जाता है ॥४५॥ मैथुन का असमाचार, अचिन्तन तथा अकल्पन, निवृत्ति, ब्रह्मचर्य जो होता है वह अछिद्र दम कहा जाता है ॥४६॥ अपने लिये या दूसरे के लिये यहाँ पर जिसकी इन्द्रियाँ प्रवृत्त नहीं होती हैं यही शम का अवसर होता है अर्थात् इसी को शम कहते हैं ।।४७।। जो दशात्मक विषय में और आठ लक्षण वाले कारण में प्रतिहत होता भी क्रोध नहीं करता है, वह जितात्मा विभावित होता है ॥४८॥ जो-जो इष्टतम द्रव्य और जो न्याय से उपागत हैं वही वह गुणवान् को देना चाहिए यही दान का लक्षण होता है ॥४९॥

दानं त्रिविध मित्येतत् कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम् !
तत्र नैःश्रेयसं ज्येष्ठं कनिष्ठं स्वार्थसिद्धये ।
कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः सुविभागस्तु बन्धुषु ॥५०॥
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ।
शिष्टाचाराविरुद्धश्च धर्मः सत्साधुसङ्गतः ॥५१॥
अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु तथेष्टानभिनन्दनम् ।
प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥५२॥
संन्यासः कर्मणो न्यासः कृतानामकृतैः सह ।
कुशलाकुशलानाञ्च प्रहाणं त्याग उच्यते ॥५३॥
अव्यक्ताद्योऽविशेषाच्च विकारोऽस्मिन्नचेतने ।
चेतनाचेतान्यत्वविज्ञानं ज्ञातमुच्यते ॥५४॥

प्रत्यङ्गानां तु धर्मस्य इत्येतल्लक्षणं स्मृतम् ।
ऋषिभिर्धर्मतत्वज्ञैः पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ।।५५।।

अत्र वो वर्त्तयिष्यामि विधिर्मन्वन्तरस्य यः ।
इतरेतरवर्णस्य चातुर्वर्णस्य चैव हि ।
प्रतिमन्वन्तरञ्चैव श्रुतिरन्या विधीयते ।।५६।।

दान भी तीन प्रकार का होता है— कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ—ये तीन दान के भेद हैं। उनमें जो दान निःश्रेय से सम्बन्धित है वही ज्येष्ठ दान होता है—जो अपने अर्थ की सिद्धि के लिये दिया जाता है वह कनिष्ठ दान होता है । जो करुणा से समस्त प्राणियों के लिये बन्धुओं में भली भाँति विभाग करना मध्यम दान होता है ।।५०।। श्रुति और स्मृति के द्वारा विदित वर्णाश्रमात्मक धर्म है। शिष्टाचार से अविरुद्ध सत् एवं साधु पुरुषों के द्वारा सङ्गत धर्म है ।।५१।। अभीष्ट वस्तुओं में प्रकृष्ट द्वेष का न होना तथा इष्ट वस्तु का विशेष अभिनन्दन न करना—प्रीति, ताप और विषादों से विशेष निवृत्ति विरक्तता होती है ।।५२।। कर्म का भली भाँति न्यास ही संन्यास होता है । अकृतों के साथ कृतों का, कुशल और अकुशलों का जो प्रहाण होता है वही त्याग कहा जाता है ।।५३।। जो अव्यय से और अविशेष से इस चेतन में विकार है तथा चेतना चेतनान्यत्व का विशेष ज्ञान है वही ज्ञान कहा जाता है ।।५४।। धर्म के प्रत्यङ्गों का यह लक्षण कहा गया है जो कि धर्म तत्व के ज्ञाता पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर में ऋषियों ने कहा है ।।५५।। यहाँ मैं आपको मन्वन्तर की जो विधि है बताऊँगा। इतरेतर वर्ण का तथा चतुर्वर्ण का प्रति मन्वन्तर में अन्य श्रुति का विधान किया आता है ।।५६।।

ऋचो यजूंषि सामानि यथावत् प्रतिदैवतम् ।
आभूत संप्लवस्यापि वर्ज्यैकं शतरुद्रियम् ।।५७।।

विधिर्होत्रं तथा स्तोत्रं पूर्ववत्सम्प्रवर्तते ।
द्रव्यस्तोत्रं गुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैव च ।
चतुर्थमाभिजनिकं स्तोत्रमेतच्चतुर्विधम् ।।५८।।

मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथा देवा भवन्ति ये ।
प्रवर्त्तयति तेषां वै ब्रह्मस्तोत्रं चतुविधम् ।
एवं मन्त्रगुणानाञ्च समुत्पत्तिश्चतुर्विधा ।।५६।।
अथर्वयजुषां साम्नां वेदेष्विह पृथक् पृथक् ।
ऋषीगणान्तप्यतामुग्रन्तपः परमदुश्चरम् ।।६०।।
मन्त्राः प्रादुर्बभूवुर्हि पूर्वमन्वन्तरेष्विह ।
परितोषाद्भयाद्दुःखात्सुखाच्छोकाच्च पञ्चधा ।।६१।।
ऋषीणां तपःकात्स्न्र्येन दर्शनेन यदृच्छया ।
ऋषीणां यदृषित्वं हि तद्वक्ष्यामीह लक्षणैः ।।६२।।
अतीतानागतानान्तु पञ्चधा ऋषिरुच्यते ।
अतस्त्वृषीणां वक्ष्यामि ह्यार्षस्य च समुद्भवम् ।।६३।।

ऋक्-यजु और साम प्रति दैवत यथावत हैं। आभूत संप्लव का भी एक शतरुद्रिय वर्ज्य होता है ।।५७।। विधिहोत्र तथा स्तोत्र यह भी पूर्व की भाँति सम्प्रवृत्त होते हैं द्रव्य स्तोत्र—गुण स्त्रोत-कर्म स्त्रोत और चौथा आभिजानिक स्तोत्र इस तरह से यह स्तोत्र चार प्रकार का होता है ।।५८।। समस्त मन्वन्तरों में जो देव जिस प्रकार से होते हैं उनका चारों प्रकार का ब्रह्म स्त्रोत प्रवृत्त होता है। इस प्रकार से अनन्त गुणों की चार प्रकार की समुत्पत्ति होती है ।।५६।। अथर्व यजु और साम वेदों में यहाँ पृथक्-पृथक् होती है। तप करते हुए ऋषियों का उग्र तप परम दुश्चर हुआ करता है ।।६०।। पूर्व मन्वन्तरों में यहाँ मन्त्र प्रादुर्भूत हुये थे। वे परितोष से—भय से—दुःख से—सुख से और शोक से पाँच प्रकार के हैं ।।६१।। तप की कृत्स्नता से ऋषियों के यदृच्छा से दर्शन से ऋषियों का जो ऋषित्व होता है वह लक्षणों के द्वारा बतलाऊंगा ।।६२।। अतीत और अनागतों में पाँच प्रकार के ऋषि कहे जाते हैं। इसलिए ऋषियों के आर्ष के समुद्भव को कहूँगा ।।६३।।

गुणसाम्ये वर्त्तमाने सर्वसम्प्रलये तदा ।
अतिचारे तु देवानामतिदेशे तयोर्यथा ।।६४।।

अबुद्धिपूर्वकं तद्वै चेतनार्थं प्रवर्त्तते ।
तेन ह्यबुद्धिपूर्वं तच्चेतनेन ह्यधिष्ठितम् ॥६५॥
वर्त्तते च यथा तौ तु यथा मत्स्योदके उभे ।
चेतनाधिष्ठितं तत्त्वं प्रवर्त्तति गुणात्मना ॥६६॥
करणत्वात्तथा कार्यं तदा तस्य प्रवर्त्तते ।
विषये विषियात्वाच्च ह्यर्थेऽर्थित्वात्तथैव च ॥६७॥
कालेन प्रापणीयेन भेदास्तु कारणात्मकाः ।
संसिध्यन्ति तदा व्यक्ताः क्रमेण महदादयः ॥६८॥
महतश्चाप्यहङ्कारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च ।
भूतभेदास्तु भेदेभ्यो जज्ञिरे ते परस्परम् ।
संसिद्धिकारणं कार्यं सद्य एव विवर्त्तते ॥६९॥
यथोल्मुकस्त्रुटन्नूर्द्धमेककालं प्रवर्त्तते ।
तथा विवृत्तः क्षेत्रज्ञः कालेनैकेन कर्मणा ॥७०॥
यथान्धकारे खद्योतः सहसा सम्प्रदृश्यते ।
तथा विवृत्तो ह्यव्यक्तात् खद्योत इव चोल्वणः ॥७१॥

गुणों के साम्य के वर्त्तमान होने पर उस समय में सबका सम्प्रलय होने पर–देवों के अतिचार होने पर, उन दोनों के अतिदेश होने पर, अबुद्धिपूर्वक वह चेतना के लिए प्रवृत्त होता है। अबुद्धिपूर्वक उस चेतन से अधिष्ठित होता है ॥६५॥ जिस प्रकार से वे दोनों मत्स्य और उदकचेताधिष्ठित तत्व को गुणात्मा से प्रवृत्त होता है ॥६६॥ उस समय करण होने से कार्य प्रवर्त्तित होता है। विषय में विषयत्व होने से तथा अर्थ में अर्थित्व होने से प्रवर्त्तित होता है ॥६७॥ प्रायणीय काल से कारणात्मक भेद उस समय में महदादि व्यक्त होते हुए से सिद्ध होते हैं ॥६८॥ महत् से अहङ्कार और अहङ्कार से भूतेन्द्रियाँ होते हैं। भूतों के भेद तो भेदों से परस्पर में उत्पन्न होते हैं। संसिद्धि कारण कार्य तुरन्त ही विवर्त्तित हो जाता है ॥६९॥ जिस प्रकार से ऊपर में उल्मुक टूटता हुआ एक काल में प्रवृत्त होता है उसी प्रकार से एक कालीन कर्म से

क्षेत्रज्ञ विवृत्त होता है। जिस तरह खद्योत अन्धकार में सहसा दिखलाई दिया करता है उसी प्रकार से विवृत्त उल्वण खद्योत की भाँति ही होता है ।।७०-७१।।

स महान् स शरीरस्तु यत्रैवाग्रे व्यवस्थितः ।
तत्रैव संस्थितो विद्वान् द्वारशालामुखे स्थितः ।।७२।।
महांस्तु तमसः पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते ।
तत्रैव संस्थितो विद्वांस्तमसोऽन्त इति श्रुतिः ।।७३।।
बुद्धिर्विवर्त्तमानस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा ।
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम् ।।७४।।
सांसिद्धिकान्यथैतानि सुप्रतीकानि तस्य वै ।
महतः सशरीरस्य वैवर्त्त्यात् सिद्धिरुच्यते ।।७५।।
अत्र शेते च यत्पुर्यां क्षेत्रज्ञानमथापि वा ।
पुरीशयत्वात्पुरुषः क्षेत्रज्ञानात् समुच्यते ।।७६।।
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानात् भगवान् मतिरुच्यते ।
यस्माद्बुद्ध्या तु शेते ह तस्माद्बोधात्मकः स वै ।
संसिद्धये परिगत व्यक्ताव्यक्तमचेतनम् ।।७७।।

शरीर के सहित वह महान् जहाँ पर ही आगे व्यवस्थित होता है वहाँ पर ही द्वारशाला के मुख पर विद्वान संस्थित होता है ।।७२।। महान् तो तम के पार में वैलक्षण्य होने के कारण से विभाजित होता है। वहाँ पर ही विद्वान तम के अन्दर संस्थित होता है—ऐसी श्रुति है ।।७३।। विवर्त्तमान की बुद्धि चार प्रकार वाली प्रादुर्भूत हुई। ज्ञान—वैराग्य—ऐश्वर्य और धर्म ये उसके चार भेद होते हैं ।।७४।। सशरीर उस महत् के ये सांसिद्धिक सुप्रतीक हैं। वैवर्त्त्य से सिद्धि कही जाती है ।।७५।। यहाँ पर पुरी में जो क्षेत्र ज्ञान शयन करता है वह पुरी में शयन करने से पुरुष क्षेत्र ज्ञान से भली भाँति कहा जाता है ।।७६।। क्षेत्र के विज्ञान के होने से क्षेत्रज्ञ—भगवान् और मति कहा जाता है। जिस कारण से बुद्धि से शयन करता है उससे वह बोधात्मक निश्चय रूप से होता है। संसिद्धि के लिए अचेतन व्यक्ताव्यक्त के परिगत होता है ।।७७।।

एवं निवृत्तिः क्षेत्रज्ञा क्षेत्रज्ञेनाभिसंहिता।
क्षेत्रज्ञेन परिज्ञातो भोग्योऽयं विषयस्त्विबति ।।७८।।
ऋषीत्येष गतौ धातुः श्रुतौ सत्ये तपस्यथ ।
एतत्सन्नियते तस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः ।।७९।।
निवृत्तिसमकालं तु बुद्ध्याव्यक्तमृषिः स्वयम् ।
परं हि ऋषते यस्मात्परमर्षिस्ततः स्मृतः ।।८०।।
गत्यर्थादृषतेर्द्धातोर्नामनिर्वृत्तिरादितः ।
यस्मादेष स्वयम्भूतस्तस्माच्चात्मर्षिता स्मृता ।
ईश्वराः स्वयमुद्भूता मानसा ब्रह्मणः सुताः ।।८१।।
यस्मान्न हन्यते मानैर्महान् परिगतः पुरः ।
य स्मादृषन्ति ये धीरा महान्तं सर्वतो गुणैः ।
तस्मान्महर्षयः प्रोक्ता बुद्धेः परमदर्शिनः ।।८२।।
ईश्वराणां शुभास्तेषां मानसान्तरसाश्च ते ।
अहङ्कारं तमश्चैव त्यक्त्वा च ऋषिताङ्गताः ।।८३।।
तस्मात्तु ऋषयस्ते वै भूतादौ तत्त्वदर्शनाः ।
ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद्गर्भसम्भवाः ।।८४।।

इस प्रकार से क्षेत्रज्ञ से अभिसंहित क्षेत्रज्ञा निवृत्ति होती है। क्षेत्रज्ञ के द्वारा परिज्ञात भोगने योग्य जो है वह विषय होता है ।।७८।। ऋषि यह धातु-गति में–श्रुति में–सत्य में और तप में होती है। उसके इस सन्नियत होने पर ब्रह्मा के द्वारा ऋषि कहा गया है ।।७९।। निवृत्ति के समकाल में ऋषि स्वयं बुद्धि से अव्यक्त होता है। जिस कारण से पर को ऋष करता है इससे परमर्षि कहा जाता है ।।८०।। गत्यर्थक ऋष धातु से आदि नाम की निवृत्ति होती है। क्योंकि यह स्वयम्भूत है इसलिए आत्मर्षिता कही गई है। ईश्वर स्वयं उद्भूत हुए हैं और ये ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं ।।८१।। क्योंकि यह यानों से हन्यमान नहीं होता है, आगे महान् परिगत है। जिस कारण से ये धीर सब ओर से गुणों के द्वारा महान् को रिषते है इस कारण से बुद्धि परमदर्शी महर्षि कहे गए हैं ।।८२।। उन ईश्वरों के शुभ वे मानसान्त रस हैं और अहङ्कार तथा तम का

त्याग करके ऋषिता को प्राप्त हो गए हैं ।।८३।। इससे वे ऋषिगण भूतादि में तत्त्व के देखने वाले हैं । ऋषियों के पुत्र ऋषीक तो मैथुन के धर्म द्वारा गर्भ से उत्पन्न होने वाले होते हैं ।।८४।।

तन्मात्राणि च सत्यञ्च ऋषन्ते ते महौजसः ।
सत्यर्षयस्ततस्ते वै परमाः सत्यदर्शनाः ।।८५।।
ऋषीणाञ्च सुतास्ते तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः ।
ऋषन्ति वै श्रुतं यस्माद्विशेषांश्चैव तत्त्वतः ।
तस्मात् श्रुतर्षयस्तेऽपि श्रुतस्य परिदर्शनाः ।।८६।।
अव्यक्तात्मा महात्मा चाहङ्कारात्मा तथैव च ।
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते ।
इत्येता ऋषिजातीस्तु नामभिः पञ्च वै शृणु ।।८७।।
भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश ।
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः ।।८८।।
प्रवर्त्तन्ते ऋषेर्यस्मान्महांस्तस्मान्महर्षयः ।
ईश्वराणां सुतास्त्वेते ऋषयस्तान्निबोधत ।।८९।।
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्चोशनास्तथा ।
उतथ्यो वामदेवश्च अयोज्यश्चैशिजस्तथा ।।९०।।
कर्द्दमो विश्रवाः शक्तिर्वालखिल्यस्तथा धराः ।
इत्येते ऋषयः प्रोक्ता ज्ञानतो ऋषिताङ्गताः ।।९१।।

वे महान् ओज वाले तन्मात्राओं को और सत्य ऋष करते हैं इस कारण से परम सत्य के देखने वाले सत्यर्षि होते हैं ।।८५।। ऋषियों के जो पुत्र हैं वे ऋषि-पुत्रक जानने के योग्य होते हैं । क्योंकि श्रुत को ऋष करते हैं ओर तत्त्व से विशेषों को भी किया करते हैं इस कारण से श्रुत परिदर्शन करने वाले वे श्रुतर्षि भी कहे जाते हैं ।।८६।। अव्यक्तात्मा—महात्मा—अहङ्कारात्मा—भूतात्मा और इन्द्रियात्मा उनका यह ज्ञान कहा जाता है । इतनी ये ऋषियों की जातियाँ हैं जो नामों से पाँच हैं उन्हें सुनो ।।८७।। भृगु—मरीचि—अत्रि—अङ्गिरा—पुलह-

क्रतु–मनु–दक्ष–वसिष्ठ और पुलस्य ये दश हैं। ये ब्रह्मा के मानस-पुत्र हैं जो ईश्वर से स्वयं उद्भूत हुए थे ॥८८॥ जिस ऋषि से प्रवृत्त होते हैं, महान् हैं इससे महर्षि होते हैं। ये ऋषि ईश्वरों के पुत्र हैं उन्हें अब जान लो ॥८९॥ काव्य-वृहस्पति-कश्यप-उशना-उतथ्य-वामदेव-अयोज्य-ऐशिज-कर्दम-विश्रवा-शक्ति, वालखिल्य-धरा—ये ऋषि कहे गये हैं और ज्ञान से ऋषिता को प्राप्त हुए थे ॥९०॥९१॥

ऋषिपुत्रानृषिकांस्तु गर्भोत्पन्नानिबोधत ।
वत्सरो नग्रहूश्चैव भारद्वाजस्तथैव च ॥९२॥

बृहदुत्थः शरद्वांश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा ।
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव वृहदुक्थः शरद्वतः ॥९३॥

वाजश्रवाः सुवित्तश्च सुवाग्वेषपरायणः ।
दधीचः शङ्खमांश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा ।
इत्येते ऋषिकाः प्रोक्तास्ते सत्यादृषिताङ्गताः ॥९४॥
ईश्वरा ऋषिकाश्चैव ये चान्ये वै तथा स्मृताः ।
एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत ॥९५॥
भृगुः काव्यः प्रचेतास्तु दधीचो ह्यात्मवानपि ।
और्वोऽथ जमदग्निश्च विदः सारस्वतस्तथा ॥९६॥
अद्विषेण ह्यरूपश्च वीतहव्यः सुमेधसः ।
वैन्यः पृथुर्दिवोदासः प्रश्वारोगृत्समान्नभः ।
एकोनविंशदित्येते ऋषयो मन्त्रवादिनः ॥९७॥
अङ्गिरा वेधसश्चैव भारद्वाजोऽथ बाष्कलिः ।
तथामृतस्थता गार्ग्यः शेनी संहृतिरेव च ॥९८॥
पुरुकुत्सोऽथ मान्धाता अम्बरीषस्तथैव च ।
आहार्योथाजमीढश्च ऋषभो बलिरेव च ॥९९॥
पृषदश्वो विरूपश्च कण्वश्चैवाथ मुग्दलः ।
युवनाश्वः पौरुकुत्सस्त्रसद्दस्युः सदस्युमान् ॥१००॥

उतथ्यश्च भरद्वाजस्तथा वाजश्रवा अपि।
आयाप्यश्च सुवित्तिश्च वामदेवस्तथैव च ।।१०१।।
औगजो बृहदुक्थश्च ऋषिर्दीर्घतपास्तथा।
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत् स्मृता अङ्गिरसो वराः।
एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत ।।१०२।।

ऋषि-पुत्र और ऋषिकों को गर्भ से उत्पन्न समझ लो। वत्सर-नग्रहू-भारद्वाज-बृहदुत्थ-शरद्वान्-अगस्त्य-ऐशिज--ऋषि-दीर्घतम--बृहदुक्थ--शरद्वत--वाजश्रवा-सुवित्त-सुवाग्-वेषपरायण-दधीच-शङ्खमान-राजा और वैश्रयण--ये इतने सब ऋषीक कहे गये हैं और वे सत्य से ऋषिता को प्राप्त हुए थे ।।६२।।६३।।६४।। जो इनसे अन्य हैं वे ईश्वर और ऋषीक कहे गये हैं। ये सब मन्त्रकृत हैं उन्हें पूर्ण रूप से जान लेना चाहिए ।।६५।। भृगु-काव्य-प्रचेता-दधीच-आत्मवान्-और्व-जमदाग्नि-विद-सारस्वत--अद्विषेण-अरूप--वीतहव्य--सुमेधस-वैन्य-पृथु--दिवोदास-प्रश्वार, गृत्समान्-नभ ये उन्नीस मन्त्रवादी हैं ।।६६।।६७।। अङ्गिरा-वेधस-भारद्वाज- वाष्कलि- अमृत-गार्ग्य--शेनी-संहृति-- पुरुकुत्स--मान्धाता-अम्बरीष-आहार्य- आजमीढ़- ऋषभ- बलि- पृषदश्व- विरूप-कण्व-मुद्गल--युवनाश्व-पौरुकुत्स-त्रसद्दस्यु-सदस्युमान्-उतथ्य-भरद्वाज--वाजश्रवा-आयाप्य- सुवित्ति-वामदेव--औगज--बृहदुक्थ-ऋषि-दीर्घतमा-कक्षीवान्--ये तेतीस वर अङ्गिरस कहे गए हैं। ये सब मन्त्रकृत हैं। अब कश्यपों को जान लो ।।६६।।६७।।६८।।-।।६६।।१००।।१०१।।१०२।।

काश्यपश्चैव वत्सारो विभ्रमो रैभ्य एव च।
असितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः ।।१०३।।
अत्रिरर्चिसनश्चैव श्यामावांश्चाथ निष्ठुरः।
वल्गूतको मुनिर्द्धीमांस्तथा पूर्वातिथिश्च यः।
इत्येते चात्रयः प्रोक्ता मन्त्रकारा महर्षयः ।।१०४।।
वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तथैव च पराशरः।
चतुर्थ इन्द्रप्रमतिः पञ्चमस्तु भरद्वसुः ।।१०५।।

षष्ठस्तु मैत्रावरुणः कुण्डिनः सप्तमस्तथा।
सद्युम्नश्चाष्टमश्चैव नवमोऽथ बृहस्पतिः।
दशमस्तु भरद्वाजो मन्त्रब्राह्मणकारकाः ॥१०६॥
एते चैवहि कर्तारो विधर्मध्वंसकारिणः।
लक्षणं ब्रह्मणस्चैतद्विहितं सर्वशाखिनाम् ॥१०७॥
हेतुर्हितेः स्मृतो धातोर्यन्निहन्त्युदितम्परैः।
अथ वार्थपरिप्राप्तेर्हिनोतेर्गतिकर्मणः ॥१०८॥
तथा निर्वचनं ब्रूयाद्वाक्यार्थस्यावधारणम्।
निन्दां तामाहुराचार्या यद्दोषान्निन्द्यते वचः ॥१०९॥
प्रपूर्वाच्छंसतेर्धातोः प्रशंसा गुणवत्तया।
इदन्त्विदमिदं नेदमित्यनिश्चित्य संशयः ॥११०॥

काश्यप-वत्सार-विभ्रम-रैभ्य-असित-देवल—ये छः ब्रह्मवादी होते हैं ॥१०३॥ अत्रि-अर्विसम-श्यामावान्-निष्ठुर-बल्गूतक-मुनि-धीमान्-पूर्वातिथि—महर्षि मन्त्रकार आत्रय कहे गए हैं ॥१०४॥ वशिष्ठ-शक्ति-पाराशर-चौथा इन्द्र प्रमति और पाँचवाँ भरद्वसु—छठा मैत्रावरुण—सातवाँ कुण्डिन—आठवाँ सुद्युम्न—नवम् बृहस्पति—दशम् भरद्वाज ये मन्त्र और ब्राह्मण के करने वाले हैं ॥१०५॥१०६॥ ये सब करने वाले और विधर्म के ध्वंस करने वाले हैं। यह ब्रह्मा का लक्षण समस्त शाखा वालों में विदित है ॥१०७॥ हिति धातु से हेतु कहा गया है जो परों के द्वारा उदित का निहनन करते हैं। अर्थ परि-प्राप्ति गतिकर्म वाली हिनोत से होता है ॥१०८॥ तथा वाक्यार्थ कर अव-धारण निर्वचन बोलना चाहिए। आचार्य लोग, जिस दोष से वचन की निन्दा की जाती है, उसको निन्दा कहते हैं ॥१०९॥ प्रपूर्वक शस धातु से गुणवत्ता के कारण से प्रशंसा होती है अर्थात् प्रशंसा कही जाती है। यह है—यह नहीं है ऐसा अनिश्चय करके ही संशय होता है ॥११०॥

इदमेव विधातव्यमित्ययं विधिरुच्यते।
अन्यस्यान्यस चोक्तत्वादबुधैः परकृतिः स्मृता ॥१११॥
यो ह्यत्यन्ततरोक्तश्च पुराकल्पः स उच्यते।
पुराविक्रान्तवाचित्वात् पुराकल्पस्य कल्पना ॥११२॥

मन्त्रब्राह्मणकल्पैस्तु निगमैः शुद्धविस्तरैः ।
अनिश्चित्य कृतामाहुर्व्यवधारणकल्पनाम् ।।११३।।
यथा हीदं तथा तद्वै इदं वापि तथैव तत् ।
इत्येष ह्यु पदेशोऽयं दशमो ब्राह्मणस्य तु ।।११४।।
इत्येतद्ब्राह्मणस्यादौ विहितं लक्षणं बुधः ।
तस्य तद्वृत्तिरुद्दिष्टा व्याख्याप्यनुपदं द्विजैः ।।११५।।
मन्त्राणां कल्पनं चैव विधिदृष्टेषु कर्मसु ।
मन्त्रो मन्त्रयतेर्धातोर्ब्राह्मणो ब्रह्मणोऽवनात् ।।११६।।
अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ।।११७।।

यही करना चाहिए, इस प्रकार से जो होती है वह विधि कही जाती है । अन्य-अन्य के कथन होने से बुधों के द्वारा परकृति कही जाती है ।।१११।। जो अत्यन्ततर कहा गया है वह पुराकल्प कहा जाता है । पुरा विक्रान्त वाची होने से पुराकल्प की कल्पना होती है ।।११२।। मन्त्र ब्राह्मण कल्पों के द्वारा और शुद्ध विस्तर निगमों के द्वारा अनिश्चय करके की हुई को व्यवधारण कल्पना कहते हैं ।।११३।। जिस प्रकार से यह है वैसे ही वह है । यह अथवा उसी प्रकार से वह है, यह ब्राह्मण का दशम उपदेश है ।।१४४।। यह आदि में ब्राह्मण का लक्षण बुधों के द्वारा किया गया है । ब्राह्मणों के द्वारा अनुपद व्याख्या भी उसकी वृत्ति उद्दिष्ट की गई है ।।११५।। विधि दृष्ट कर्मों में मन्त्रों का कल्पन होता है । मन्त्रयति धातु से मन्त्र होता है और ब्रह्म की रक्षा करने से ब्राह्मण कहा जाता है ।। ११६।। सूत्रों के ज्ञाता लोग अल्पाक्षर वाला–असंदिग्ध–सार वाला–विश्वतोमुख–अस्तोभ अनवद्य को सूत्र कहते हैं ।।११७।।

।। प्रकर्ण ४२—महास्थान तीर्थ वर्णन ।।

ऋषयस्तद्वचः श्रुत्वा सूतमाहुः सुदुस्तरम् ।
कथं वेदाः पुरा व्यस्तास्तन्नो ब्रूहि महामते ।।१।।
द्वापरे तु परावृत्ते मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मा मनुमुवाचेदं तद्वदिष्ये महामते ।।२।।

परिवृत्तो युगे तात स्वल्पवीर्या द्विजातयः ।
संवृत्ता युग दोषेण सर्वे चैव यथाक्रमम् ।।३।।
भ्रश्यमानं युगवशादल्पशिष्टं हि दृश्यते ।
दशसाहस्रभागेन ह्यवशिष्टं कृतादिदम् ।।४।।
वीर्यं तेजो बलं बाक्यं सर्वश्चैव प्रणश्यति ।
वेदवेदा हि कार्याः स्युर्माभूद्वेदविनाशनम् ।।५।।
वेदे नाशमनुप्राप्ते यज्ञो नाशं गमिष्यति ।
यज्ञे नष्टे देवनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति ।।६।।
आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसंज्ञितः ।
पुनर्दशगुणः कृत्स्नो यज्ञो वै सर्वकामधुक् ।।७।।

ऋषियों ने इस प्रकार के वचनों को सुनकर सूतजी से सुदुस्तर वचन कहा—हे महामते ! वेद पहले किस प्रकार व्यस्त किये गये थे, इस बात को हमको आप बतलाइये ।।१।। श्री सूतजी ने कहा—हे महामते ! द्वापर के परावृत्त हो जाने पर स्वायम्भुव मन्वन्तर में ब्रह्माजी ने यह मनु से कहा, उसे मैं बतलाऊँगा ।।२।। हे तात ! युग के परिवृत्त हो जाने पर द्विजाति लोग स्वल्प वीर्य वाले हो गये थे । सभी युग के दोष से वे यथाक्रम हीन वीर्य हो गये थे ।।३।। युग के कारण से सब भ्रश्यमान और अल्प शिष्ट दिखलाई देता है । यह दस हजार के भाग से कृत युग से अवशिष्ट होता है ।।४।। वीर्य-तेज-बल और वाक्य यह सभी नष्ट हो जाते हैं । वेद के ज्ञान वाले सब कार्य होवें और वेदों का विनाश न होवे ।।५।। वेद के नाश होने पर यज्ञ भी नाश को प्राप्त हो जायगा । यज्ञ के नाश होने से देवों का नाश होगा और देवनाश हो जाने पर सब कुछ प्रनष्ट हो जाता है ।।६।। आद्य वेद चार पाद वाला है और वह शत सहस्र संज्ञा से युक्त है । फिर वह दस गुना पूर्ण यज्ञ निश्चय ही सब कामनाओं का दोहन करने वाला हुआ है ।।७।।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा मनुर्लोकहिते रतः ।
वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत्प्रभुः ।।८।।
ब्रह्मणो बचनात्तात लोकानां हितकाम्यया ।

तदिदं वर्त्तमानेन युष्माकं वेदकल्पनम् ॥९॥
मन्वन्तरेण वक्ष्यामि व्यतीतानां प्रकल्पनम् ।
प्रत्यक्षेण परोक्षं वै तन्निबोधत सत्तमाः ॥१०॥
अस्मिन् युगे कृतो व्यासः पाराशर्यः परन्तपः ।
द्वैपायन इति ख्यातो विष्णोरंशः प्रकीर्तितः ॥११॥
ब्रह्मणा चोदितः सोऽस्मिन् वेदं व्यस्तुं प्रचक्रमे ।
अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदकारणात् ॥१२॥
जैमिनिञ्च सुमन्तुञ्च वैशम्पायनमेव च ।
पैलन्तेषां चतुर्थन्तु पञ्चमं लोमहर्षणम् ॥१३॥
ऋग्वेदश्रावकं पैलञ्जग्राह विधिवद्द्विजम् ।
यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च ॥१४॥

इस प्रकार से कहा हुआ लोक के हित में रत रहने वाला मनु ने तथास्तु अर्थात् ऐसा ही हो—यह कहकर प्रभु ने चार पाद वाले एक वेद को चार प्रकार से विभाजित किया था ॥८॥ हे तात ! ब्रह्माजी के वचन से लोकों के हित की कामना से आपके वर्त्तमान से यह वेद का कल्पन किया था ॥९॥ अब मैं मन्वन्तर से व्यतीतों के प्रकल्पन को बताऊँगा। हे सत्तमा ! अब आप लोगों को प्रत्यक्ष से परोक्ष को जान लेना चाहिए ॥१०॥ इस युग में किया हुआ व्यास (विस्तार) परन्तप एवं पाराशर्य है। वह द्वैपायन इस नाम से ख्यात हुआ है और भगवान् विष्णु का अंश कहा गया है ॥११॥ ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित होते हुए उसने वेद के व्यस्त करने का उपक्रम किया था। इसके अनन्तर वेद के कारण से उसने चार शिष्यों को ग्रहण किया था ॥१२॥ जैमिनि—सुमन्तु—वैशम्पायन और उनमें चौथा पैल, पाँचवाँ लोमहर्षण था ॥१३॥ ऋग्वेद का श्रावक (सुनने वाला) पैल को ग्रहण किया और पैल द्विज को विधि के साथ स्वीकार किया था। यजुर्वेद के प्रवक्ता वैशम्पायन को ग्रहण किया ॥१४॥

जैमिनिं सामवेदार्थश्रावकं सोऽन्वपद्यत ।
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम् ॥१५॥
इतिहासपुराणस्य वक्तारं सम्यगेव हि ।

माञ्चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः ।।१६।।
एक आसीद्यजुर्वेदस्तश्चतुर्द्धा व्यकल्पयत् ।
चतुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत् ।।१७।।
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथैव च ।
उद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभिः ।
ब्रह्मत्वमकरोद्यज्ञे वेदेनाथर्वणेन तु ।।१८।।
ततः स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेदं समकल्पयत् ।
होतृकं कल्प्यते तेन यज्ञवाहं जगद्धितम् ।।१९।।
सामभिः सामवेदञ्च तेनोद्गात्रमरोचयत् ।
राज्ञस्त्वथर्ववेदेन सर्वकर्माण्यकारयत् ।।२०।।
आख्यानैश्चाप्युपाख्यैर्गाथाभिः कुलकर्मभिः ।
पुराणसंहिताश्चक्रे पुराणार्थविशारदः ।।२१।।

सामवेद के अर्थ का श्रावक उसने जैमिनि को शिष्य ग्रहण किया था। उसी प्रकार से अथर्ववेद का प्रवक्ता ऋषियों में श्रेष्ठ सुमन्तु को शिष्यत्व के रूप में ग्रहण किया था ।।१५।। इतिहास पुराण का अच्छी प्रकार से प्रवक्ता भगवान् प्रभु ईश्वर ने मुझको ग्रहण किया था ।।१६।। यजुर्वेद एक ही था, उसको चार प्रकार के भेदों में कल्पित किया था। उसने उसमें यज्ञ की कल्पना की जो कि चतुर्होत्र था ।।१७।। यजु से आध्वर्यव, ऋक् से उसी प्रकार होत्र, साम से उद्गात्र और अथर्व से ब्रह्मत्व किया। अथर्व वेद से यज्ञ में ब्रह्मत्व किया था ।।१८।। इसके अनन्तर उसमें ऋक् का उद्धार करके ऋग्वेद की कल्पना की थी। उसके द्वारा होतृक यज्ञवाह जगत-हित की कल्पना की जाती है ।।१९।। सामों से सामवेद को और उससे उद्गात्र को रोचित किया था। राजा के अथर्व वेद से समस्त कर्मों को कराया था ।।२०।। आख्यानों से तथा उपाख्यानों से गाथाओं के द्वारा और कुल कर्मों से पुराणों के अर्थ के विशारद ने पुराण संहिता की अर्थात् पुराण संहिता की रचना की ।।२१।।

यच्छिष्टन्तु यजुर्वेदे तेन यज्ञमथायुजत् ।
युञ्जानः स यजुर्वेदे इति शास्त्रविनिश्चयः ।।२२।।

पदानामुद्धृतत्वाच्च यजूंषि विषमाणि वै ।
स तेनोद्धृतवीर्यस्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ।
प्रयुज्यते ह्यश्वमेधस्तेन वा युज्यते त सः ।।२३।।
ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत्तद्द्विधा पुनः ।
द्विष्कृत्वा संयुगे चैव शिष्याभ्यामददत्प्रभुः ।।२४।।
इन्द्रप्रमतये चैकां द्वितीयां बाष्कलाय च ।
चतस्रः संहिताः कृत्वा बाष्कलिर्द्विजसत्तमः ।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हितान् ।।२५।।
बोधन्तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम् ।
पाराशरं तृतीयान्तु याज्ञबल्क्यामथापराम् ।।२६।।
इन्द्रप्रमतिरेकान्तु संहितां द्विजसत्तमः ।
अध्यापयन्महाभागं मार्कण्डेयं यशस्विनम् ।।२७।।
सत्यश्रवसमग्र्यन्तु पुत्रं स तु महायशाः ।
सत्यश्रवाः सत्यहितं पुनरध्यापयद्द्विज ।।२८।।

जो कुछ यजुर्वेद में शिष्ट था उससे इसके पश्चात् यज्ञ को योजित किया था । यजुर्वेद में वह युञ्जान थे यही शास्त्र का विशेष रूप से निश्चय है ।।२२।। पदों के उद्धृत होने के कारण से यजु विषम हैं । इससे उद्धृत वीर्य उसने वेद के पारगामी ऋत्विगों के द्वारा अश्वमेध को प्रयुक्त किया अथवा वह युज्यमान किया जाता है ।।२३।। पैल ने तो ऋचाओं को ग्रहण करके उनको दो प्रकार से विभाजित किया था । दो करके प्रभु ने संयुग में शिष्यों के लिये दे दिया था ।।२४।। एक को इन्द्रप्रमिति के लिये दिया और दूसरी को बाष्कलि के लिये दिया । द्विज श्रेष्ठ बाष्कलि ने चार संहिता करके जो सेवा में अनुराग रखने वाले और परमहित शिष्य थे उनको उनका अध्यापन कर दिया था ।।२५।। प्रथम शाखा को बोध नामक शिष्य को पढ़ाया और दूसरी शाखा को अग्नि-माठर को पढ़ाया था । तीसरी शाखा को पाराशर को और चौथी शाखा का अध्यापन याज्ञवल्क्य को करा दिया था ।।२६।। द्विजों में परम श्रेष्ठ इन्द्र प्रमिति ने एक संहिता को अति यशस्वी महान् भाग वाले मार्कण्डेय को पढ़ा दिया

था ।।२७।। सत्यश्रवा द्विज ने जो कि महान् यश वाला था, सत्य में सत्यश्रवस अग्य पुत्र को पढ़ाया था ।।२८।।

सोऽपि सत्यतरं पुत्रं पुनरध्यापयापयद्विभुः ।
सत्यश्रियं महात्मानं सत्यधर्मपरायणम् ।।२९।।
अभवंस्तस्य शिष्या वै त्रयस्तु सुमहौजसः ।
सत्यश्रियस्तु विद्वांसः शास्त्रग्रहणतत्पराः ।।३०।।
शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथ(ा)न्तरः ।
बाष्कलिश्च भरद्वाज इति शाखाप्रवर्तकाः ।।३१।।
देवमित्रस्तु शाकल्यो ज्ञानाहङ्कारगर्वितः ।
जनकस्य स यज्ञे वै विनाशमगमद्द्विजः ।।३२।।
कथं विनाशमगमत्स मुनिर्ज्ञानगर्वितः ।
जनकस्याश्वमेधेन कथं वाद बभूव ह ।।३३।।
किमर्थञ्चाभवद्वादः केन सार्द्धमथापि वा ।
सर्वमेतद्यथावृत्तमाचक्ष्व विदितन्तव ।
ऋषीणान्तु वचः श्रुत्वा तदुत्तरमथाब्रवीत् ।।३४।।
जनकस्याश्वमेधे तु महानासीत्समागमः ।
ऋषीणान्तु सहस्राणि तत्राजग्मुरनेकशः ।
राजर्षेर्जनकस्याथ तं यज्ञं हि दिदृक्षवः ।।३५।।

उस विप्र ने भी फिर अपने सत्यतर नामक पुत्र को पढ़ाया था जो कि सत्यश्री वाला, महान आत्मा से युक्त और सत्य धर्म में परायण था ।।२९।। उसके महान् ओज वाले तीन शिष्य हुए थे। वे सत्यप्रिय परम विद्वान् और शास्त्रों के ग्रहण करने में तत्पर थे ।।३०।। उनमें पहिला शाकल्य था और उसमें दूसरा रथन्तर था। वाष्कलि और भरद्वाज ये शाखाओं के प्रवर्तक हुए थे ।।३१।। देवामित्र शाकल्य तो ज्ञान के अहंकार से बड़ा ही गर्व वाला था, वह जनक के यज्ञ में विनाश को प्राप्त हुआ था ।।३२।। शांशपायन ने कहा—वह ज्ञान के गर्व वाला मुनि किस तरह विनाश को प्राप्त

हुआ ? जनक के अश्वमेध में वाद कैसे हुआ था ? ।।३३।। और वह वाद किस लिए हुआ था और किसके साथ हुआ था ? यह सब जैसा भी कुछ हुआ था वह समस्त वृतान्त वर्णन करें क्योंकि आपको सभी कुछ विदित है। ऋषियों के इस वचन को सुन कर इसके अनन्तर उसका उत्तर कहने लगे ।।३४।। श्रीसूत जी ने कहा—जनक के अश्वमेध में बहुत बड़ा समागम हुआ था। सहस्रों की संख्या में अनेक ऋषिगण वहाँ आये थे क्योंकि राजर्षि जनक के उस यज्ञ को सभी देखने की इच्छा वाले थे ।।३५।।

आगतान् ब्राह्मणान् दृष्ट्वा जिज्ञासास्याभवत्ततः।
को न्वेषां ब्राह्मणः श्रेष्ठः कथं मे निश्चयो भवेत्।
इति निश्चित्य मनसाबुद्धिं चक्रे जनाधिपः ।।३६।।
गवां सहस्रमादाय सुवर्णं मधिकं ततः।
ग्रामान् रत्नानि दासांश्च मुनीन् प्राह नराधिपः।
सर्वानहं प्रपन्नोऽस्मि शिरसा श्रेष्ठभागिनः ।।३७।।
यदेतदाहृतं वित्तं यो वः श्रेष्ठतमो भवेत्।
तस्मै तदुपनीतं विद्यावित्तं द्विजोत्तमाः ।।३८।।
जनकस्य वचः श्रुत्वा मुनयस्ते श्रुतिक्षमाः।
दृष्ट्वा धनं महासारं धनवृद्ध्या जिघृक्षवः।
श्रद्धयाञ्चक्रुरन्योन्यं वेदज्ञानमदोल्बणाः ।।३९।।
मनसा गतवित्तास्ते ममेदं धनमित्युत।
ममैवैतन्न वेत्यन्यो ब्रूहि किं वा विकल्प्यते।
इत्येवं धनदोषेण वादांश्चक्रुरनेकशः ।।४०।।
तथान्यस्तत्र वै विद्वान् ब्रह्मवाहसुतुः कविः।
याज्ञवल्क्यो महातेजातपस्वी ब्रह्मवित्तमः ।।४१।।
ब्रह्मणोऽङ्गात् समुत्पन्नो वाक्यं प्रोवाच सुस्वरम्।
शिष्यं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो धनमेतद्गृहाण भो ।।४२।।

आये हुए ब्राह्मणों को देख कर इसके अनन्तर इसकी जिज्ञासा हुई कि इन ब्राह्मणों में कौन सद्ब्राह्मण अधिक श्रेष्ठ है—यह निश्चय मुझे कैसे होवे।

मन में ऐसा निश्चय करके उस जनों के स्वामी ने वुद्धि की अर्थात् विचार किया था ।।३६।। सहस्र गौओं को लाकर और बहुत-सा सुवर्ण, ग्राम, रत्न, दासों को लाकर वह नराधिप बोला—मैं आप सब श्रेष्ठ भाग वालों को शिरसे प्रपन्न हूँ ।।३७।। जो यह सब धन लाया गया है, आप लोगों में परम श्रेष्ठ द्विज होगा हे उत्तम ब्राह्मणो ! विद्या के धन वाले को यह उपवीत किया जायगा ।।३८।। उन श्रुतिक्षम मुनियों में उस महान् सार वाले धन को देखकर धन की वृद्धि से उसे ग्रहण करने की इच्छा वाले होते हुए जनक के उस वचन को सुनकर वेद के ज्ञान के मद से उल्वण वे सब अन्योन्य में श्रद्धा करने लगे ।।३९।। मन से गतचित्त वाले यह मेरा धन है अथवा यह मेरा ही है या यह नहीं अथवा कोई अन्य बोले क्या विकल्प किया जाता है । इस प्रकार से धन के दोष से वहाँ अनेक प्रकार के वाद करने लगे ।।४०।। उस प्रकार से वहाँ पर अति विद्वान् ब्रह्मवाह का पुत्र कवि महान् तेज वाला, तपस्वी और ब्रह्मवित्तम याज्ञवल्क्य जो कि ब्रह्माजी के अङ्ग से समुत्पन्न हुये थे, शिष्य से सुस्वर वाक्य बोले—जो ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! आप इस धन को ग्रहण करिये ।।४२।।

नयस्व च गृहं वत्स ममैतन्नात्र संशयः ।
सर्ववेदेष्वहं वक्ता नान्यः कश्चितु मत्समः ।
यो वा न प्रीयते विप्रा स मे ह्वयत माऽचिरम् ।।४३।।
ततो ब्रह्मार्णवः क्षुब्धः समुद्र इव सम्प्लवे ।
तानुवाच ततः स्वस्थो याज्ञवल्क्यो हसन्निव ।।४४।।
क्रोधं माकार्षु विद्वांसो भवन्तः सत्यवादिनः ।
वदामहे यथायुक्तं जिज्ञासन्तः परस्परम् ।।४५।।
ततोऽभ्युपागमंस्तेषां वादा जग्मुरनेकशः ।
सहस्रधा शुभैरर्थैः सूक्ष्मादर्शनसम्भवैः ।।४६।।
लोके वेदे तथाध्यात्मे विद्यास्थानैरलंकृताः ।
शापोत्तमगुणैर्युक्ता नृपौघपरिवर्जनाः ।
वादाः समभवंस्तत्र धनहेतोर्महात्मनाम् ।।४७।।

ऋषयस्त्वेकतः सर्वे याज्ञवल्क्यस्तथैकतः ।
सर्वेमिति होवाच वादकर्त्तारमञ्जसा ।।४९।।

हे वत्स ! इसे गृह में ले जाओ, यह सारा धन मेरा ही है, इसमें तनिक-भी संशय नहीं है । समस्त वेदों में मैं वक्ता हूँ और कोई भी मेरे समान यहाँ नहीं है । जो ब्राह्मण इस बात को पसन्द नहीं करता हो वह मेरे साथ शीघ्रता करे । इसके पश्चात् सम्प्लव के समय में समुद्र की ही भाँति उस समय वह ब्राह्मणों का सागर क्षुब्ध हो उठा था । इसके अनन्तर परम स्वस्थ याज्ञवल्क्य हँसते हुए उन सबसे बोले ।।४३।।४४।। आप सब विद्वान और सत्यवादी हैं इस समय क्रोध न करिए । परस्पर में जिज्ञासा रखने वाले हम यथायुक्त वाद करें ।।४५।। इसके अनन्तर वहाँ उपस्थित होते हुए उनके सहस्रों प्रकार के सूक्ष्म दर्शन से उत्पन्न शुभ अर्थों के द्वारा अनेकों वाद हुए ।।४६।। लोक में तथा वेद में विद्या स्थानों से विभूषित—शापोत्तम गुणों से युक्त—नृपों के समुदाय से परिवर्जन वाले महात्माओं के वहाँ अनेक वाद हुये थे ।।४७।। एक तरफ तो समस्त ऋषिगण थे और एक ओर केवल एक याज्ञवल्क्य थे । वे सब मुनिगण धीमान् याज्ञवल्क्य के द्वारा एक-एक करके पूछे गए किन्तु कोई भी उनमें से उनका उत्तर नहीं बोला था ।।४८।। तब उस ब्रह्म की राशि महान् द्युति वाले याज्ञवल्क्य उन समस्त मुनियों को विजित करके वाद के कर्त्ता शाकल्य से अचानक बोले ।।४९।।

शाकल्य वद वक्तव्यं किं ध्यायन्नवतिष्ठसे ।
पूर्णस्त्वं जडमानेन वाताध्मातो यथा दृतिः ।।५०।।

एवं स धर्षितस्तेन रोषात्ताम्रास्यलोचनः ।
प्रोवाच याज्ञवल्क्यं तं पुरुषं मुनिसन्निधौ ।।५१।।

त्वमस्मांस्तृणवत्त्यक्त्वा तथैवेमान् द्विजोत्तमान् ।
विद्याधनं महासारं स्वयंग्राहं जिघृक्षसि ।।५२।।

शाकल्येनैवमुक्तः स्याद्याज्ञवल्क्यः समब्रवीत् ।
ब्रह्मिष्ठानां बलं विद्धि विद्यातत्वार्थदर्शनम् ।।५३।।

कामश्चार्थेन सम्बद्धस्तेनार्थं कामयामहे ।
कामप्रश्नधना विप्राः कामप्रश्नान्वदामहे ॥५४॥
पणश्चैषोऽस्य राजर्षेस्तस्मान्नीतं धनं मया ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शाकल्यः क्रोधमूर्च्छितः ।
याज्ञवल्क्यमथोवाच कामप्रश्नार्थमद्वचः ॥५५॥
ब्रूहीदानीं मयोद्दिष्टान् कामप्रश्नान् यथार्थतः ।
ततः समभवद्वादस्तयोर्ब्रह्मविदोर्महान् ॥५६॥

हे शाकल्य ! बोलो जो कुछ भी आपका वक्तव्य हो क्या ध्यान करते हुए चुपचाप खड़े हुए हैं ? आप तो जड़मात्र से पूर्ण हैं जैसे बात से आध्मात दृति होता है ॥५०॥ इस प्रकार से उसके द्वारा धर्षित होते हुए रोष से ताम्र मुख और लोचनों वाले उनने मुनियों की सन्निधि में उस याज्ञवल्क्य पुरुष से कहा ॥५१॥ आप मुझको तिनके की भाँति त्याग करके तथा इन अन्य श्रेष्ठ द्विजों का भी त्याग करके इस महान् सार वाले विद्या धन को स्वयं ही ग्रहण करने की इच्छा रखते हैं ॥५२॥ शाकल्य के द्वारा इस तरह से कहे हुए याज्ञवल्क्य ने उससे कहा—विद्या के तत्वार्थ के देखने वाले ब्रह्मिष्ठों के बल को जान लो ॥५३॥ काम की अर्थ से सम्बद्धता होती है इसलिए हम अर्थ की कामना करते हैं । ब्राह्मण काम के प्रश्न धन वाले होते हैं और हम काम के प्रश्नों को बोलते हैं ॥५४॥ रार्जाष का यह प्रण है इससे मैंने धन को लिया है । यह उसका वचन सुनकर शाकल्य क्रोध से मूर्छित होते हुए याज्ञवल्क्य से काम प्रश्न के अर्थ वाले वचन को बोले ॥५५॥ अब मेरे द्वारा उद्दिष्ट काम-प्रश्नों को यथार्थ रूप से बोलो । इसके बाद पुनः दोनों ब्रह्म वेत्ताओं का बहुत बड़ा विवाद हुआ था ॥५६॥

साग्रं प्रश्नसहस्रन्तु शाकल्यस्तमचूवुदत् ।
याज्ञवल्क्योऽब्रवीत्सर्वान् ऋषीणां शृण्वतां तदा ॥५७
शाकल्ये चापि निर्वादे यश्रवल्क्यस्तमब्रवीत् ।
प्रश्नमेकं ममापि त्वं वद शाकल्य कामिकम् ।
शापः पणोस्य वादस्य अब्रुवन् मृत्युमाव्रजेत् ॥५८

अथ सन्नोदितं प्रश्नं याज्ञवल्क्येन धीमता ।
शाकल्यस्तमविज्ञाय सद्यो मृत्युमवाप्नुयात् ।।५९
एवं मृतः स शाकल्यः प्रश्नव्याख्यानपीडितः ।
एवं वादश्च सुमहानासीत्तेषां धनार्थिभिः ।
ऋषीणां मुनिभिः सार्द्धं याज्ञवल्क्यस्य चैव हि ।।६०
सर्वैं पृष्टांस्तु सम्प्रश्नान् शतशोऽथ सहस्रशः ।
व्याख्याय वै मुने तेषां प्रश्नसारं महागतिः ।।६१
याज्ञवल्क्यो धन गृह्य यशो विख्याप्य चात्मनः ।
जगाम वै गृहंस्वस्थः शिष्यैः परिवृतो वशी ।।६२
देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजात्मा द्विजसत्तमः ।
चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तमः ।।६३

इसके अनन्तर शाकल्य ने पहिले एक सहस्र प्रश्न उससे किए थे और याज्ञवल्क्य ने उस समय में समस्त ऋषियों के सुनते हुए सब प्रश्नों के उत्तर दे दिए थे ।।५७।। जब शाकल्य निर्वाद हो गए तो याज्ञवल्क्य ने उससे कहा—आप मेरा भी एक प्रश्न कामिक बतलाओ । इस वाद का पण शाप बोले वह मृत्यु को जावे ।।५८।। इसके पश्चात् धीमान् याज्ञवल्क्य के द्वारा सज्जोह्नित उस प्रश्न को शाकल्य ने न जानकर मृत्यु को प्राप्त किया ।।५९।। इस प्रकार से वह प्रश्न के व्याख्यान से पीड़ित शाकल्य मृत हो गया । इस प्रकार से धन के अर्थी मुनियों के साथ उन ऋषियों का और याज्ञवल्क्य का बहुत ही बड़ा बाद हुआ था ।।६०।। सबके द्वारा सैंकड़ों तथा सहस्रों पूछे गए प्रश्नों की व्याख्या करके और उनके प्रश्नस्तर को समझा करके महामति याज्ञवल्क्य ने धन को ग्रहण करके और अपना यश विख्यात करके शिष्यों के द्वारा परिवृत वशी स्वस्थ होता हुआ अपने घर को चले गए ।।६१।।६२।। पदवित्तय–द्विज श्रेष्ठ–महात्मा और बुद्धिमान देवामित्र शाकल्य ने पाँच संहिता कीं ।।६३।।

तच्छिष्या अभवन् पञ्च मुग्दलौ गोलकस्तथा ।
खालीयश्च तथा मत्स्यः शैशिरेयस्तु पञ्चमः ।।६४

प्रोवाच संहितास्तिस्रः शाकपूर्णरथीतरः ।
निरुक्तञ्च पुनश्चक्रे चतुर्थं द्विजसत्तमः ।।६५
तस्य शिस्यास्तु चत्वारः केतवो दालकिस्तथा ।
धर्मशर्मा देवशर्मा सर्वे व्रतधरा द्विजाः ।।६६
शाकल्ये तु मृते सर्वे ब्रह्मघ्नास्ते बभूविरे ।
तदा चिन्तां परां प्राप्य गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ।।६७
तान् ज्ञात्वा चेतसा ब्रह्मा प्रेषितः पवने पुरे ।
तत्र गन्छत यूयं वः सद्यः पापं प्रणश्यति ।।६८
द्वादशार्कं नमस्कृत्य तथा वै वालुकेश्वरम् ।
एकादश तथा रुद्रान् वायुपुत्रं विशेषतः ।
कुण्डे चतुष्टये स्नात्वा ब्रह्महत्यां तरिष्यथ ।।६९।।
सर्वे शीघ्रतरा भूत्वा तत्पुरं समुपागताः ।
स्नानं कृतं विधानेन देवानां दर्शनं कृतम् ।।७०।।

उसके पाँच शिष्य हुए थे उनके नाम मुग्दल—गोलक—खालीय—मत्स्य—और शैशिरेय पाँचवें थे।।६४।। शाकपूर्ण रथीतर ने तीन संहिता बोलीं और द्विज-श्रेष्ठ ने फिर चौथा निरुक्त किया ।।६५।। उसके चार शिष्य हुए थे जिनके नाम केतव—दालकि—धर्म शर्मा—देव शर्मा थे । ये सब ब्राह्मण व्रतधारी थे ।।६६।। शाकल्य के मृत हो जाने पर वे सब ब्रह्मघ्न हो गये थे । इसके पश्चात् वे सब परम चिन्तित होकर ब्रह्माजी के समीप में गए ।।६७।। ब्रह्माजी ने उनको चित्त से ही जानकर पवनपुर में प्रेषित किया । उन्होंने कहा—आप सब वहाँ जाओ वहाँ आपका सारा पाप तुरन्त नष्ट हो जायगा ।।६८।। द्वादश सूर्य को नमस्कार करके तथा वालुकेश्वर को प्रणाम करके और चारों कुण्डों में स्नान करके आप सब इस ब्रह्म हत्या से तर जाओगे ।।६९।। वे सब शीघ्रगामी होकर उस पुर में आगये । वहाँ उन्होंने विधानपूर्वक स्नान किया और देवों का दर्शन कर के पाप मुक्त हो गए ।।७०।।

।। इति वायु-पुराण (प्रथम खण्ड) ।।



